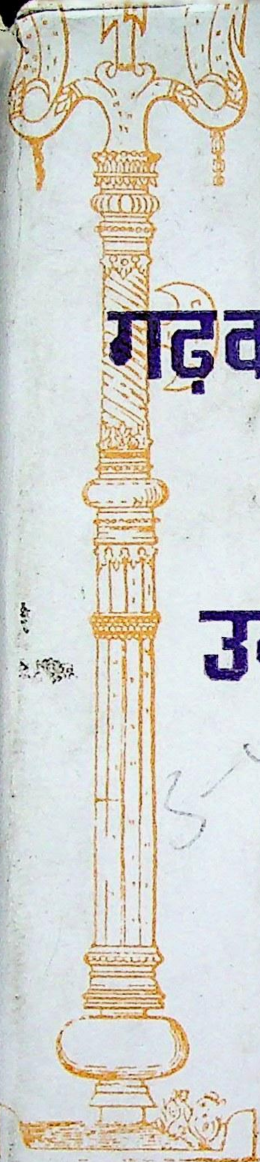


गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख और उनका ऐतिहासिक महत्त्व

डा० कृष्ण कुमार

गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख
और
उनका ऐतिहासिक महत्त्व

(तीसरी शताब्दी ई० पू० से तेरहवीं शताब्दी ई० तक)

डा० कृष्णकुमार

मयंक प्रकाशन
मिश्रा बाग, कनखल (हरिद्वार)

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या.........   आगत संख्या...........

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित हैं। इस तिथि सहित ३०वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

OLD INSCRIPTIONS OF GARHWAL

AND THEIR

HISTORICAL SIGNIFICANCE

Dr. Krishana Kumar

MAYANK PRAKASHAN

KANKHAL (HARIDWAR)

प्रकाशित कृतियां

१. भारतीय संस्कृति के आधार तत्त्व
२. अलंकारशास्त्र का इतिहास
३. वैदिक साहित्य का इतिहास
४ संस्कृत साहित्य का इतिहास
५ पं० अम्बिकादत्त व्यास – एक अध्ययन
६. ऋक्सूक्त-सुधाकर
७ ऋक्सूक्त-संग्रह
८ चतुर्वेद-सूक्त-संग्रह
९. वैदिक-सूक्त-संग्रह
१०. शिवकिरण
११ सेवन के लिये खनिज और विटामिन
१२. संस्कृत नाटक सूक्तरश्मियाँ
१३. छन्दोऽलंकार प्रकाश
१४ प्राचीन कथाएँ
१५. गढ़वाल के प्रमुख तीर्थ
१६ गढ़वाल के संस्कृत अभिलेख
१७ वत्सलचरितम् (संस्कृत उपन्यास)
१८. [illegible] व्याख्या
१९. अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्या
२० [illegible] व्याख्या
२१. प्रतिमानाटकम् व्याख्या
२२ हर्षचरितम् पञ्चम उच्छ्वास व्याख्या
२३ किरातार्जुनीयम् प्रथम सर्ग व्याख्या
२४ रघुवंशम् द्वितीय सर्ग व्याख्या
२५. रघुवंशम् त्रयोदश सर्ग व्याख्या
२६ [illegible] व्याख्या
२७ निरुक्तस्य व्याख्या
२८ [illegible] व्याख्या
२९. अस्ति कश्चिद् वागर्थीयम् (संस्कृत नाटक)
३० संस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश
३१ Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts - I
३२ Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts - II
३३. Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts - III
३४ संस्कृत नाटकों का वानस्पतिक पर्यावरण
३५ संस्कृत नाटकों का जीव-जगत्
३६ [illegible]
३७ अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः
३८ [illegible]
३९. प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास
४० उपेक्षशालिनी (संस्कृत उपन्यास)
४१ उपेक्षशालिनी (हिन्दी उपन्यास)
४२. केदारखण्ड पुराण (चार खण्डों में)
४३. [illegible]
४४. गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख एवं उनका ऐतिहासिक महत्त्व
४५. प्राचीन भारत की राजनीतिक एवं प्रशासनिक संस्थायें
४६. [illegible] (संस्कृत उपन्यास)
४७. भाग्य और पुरुषार्थ (हिन्दी अनुवाद)

गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख

और उनका

ऐतिहासिक महत्त्व

(तीसरी शताब्दी ई० पू० से तेरहवीं शताब्दी ई० तक)

डा० कृष्णकुमार

डा० कृष्णकुमार
(एम. ए साहित्याचार्य, पी-एच. डी., डी० लिट०)

मयंक प्रकाशन
हनुमानगढ़ी कनखल
(हरिद्वार)

गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख

और उनका

ऐतिहासिक महत्त्व

(तीसरी शताब्दी ई० पू० से तेरहवीं शताब्दी ई० तक)

डा० कृष्णकुमार

प्रकाशक

डा० कृष्णकुमार

नवक प्रकाशन
मिश्रा बाग, हनुमानगढ़ी
कनखल हरिद्वार

मूल्य : रु० २२५.००
२०००

मुद्रक

राज प्रिंटर्स
कनखल (हरिद्वार)

सम्मति

१३५६ ईसवी में सुलतान फीरोजशाह तुगलक ने सम्राट अशोक के अभिलेखों वाले दो स्तम्भ मेरठ तथा टोपरा से लाकर दिल्ली के दो विभिन्न स्थानों पर लगवाये थे। स्तम्भ अभिलेखों की विषय वस्तु जानने का प्रयास सुलतान ने किया, लेकिन तत्कालीन भाषाविद् एवं विद्वान् १५०० वर्ष पुरानी भारतीय लिपि तथा भाषा को पढ़ने में असमर्थ रहे। मुगल शासक अकबर के शासन काल तक के साक्ष्यों के अनुसार सातवीं शताब्दी ई० तक के अभिलेख अपठनीय थे।

अभिलेखों, ताम्रपत्रलेखों एवं पाण्डुलिपियों की प्रचुर मात्रा में उपलब्धि विद्वानों की जिज्ञासा के केन्द्र बिन्दु बने रहे। इसी जिज्ञासा की पूर्ति के लिये सन् १७८४ ई० में सर विलियम जोन्स ने "ऐशियाटिक सोसायटी" की स्थापना की। सन् १७८५ ई० मे चार्ल्स डिवंस ने बंगाल के राजा नारायणपाल के दीनाजपुर जिले के बदाल नामक स्थान से प्राप्त अभिलेख का पाठ प्रस्तुत किया। यह प्रथम अभिलेख था, जिसका पाठ सफलतापूर्वक किया गया था। तदनन्तर अभिलेख पठन एवं पाठन का प्रयास निरन्तर चलता रहा। इस प्रयास की शृंखला में अशोककालीन ब्राह्मी लिपि का पढ़ना एवं समझना सन् १८३७ ई० से पूर्व सम्भव नहीं हुआ था। सिन्धुकालीन अभिलेख अभी तक जिज्ञासा का केन्द्र बने हुये हैं।

अभिलेखों के आधार पर प्राचीन भारतीय इतिहास को एक क्रमबद्ध शृंखला में पिरोया जाना सम्भव हुआ। ऐतिहासिक घटनाक्रम के साथ-साथ तत्कालीन भौगोलिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनैतिक स्थिति के सम्बन्ध में भी शोध के लिये विशेष सामग्री प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त भाषा एवं लिपि के विकास पर भी प्रचुर मात्रा में सामग्री उपलब्ध हुई। जिस मात्रा में अभिलेखों की प्राप्ति हुई, उतनी लगन के साथ इनका अध्ययन नहीं हुआ। आवश्यकता थी कि क्षेत्रीय स्तर पर अभिलेखों का अध्ययन करके वहाँ की तत्कालीन स्थिति को क्रमबद्धता दी जाये। इसी प्रेरणा के अन्तर्गत डा० कृष्णकुमार ने गढ़वाल क्षेत्र के अभिलेखों को लेकर गढ़वाल मण्डल के इतिहास को एक क्रमबद्धता प्रदान करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत पुस्तक में इस क्षेत्र में तीसरी शताब्दी ई० पू० से १३ वीं शताब्दी ई० तक के प्राप्त अभिलेखों का अध्ययन किया गया है। इनमें एक अभिलेख कालसीं के समीप प्राप्त अशोक का पाली भाषा में है। शेष सभी अभिलेख संस्कृत में हैं। इससे सिद्ध है कि उस युग में सरकारी काम-काज की तथा अध्ययन-अध्यापन की भाषा संस्कृत रही थी।

पुस्तक के प्रथम भाग में गढवाल क्षेत्र का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पक्ष प्रस्तुत किया गया है । पुस्तक के तीसरे खण्ड में १६ स्थानों से प्राप्त २२ अभिलेखों का मूल पाठ एवं विशिष्ट विवेचन हिन्दी रूपान्तर सहित दिया गया है । पुस्तक का द्वितीय खण्ड बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस खण्ड में अभिलेखों से प्राप्त सामग्री के आधार पर गढ़वाल क्षेत्र के भौगोलिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनैतिक इतिहास को एक क्रमबद्धता दी गयी है । अभिलेखों में दिये गये व्यक्तिवाचक नामों, स्थान नामों एवं प्रशासनिक अधिकारियों के पद नामों की विस्तृत सूची परिशिष्टों में दी गयी है ।

मुझे आशा है कि क्षेत्रीय इतिहास एवं भारतीय इतिहास के क्षेत्र में इस पुस्तक का विशेष योगदान होगा, साथ ही यह ग्रन्थ शोधकर्त्ताओं के लिये प्रेरणा का स्रोत भी होगा ।

सुभाष विद्यालङ्कार
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

प्रस्तावना

इतिहास की घटनाओं को जानने के लिये अभिलेखों के महत्त्व को निश्चय ही स्वीकार करना चाहिये। अतः भारतवर्ष में प्राचीन काल में घटित घटनाओं के उद्घाटन करने के लिये और इतिहास की रचना के लिये भी उस युग के अभिलेखों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। भारत के प्राचीन इतिहास से सम्बन्धित प्रचुर तथ्यात्मक सामग्री प्राप्त हो सकती है और उसके द्वारा निस्सन्दिग्ध रूप से उस युग के घटनात्मक तथ्यों का निर्णय कर इतिहास का लेखन कर सकते हैं। प्राचीन इतिहास के बहुत से तथ्य इस प्रकार के उद्घाटित हुए हैं, जिनको कि केवल अभिलेखों ने ही प्रकाशित किया है। अभिलेखों की खोज करके ही इतिहासविद् उन तथ्यों को जान सके हैं। इनको जानने का और कोई स्रोत हमारे पास नहीं था।

प्राचीन काल में इतिहास के लेखन की इस प्रकार की कोई व्यवस्थित पद्धति नहीं रही थी, जिस प्रकार की कि वर्तमान समय में विकसित हो सकी है। उस युग के ऋषि-मुनियों ने यद्यपि विविध विषयों पर शास्त्रों की रचना की थी, तथापि उन्होंने इतिहास को क्रमबद्ध रूप से तिथिवार नहीं लिखा। वर्तमान युग में घटनाओं को क्रमबद्ध तिथिवार लिखना ही इतिहास के लेखन की पद्धति है। भारतीय साहित्य में 'महाभारत' को इतिहास कहा गया है। पुराणों को भी इतिहास कहा जाता है। परन्तु इन ग्रन्थों को इस रूप में इतिहास नहीं कहा जा सकता कि उनमें तिथिवार घटनाओं को निबद्ध किया गया हो। बहुत समय बाद इस दृष्टि से 'राजतरङ्गिणी' जैसे कुछ अत्यल्प इतिहास-ग्रन्थों की रचना अवश्य हुई थी।

भारतीय लेखकों ने, भ्रमणकर्ताओं ने और तीर्थ यात्रियों ने अपने समय के वर्णनों, यात्रा-विवरणों और तीर्थयात्राओं के अनुभवों को इस प्रकार से नहीं लिखा, जैसे कि अन्य देशों के भ्रमणकर्ताओं—प्लिनी, मेगास्थनीज, बर्नियर, अलबरूनी, फाहियान, ह्वेन्त्सांग आदि यात्रियों तथा खाफीखां आदि राजदरबारी लेखकों ने लिखा था। उत्तरवर्ती शाही दरबारों के लेखकों ने जिस प्रकार अकबरनामा, जहांगीरनामा, औरंगजेबनामा आदि विवरण लिखे, इस प्रकार के तथ्यात्मक विवरण प्राचीन काल में नहीं लिखे गये। यही कारण है कि हमको उस समय के इतिहास का व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध बोध नहीं हो पाता।

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के अनेक पृष्ठ अभी तक अविदित हैं और उनको खोजा नहीं जा सका है। परन्तु अनेक ऐतिहासिक तथ्य, जिनको कि किसी अन्य स्रोत से जाना नहीं जा सका था, अभिलेखों की खोज से उद्घाटित किये जा

सके हैं। उदाहरण के लिये महान् यशस्वी तथा पराक्रमी सम्राट् समुद्रगुप्त से सम्बन्धित सूचनायें और विजय-गाथायें कौशाम्बी में प्राप्त इलाहाबाद स्तम्भलेख से विदित हो सकी हैं। इससे पहले गुप्तवंशी राजाओं का इतिहास अस्पष्ट ही था। इसी प्रकार महान् यशस्वी सम्राट् यशोवर्मन् की विजय-गाथाओं और महत्ता का बोध मंदसौर के शिला-अभिलेख से हो सका है। महान् मौर्य सम्राट्– अशोक ने ई० पू० तृतीय शताब्दी में अपने प्रारम्भिक शासन में जो पराक्रम किये तथा बाद में धर्म प्रचार किया एवं प्रजा-हितकारी कार्य किये, उनका बोध भी उसके शिलालेखों से होता है। ये अभिलेख विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुए हैं।

प्राचीन भारतवर्ष की ऐतिहासिक घटनाओं की सूचना देने वाले अभिलेख प्रायः सारे भारतवर्ष में प्राप्त हुए हैं। कुछ ही समय पहले समीप के तथा दूर के अन्य देशों– नेपाल, तिब्बत, अफगानिस्तान, मंगोलिया मध्य एशिया, बर्मा, स्याम, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा आदि में अनेक प्राचीन अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जिन्होंने इतिहास के अनखुले पृष्ठों को उद्घाटित किया है। इनसे विदित होता है कि इन देशों में प्राचीन समय में भारत के वीर और विद्वान् पुरुषों ने प्रवेश किया था। इन अभिलेखों से उन देशों के साथ प्राचीन भारत के राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक सम्बन्धों का विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है।

गढ़वाल का प्राचीन इतिहास काफी अस्पष्ट है और उसको प्रकाशित करने के लिये बहुत कुछ प्रयास किया जाना आवश्यक है। चाँदपुरगढ़ी (श्रीनगर) के पंवार-राजाओं से पूर्व के गढ़वाल के इतिहास को हम बहुत कम जानते हैं। पंवारवंशी राजाओं की वंशावली तथा इन राजाओं से सम्बन्धित इतिहास का बहुत कुछ ज्ञान हमको टिहरी-गढ़वाल के दरबार के पुराने रिकार्डों से हो जाता है। इनमें से बहुत से रिकार्ड उत्तर प्रदेश सरकार लखनऊ के अभिलेखागार में सुरक्षित हैं। पंवार वंश से पहले के टंगणों, पुलिन्दों, कुलिन्दों, कत्यूरियों तथा अन्य छोटे राज्यों के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अत्यल्प है। ह्वेन्त्सांग तथा अन्य यात्रियों के विवरणों से भी हमको प्राचीन समय के भौगोलिक तथा ऐतिहासिक विवरणों का स्पष्ट बोध नहीं हो पाता। इन्होंने इस प्रदेश की यात्रा करके वृत्तान्तों का लेखन तो अवश्य किया था, परन्तु इन विवरणों से इस क्षेत्र के इतिहास का स्पष्ट चित्र नहीं बन पाता है।

परन्तु गढ़वाल के विभिन्न प्रदेशों में वर्तमान समय में अनेक शिलालेख, ताम्र-पत्र अभिलेख आदि प्राप्त हुए हैं। इन्होंने इस क्षेत्र के प्राचीन इतिहास के अनेक पृष्ठों का अनावरण किया है। इनसे हमको उस समय के राजाओं, राज्यों, राज-धानियों, राजकर्मचारियों, ग्रामों, मन्दिरों आदि का परिचय मिला है। स्रुघ्न, कर्तृपुर, कार्तिकेयपुर, ब्रह्मपुर, सैंहपुर, पर्वताकर, हिमालय, हिमाचल, गङ्गास्रोत, बदरिकाश्रम, टंगणपुर, योशि, योशिका, तपोवन, वरुणाश्रम, गरुडाश्रम, पलसरि, कैलास आदि

स्थानों के नाम इन अभिलेखों में उत्कीर्ण हैं। तालेश्वर ताम्र अभिलेख से पता चलता है कि उस समय पर्वताकर राज्य की राजधानी ब्रह्मपुर थी। यह आश्चर्यजनक ही है कि गढ़वाल से प्राप्त इन अभिलेखों में उत्तराखण्ड नाम नहीं आता। इन अभिलेखों में गढ़वाल नाम भी नहीं है। इस प्रदेश के लिये गढ़वाल नाम का प्रयोग सबसे पहले सोलहवीं शताब्दी ई० में किया गया था। इसका सम्भावित कारण यही है कि इससे पहले गढ़वाल छोटी-छोटी स्वतन्त्र प्रशासनिक इकाइयों में बँटा हुआ था। गढ़वाल में प्राप्त अभिलेखों में उस युग के राजनीतिक और प्रशासनिक इतिहास का ज्ञान तो हुआ ही है, प्राचीन राजनीतिक भूगोल, संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, प्रशासन-पद्धति और तीर्थयात्राओं का भी ज्ञान होता है।

गढ़वाल से प्राप्त अभिलेख चट्टानों, धातुपत्रों, त्रिशूलों, देवप्रतिमाओं, मृण्मुद्राओं आदि पर उत्कीर्ण किये गये थे। इनमें अधिकांश अभिलेख संस्कृत में हैं। परन्तु अन्य भाषाओं– पाली, प्राकृत, गढ़वाली, तिब्बती आदि का भी प्रयोग हुआ है।

गढ़वाल में प्राप्त अभिलेखों में सबसे प्राचीन अभिलेख महान् मौर्य सम्राट् अशोक का है। यह देहरादून जिले में कालसी के समीप मिला है। इससे पता चलता है कि अशोक का साम्राज्य हिमालय के भीतरी क्षेत्रों तक विस्तृत था। देवप्रयाग के हनुमान् मन्दिर के पीछे की शिलाओं पर दूसरी शताब्दी ई० के यात्री–नाम अभिलेख प्राप्त हुए हैं। यहाँ अनेक यात्रियों के नाम उत्कीर्ण हैं। इससे पता चलता है कि उस युग में भी भक्त जन हिमालय के तीर्थों की यात्रा करने के लिये आया करते थे। चमोली जिले के मण्डल ग्राम के निकट भी कुछ यात्रियों के नाम उत्कीर्ण मिले हैं। तालेश्वर से प्राप्त ताम्र–अभिलेख सातवीं शताब्दी ई० के माने गये हैं। तदनन्तर पाण्डुकेश्वर से प्राप्त ताम्र–अभिलेख कत्यूरी राजाओं के हैं।

गढ़वाल में प्राप्त इन अभिलेखों में से इस प्रदेश के प्राचीन इतिहास के अनेक पृष्ठों को प्रकाशित किया जा सकता है, जो कि अभी तक अनावृत रहे हैं। इन अभिलेखों से प्राचीन शास्त्रों के विवरणों और अभिलेखों के वर्णनों की पुष्टि भी होती है।

भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग ने भारतवर्ष में प्राप्त अभिलेखों के ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक और धार्मिक महत्त्व की विशेषताओं को प्रकाशित करने के लिये बहुत कुछ कार्य किया है। बहुत अधिक संख्या में अभिलेखों को प्रकाशित किया जा चुका है। गढ़वाल में प्राप्त अभिलेख भी विभिन्न पुस्तकों तथा पत्रिकाओं में बिखरे रूप से प्रकाशित हुए हैं। परन्तु जहाँ तक गढ़वाल में प्राप्त अभिलेखों का प्रश्न है, इन अभिलेखों को व्यवस्थित संग्रह रूप में प्रकाशित नहीं किया गया।

एटकिन्सन के 'हिमालयन गजेटियर' में गढ़वाल का पूरा परिचय देते हुए कुछ अभिलेखों का परिचय कराया गया है। डा० शिवप्रसाद डबराल ने अपने प्रशंसनीय ग्रन्थ 'उत्तराखण्ड का इतिहास' में कुछ अभिलेख प्रकाशित किये हैं। राहुल सांकृत्यायन

के 'हिमालय परिचय (१)' ग्रन्थ में भी कुछ अभिलेखों का प्रकाशन हुआ है। डा० यशवन्तसिंह कठोच ने बहुत अधिक संख्या में अभिलेखों का परिचय अपने शोधप्रबन्ध–'मध्य हिमालय का पुरातत्त्व' में दिया है। डा० कृष्णकुमार तथा डा० शिवप्रसाद नैथानी द्वारा लिखित तथा गढ़वाल विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गढ़वाल के संस्कृत अभिलेख' में ११ अभिलेख दिये गये हैं। कैप्टिन शूरवीरसिंह पंवार ने अपनी पुस्तिका—'गढ़वाली के प्रमुख अभिलेख एवं दस्तावेज' में गढ़वाली अभिलेखों और दस्तावेजों का अच्छा संग्रह किया है। इसमें १५ वीं शताब्दी ईसवी विक्रमी (संवत् १५१२, शक संवत् १३७७) के गढ़वाल के राजा जगतपाल और उससे उत्तरवर्ती राजाओं के ४० अभिलेख संग्रहीत हैं, जो गढ़वाली भाषा में हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में गढ़वाल के प्राचीन अभिलेखों का संग्रह है। ये ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी के महान् मौर्य सम्राट् अशोक के समय से लेकर पंवार राजवंश के संस्थापक कनकपाल (१०–११ वीं शताब्दी ई०) के समय तक के हैं। इनमें अशोक का शिलालेख प्राकृत भाषा में और शेष सब संस्कृत भाषा में हैं। इनकी लिपि ब्राह्मी (कुटिल) है। ये शिलाओं, त्रिशूलों, मृण्मुद्राओं और ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण हैं।

गढ़वाल के प्राचीन अभिलेखों पर यह पुस्तक एक प्रारम्भिक प्रयास है और इस विषय पर बहुत कुछ कार्य किया जाना अवशिष्ट है। गढ़वाल के अनेक क्षेत्रों का अभी तक सर्वेक्षण नहीं हो सका है। हो सकता है कि अभी भी कुछ और अभिलेखों को खोजा जा सके। इससे प्राचीन गढ़वाली इतिहास के अनेक अनावृत पृष्ठों को खोला जा सकेगा। यह भी सम्भव है कि कुछ अभिलेख भूमि में दब गये हों। प्राचीन इतिहास के महत्त्व के स्थानों की खुदाइयों से सम्भव है कि कुछ और अभिलेख प्राप्त हो सकें तथा गढ़वाल के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में और अधिक सामग्री प्राप्त की जा सके।

प्रस्तुत पुस्तक को लिखने में अनेक पुस्तकों, लेखों आदि की सहायता ली गई है। भारत सरकार के पुरातत्त्व बिभाग से अनेक चित्रों और फोटोग्राफों को प्राप्त किया जा सका है। उन सबके प्रति लेखक अनुगृहीत है और आभार प्रदर्शित करता है। सम्भव है कि इस कृति में कुछ कमियाँ और त्रुटियाँ रह गई हों। इसके लिये यह लेखक विद्वान् महानुभावों से क्षमा-याचना करता है। आशा है कि वे इन त्रुटियों को दूर करने के लिये अपने अमूल्य सुझाव देने की कृपा करेंगे।

पुस्तक का लेखन और प्रकाशन भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद् (Indian Council of Historical Reserch) की आर्थिक सहायता से सम्भव हो सका है। लेखक इसके लिये वहाँ के अधिकारियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है।

डा० कृष्णकुमार

गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख ओर उनका ऐतिहासिक महत्व

पृष्ठ संख्या

प्रथम खण्ड

१. हिमालय तथा उत्तराखण्ड का गौरव

हिमालय का उत्तराखण्ड क्षेत्र अपने धार्मिक महत्त्व और सांस्कृतिक गरिमा के लिये अति प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहा है। इसमें भी गङ्गा-यमुना से पवित्रीकृत गढ़वाल (केदारखण्ड) को अति पवित्र माना गया था। 'रामायण', 'महाभारत', पुराणों और अन्य प्राचीन संस्कृत काव्यों एवं ग्रन्थों में हिमालय की पावनता के गीत गाये गये हैं। इनमें प्रस्तुत धार्मिक लोक-गाथाओं का, विशेष रूप से शिव-शक्ति तथा अन्य देवताओं से सम्बन्धित गाथाओं का घटना-स्थल हिमालय ही रहा है।

हिम से मण्डित तथा गहन हरी-भरी वनस्पतियों से आच्छादित गिरि-शिखर और उपत्यकायें तथा कल-कल निनादिनी सरिताओं से प्रक्षालित तथा पवित्रीकृत घाटियाँ सदा से भारतीय जनों के मानस-समूहों को धार्मिक पवित्रता से अभिभूत करके आकर्षित करती रही हैं। कालिदास ने इस हिमालय को देवताओं की आत्मा माना[१]। यह हिमालय स्वयं जगत् के सर्जक, पालक और संहारक शिव का निवास रहा। इस हिमालय पर पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग के निवासी रहते हैं। भगवान् शिव ने स्वयं इसको अपने प्रचार के लिये तैयार कर संसार का प्रतिनिधि बनाया था[२]।

प्राचीन कवियों का कथन है कि हिमालय सकल सांसारिक सम्पदाओं और पारलौकिक सुखों का हेतु है। इसके आश्रय से ही मानवों ने पृथिवी की सारी सम्पदाओं का दोहन किया था[३]। हिमालय पर्वत दर्शनमात्र से ही सभी पापों का विनाश करता

---

१. अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

—कुमारसम्भव १.१॥

२. क्षितिनभः सुरलोकनिवासिभिः कृतनिकेतमदृष्टपरम्परैः।
प्रथयितुं विभुतामभिनिर्मितं प्रतिनिधिं जगतामिव शम्भुना॥

—किरातार्जुनीयम् ५.३॥

३. यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधींश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्॥

—कुमारसम्भव १.२॥

है[१]। ब्रह्म पद को प्राप्त करने के लिये मुनिजन इस पर्वत पर आया करते थे[२]। हिमालय का यह प्रदेश सब देशों में महान् और पुण्यप्रद इसी प्रकार है, जैसे कि शिव सब देवों में महत्तम हैं[३]। 'महाभारत' में हिमालय को पवित्र भूमि, देवताओं का प्रिय निवास और सभी तीर्थों का धाम कहा गया है[४]।

हिमालय का केदारखण्ड क्षेत्र शिव-शक्ति की निवास भूमि होने के कारण स्वयं ही पुण्यप्रद माना गया था। भारतीय साहित्य में, विशेष रूप से स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड पुराण में इस प्रदेश की महती-महिमा का गान किया गया है। सभी क्षेत्रों में यह क्षेत्र श्रेष्ठ है। इसके एक बार ही दर्शन करके मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है[५]। उत्तम गुणों को प्रदान करने वाले इस क्षेत्र की महिमा को सुनकर मनुष्य शिव के साथ सायुज्य को प्राप्त कर लेता है।

हिमालय को इसकी कन्या रूप सरिताओं ने और भी अधिक पवित्र बनाया है। इससे यह और भी अधिक पुण्यशाली हो गया है। इन सरिताओं में चार अधिक प्रसिद्ध हैं—यमुना, भागीरथी, मन्दाकिनी और अलकनन्दा। यमुना का उद्‌गम यमुनोत्तरी से हुआ है। भागीरथी का उद्‌गम गंगोत्तरी से ऊपर गोमुख से होता है।

---

१. अलमेष विलोकितः प्रजानां सहसा संहतिमहंसां विहन्तुम्।
घनवर्त्म सहस्रधेव कुर्वन् हिमगौरैरचलाधिपः शिरोभिः॥
—किरातार्जुनीयम् ५.१७॥

२. वीतजन्मरसं परं शुचि ब्रह्मणः पदमुपैतुमिच्छताम्।
आगमादिव तमोपहादितः सम्भवन्ति मतयो भवच्छिदः॥
—किरातार्जुनीयम् ५.२२॥

३. यथा सर्वेषु देवेषु श्रीशिवः परिकीर्तितः।
तथा सर्वेषु देशेषु हिमवद्देशसंज्ञितः॥
—केदारखण्डपुराण १०१.४३॥

४. एटकिन्सन्सः हिमालयन गजेटियर वो० II, पार्ट I, पृ० २८१।

५. यथा सर्वेषु देवेषु भक्तराजो हि नारदः।
तथायं सर्वक्षेत्रेषु देशः केदारसंज्ञितः॥
—केदारखण्ड पुराण १०१.१८॥

यथा सर्वेषु वेदेषु सामवेदः प्रकीर्तितः।
तथायं सर्वदेशेषु देशवर्यो विधीयते॥
—केदारखण्ड पुराण १०१.४५॥

इमं देशं सकृद् दृष्ट्वा कृतकृत्यो भवेन्नरः।
यत्र ब्रह्मादयो देवाः शिवसंन्यस्तमानसाः॥
—केदारखण्ड पुराण १०१.२८॥

मन्दाकिनी केदारनाथ के समीप से उद्‌भूत होती है। अलकनन्दा सतोपन्थ में और अलकापुरी से निकल कर बदरीनाथ के क्षेत्र के मध्य से प्रवाहित होती है। विष्णु-प्रयाग तक इसको विष्णुगङ्गा भी कहते हैं।

पुराणों के अनुसार भागीरथी, मन्दाकिनी और अलकनन्दा ये तीनों नदियाँ वस्तुतः एक ही हैं। स्वर्ग से अवतरित होकर गङ्गा की तीन धारायें हो गई हैं। शिव की जटाओं से निकल कर भगीरथ के पीछे जाने वाली धारा का नाम भागीरथी प्रसिद्ध हुआ। दूसरी धारा श्रीमुख पर्वत से उत्तर की ओर गई। उसका नाम अलक-नन्दा हुआ। तीसरी धारा, जो केदारनाथ की ओर गई, मन्दाकिनी कहलाई। कालिदास ने भी वर्णन किया है कि भागीरथी तीन स्रोतों से निकल कर तीनों लोकों को पवित्र करती है[1]। इसी कारण इस नदी को त्रिपथगा भी कहा जाता है[2]।

इन चार नदियों के कारण केदारखण्ड (गढ़वाल) में चार धाम अधिक महत्त्व-शाली और प्रसिद्ध हुए—यमुनोत्तरी, गङ्गोत्तरी, केदारनाथ और बदरीनाथ। इन तीर्थों की महिमा प्राचीन साहित्य में विस्तार से गाई गई है। ये महान् पुण्यदायी हैं। अति प्राचीन काल से भारतीय आर्य जन इन तीर्थ स्थानों की यात्रा करने के लिये, देवताओं का दर्शन करने के लिये, पुण्यलाभ करने के लिये, प्राकृतिक दृश्यों में प्रभु की खोज करने के लिये और परलोक में पुण्यार्जन करने के लिये इस केदारखण्ड में आते रहे हैं। वस्तुतः हिमालय की यह दिव्य विभूति है। इन्हीं तत्वों ने केदारनाथ (गढ़वाल) के इतिहास का निर्माण किया है।

२. केदारखण्ड (गढ़वाल) का भौगोलिक परिचय

गढ़वाल के प्राचीन अभिलेखों से यहाँ के प्राचीन भूगोल और इतिहास का कुछ परिचय प्राप्त होता है। अतः अभिलेखों का अध्ययन करने से पहले इस प्रदेश के भूगोल और इतिहास को संक्षेप से जानना आवश्यक है। केदारखण्ड का भूगोल संक्षेप से इस प्रकार है—

---

१. सापि गङ्गा त्रिधा जाता नामतः शृणु पार्वति ! ।
ज्येष्ठधारा रथस्यानु राज्ञो भागीरथी मता ॥
श्रीमुखस्योत्तरे पार्श्वे मता सा मुक्तिदायिनी ।
अलेकभ्यो महेशान्यलकनन्दा पुनः स्मृता ॥
बदरीविपिने सा वै नारायणपदाम्बुजे ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा मेरुशृङ्गं समाश्रिताः ॥
गता केदारक्षेत्रे या नाम्ना मन्दाकिनी मता ।
यस्या दर्शनमात्रेण पापौघो विलयं व्रजेत् ॥ —केदारखण्ड पुराण ॥

२. त्रिभिः स्रोतोभिरश्रान्तं पुनाना भुवनत्रयम् ॥ —कुमारसम्भव १०.३१ ॥

(क) प्राचीन साहित्य के अनुसार केदारखण्ड की सीमायें—

प्राचीन भारतीय जन हिमालय की विशालता और उसके भूगोल से परिचित रहे थे। उन्होंने इस महान् पर्वत को पाँच विभागों में विभक्त किया था— नेपाल, कूर्माचल, केदार, जलन्धर और काश्मीर[1]। इनमें सबसे पूर्व में नेपाल, उससे पश्चिम में क्रमशः कूर्माचल, केदार, जलन्धर और काश्मीर हैं। इन पाँचों के मध्य में केदारखण्ड है। अतः इसको मध्य हिमालय भी कहते हैं।

स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड पुराण में केदारखण्ड (गढ़वाल) की सीमाओं को सुनिश्चित किया गया है। यह पश्चिम में नन्दा पर्वत से प्रारम्भ होकर पूर्व में काष्ठगिरि तक चला गया है। उत्तर में रत्नस्तम्भ से लेकर दक्षिण में माया क्षेत्र तक इसका विस्तार है[2]। केदारखण्ड पुराण के ४० वें अध्याय में केदारखण्ड को ५० योजन लम्बा और ३० योजन चौड़ा कहा गया है। यह स्वर्ग जाने का मार्ग है। यह पृथिवी से लोकोत्तर है। पश्चिम में तमसा के तट से लेकर पूर्व में बौद्धाचल (बधाण) तक यह विस्तृत है। केदारखण्ड नाम से प्रसिद्ध यह क्षेत्र पृथिवी से भिन्न है[3]।

आधुनिक भौगोलिक नामावली के अनुसार केदारखण्ड (गढ़वाल) क्षेत्र उत्तर में गङ्गा के उद्‌गम से प्रारम्भ से होता है। यह सारा क्षेत्र हिम से आच्छादित रहने के कारण श्वेत पर्वत कहा गया है। दक्षिण में यह गङ्गाद्वार या मायाक्षेत्र तक विस्तृत है। जहाँ कि गङ्गा पर्वत श्रेणियों के मध्य में से निकल कर मैदानी भागों में प्रवाहित होना प्रारम्भ करती है, वह गङ्गाद्वार है। इसको प्राचीन समय में मायाक्षेत्र भी कहा

---

१. खण्डाः पञ्च हिमालयस्य कथिता नेपालकूर्माचलौ।
केदारोऽथ जलन्धरोऽथ रुचिरः काश्मीरसंज्ञोऽन्तिमः॥
—केदारखण्डपुराण २०४.५६॥

२. नन्दापर्वतमारभ्य यावत् काष्ठगिरिर्भवेत्।
तावत्केदारकं क्षेत्रं शिवमन्दिरमुत्तमम्॥
रत्नस्तम्भं समारभ्य मायाक्षेत्रावधि स्मृतम्।
अति पुण्यप्रदं स्थानं हिमालयपदान्वितम्॥
—केदारखण्डपुराण १०१.३०-३१॥

३. पञ्चाशद् योजनायामं त्रिशद् योजनविस्तृतम्।
इदं वै स्वर्गगमनं न पृथ्वीं तां महाविभो॥
गङ्गाद्वारमर्यादं श्वेतान्तं वरवर्णिनि।
तमसातटतः पूर्वभागे बौद्धाचलं शुभम्॥
केदारमण्डलं ख्यातं भूम्यां तद् भिन्नकं स्थलम्।
वात्सल्यात् तत्र देवेशि कथितं देशमुत्तमम्॥
—केदारखण्डपुराण ४०.२७-२९॥

गया था। पौराणिक गाथाओं के अनुसार दक्ष प्रजापति ने अपनी पुत्री माया (सती) के विवाह में इस क्षेत्र को शिव के लिये दहेज के रूप में दिया था। अतः इसको माया क्षेत्र (मायापुर) कहा गया। वर्तमान समय में यह सारा क्षेत्र हरिद्वार की सीमाओं में आ जाता है।

पश्चिम में यमुना की सहायक नदी तमसा (टौंस) गढ़वाल की सीमा का निर्धारण करती है। इस नदी के पश्चिम में हिमाचल प्रदेश है, जो प्राचीन समय में जलन्धर क्षेत्र कहलाता था और उसके पश्चिम में काश्मीर है। गढ़वाल का यह पश्चिमी प्रदेश जॉनसार नाम से प्रसिद्ध है। पूर्व में बौद्धाचल है। वर्तमान समय में इसको बधाण कहते हैं। इस पर्वतीय क्षेत्र से ही पिण्डर नदी का उद्गम पिण्डारी ग्लेशियर है। पिण्डर नदी दक्षिण-पश्चिम की ओर बह कर कर्णप्रयाग में अलकनन्दा में मिल जाती है। वास्तव में गढ़वाल की पूर्वी सीमा पिण्डारी ग्लेशियर तक होनी चाहिये।

इस प्रकार केदारखण्ड की पवित्र भूमि उस स्थान से प्रारम्भ होती है, जहाँ हरिद्वार में शिवालक की उपत्यकाओं को पार करके भगवती पापनाशिनी मन्दाकिनी गङ्गा मैदानों में प्रवेश करती हैं। इससे ऊपर हिमालय पर्वत की श्रेणियों को पार करके उत्तर में ऋषिकेष का पावन क्षेत्र है। यहाँ से हिमालय की प्रमुख पर्वत-शृंखलायें प्रारम्भ होती हैं। इस स्थान को परम पवित्र और ईश्वर प्राप्ति का हेतु मानकर गङ्गा के पावन तट पर ऋषियों ने अपने आश्रम बनाये थे। यह भगवान् राम के भाई भरत का पुण्य तपःक्षेत्र रहा है।

(ख) गढ़वाल की सीमायें और क्षेत्रफल—

गढ़वाल मण्डल उत्तर में २९° २६' अक्षांश से लेकर दक्षिण में ३१° १८' अक्षांश तक तथा पश्चिम में ७७° ४९' देशान्तर से लेकर पूर्व में ८०° ६' देशान्तर तक विस्तृत है। इसके पूर्व में कुमाऊँ, पश्चिम में हिमाचल प्रदेश, दक्षिण में सहारनपुर और बिजनौर जनपद तथा उत्तर में तिब्बत हैं। यह उत्तर प्रदेश का उत्तरी पर्वतीय भू-भाग है। नवीन संघटन के अनुसार इसका क्षेत्रफल ३००९० वर्ग किलोमीटर है तथा इसमें ५ जिले हैं—उत्तरकाशी, चमोली, टिहरी गढ़वाल, पौड़ी गढ़वाल और देहरादून। गढ़वाल मण्डल के जिलों का क्षेत्रफल और जनसंख्या १९७२ ई० की जन-गणना के अनुसार निम्न है—

नाम जिला	**जनसंख्या**	**क्षेत्रफल (किलोमीटर)**
उत्तरकाशी	१४७८०५	८०१६
चमोली	२९२५७१	९१२५
टिहरी गढ़वाल	३९७३८५	४४२१
पौड़ी गढ़वाल	५५३०२८	५४४०

देहरादून	५७७३०६	३०८८
	१६६८०६५	३००६०

(ग) गढ़वाल के प्राकृतिक विभाग—

गढ़वाल की पर्वत शृंखलाओं को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है— महाहिमालय, लघुहिमालय और बाह्य हिमालय। इसके अतिरिक्त पर्वतीय भू-भाग के अंत में तलहटी का समतल भू-भाग है, जो तराई या भाबर कहलाता है। 'महाभारत' में हिमालय के जो तीन भू-भाग—अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि और उपगिरि कहे गये हैं[1], वे इस विभाजन की पुष्टि करते हैं। इस प्रकार गढ़वाल क्षेत्र को पर्वतीय प्राकृतिक दृष्टि से चार भू-भागों में बाँटा जा सकता है—महाहिमालय, लघुहिमालय, बाह्य-हिमालय और भाबर-तराई। इनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से है—

(१) महाहिमालय—

हिमालय की हिमाच्छादित ऊँची पर्वत-शृंखलायें इस भू-भाग के अन्तर्गत हैं। 'महाभारत' का यही अन्तर्गिरि है। इसको उत्तरकुरु भी कहा गया है। इसकी ऊँचाई प्राय: १३०००–२८००० फीट है। हिमालय के सभी ऊँचे शिखर और पर्वत-श्रेणियाँ इसके अन्तर्गत हैं। हिमालय की नदियों का उद्गम यहीं से होता है। गहरी घाटियाँ, खड़े तीव्र ढाल, तीव्र गति से बहती नदियाँ और उनके प्रपात यहाँ हैं। इसके उत्तर में तिब्बत प्रदेश है। इस प्रदेश के पर्वत-नदी आदि का संक्षिप्त परिचय आगे दिया गया है।

गढ़वाल के प्रसिद्ध बुग्याल इसी प्रदेश में हैं। ये अपनी चरागाहों के लिये प्रसिद्ध हैं। इनमें असंख्य वनौषधियाँ हैं और पुष्प खिलते हैं। पाण्डुकेश्वर के समीप पुष्पों की घाटी (Valley of flowers) ने प्रकृति–प्रेमियों का ध्यान आकृष्ट किया है। अन्य बुग्यालों का भी पुष्प-सौन्दर्य कम नहीं है। महाहिमालय में स्थान-स्थान पर दर्रे (माणा दर्रा, नीति दर्रा आदि) हैं। इन भागों से यात्रा करना सम्भव हो जाता है। शिवप्रसाद डबराल ने अनेक दर्रों (गिरिद्वारों) के नाम उनकी ऊँचाई सहित गिनायें हैं।

(२) लघुहिमालय—

महाहिमालय के दक्षिण में लघुहिमालय है। 'महाभारत' का बहिर्गिरि यही क्षेत्र है। इसको कुरुजांगल भी कहा गया है। इसकी ऊँचाई ५०००–१३००० फीट है। हिमालय के सघन वनाच्छादित प्रदेश, उपजाऊ खेत, वाटिकायें और सघन आबादी

१. अन्तर्गिरिं च कौन्तेय तथैव च बहिर्गिरिम्।
तथैवोपगिरिं चैव विजिग्ये पुरुषर्षभ ॥

—महाभारत–सभापर्व २७.३१

इसी क्षेत्र में हैं। महाहिमालय से निकलने वाली नदियाँ यहीं से होकर नीचे की ओर बहती हैं।

(३) बाह्य हिमालय—

लघु हिमालय के दक्षिण में बाह्य हिमालय है। 'महाभारत' में इसको उपगिरि कहा गया है। सम्भवतः यह कुरु जनपद का उत्तरी भाग था। वर्तमान समय में यह शिवालिक पर्वत-श्रेणी के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी ऊँचाई सामान्यतः ३००० फीट तक है। लघु हिमालय और बाह्य हिमालय के मध्य में अनेक मैदान आ गये हैं। देहरादून और ऋषिकेश इन्हीं में बसे हुये हैं।

(४) भाबर-तराई—

शिवालिक पर्वत-शृंखला की तलहटी से मैदानी प्रदेश तक का भू-भाग भाबर-तराई कहलाता है। भाबर ऊँचा-नीचा और विषम है तथा भूमि खुष्क है। तराई का भाग बहुत कुछ समतल है। यह भाग घने वृक्षों से आच्छादित है तथा यहाँ सैंकड़ों प्रकार की औषधियाँ प्राप्त होती हैं। घने वनों में विविध हिंस्र तथा शाक भोजी जन्तु, सरीसृप आदि मिलते हैं।

(घ) पर्वत-श्रेणियाँ—

राहुल सांकृत्यायन ने गढवाल की पर्वत-श्रेणियों को १९ भागों में विभक्त किया है। इनमें कुछ पर्वत-श्रेणियाँ बारहों महीनों हिमाच्छादित रहती हैं। ये १७००० फीट से अधिक ऊँची हैं। कुछ पर सरदियों में (नवम्बर से अप्रैल तक) हिम रहता है। कुछ पर हिम प्रायः नहीं रुकता है। मुख्य पर्वत-श्रेणियाँ इस प्रकार हैं—

(१) नन्दादेवी—

यह पूर्व से पश्चिम तक २५ किलोमीटर तक फैली हुई है। नन्दादेवी, नन्दाकोट, त्रिशूल जैसे शिखर इस श्रेणी में हैं।

(२) बदरीनाथ श्रेणी—

यह बदरीनाथ से लेकर केदारनाथ तक विस्तृत है। इसमें बदरीनाथ, केदारनाथ, चौखम्बा आदि शिखर हैं। बदरीनाथ और नन्दादेवी पर्वत-श्रेणियों को क्रौंच दर्रा पृथक् करता है।

(३) कामेत-गन्धमादन श्रेणी—

नन्दादेवी और बदरीनाथ पर्वत-श्रेणियों के उत्तर में एक और पर्वत-श्रेणी है, जो तिब्बत की सीमा तक विस्तृत है। इसकी सामान्य ऊँचाई १८००० फीट है। कामेत और गन्धमादन पर्वत इसी श्रेणी में हैं।

(४) गङ्गोत्तरी श्रेणी—

इस पर्वत-श्रेणी के शिखर भी हिमाच्छादित रहते हैं। भगवती भागीरथी का उद्गम इसी श्रेणी में से है। शिवलिंग, भगीरथ आदि इसके शिखर हैं।

(५) यमुनोत्तरी श्रेणी—

यह यमुना का उद्गम स्थान है। बन्दरपूँछ पर्वत इसी श्रेणी में है।

(६) तुङ्गनाथ श्रेणी—

यह बदरीनाथ से केदारनाथ तक विस्तृत है। मन्दाकिनी और अलकनन्दा की उपत्यकाओं का यह विभाजन करती है।

(७) मन्दाकिनी श्रेणी—

यह पर्वत-श्रेणी केदारनाथ से प्रारम्भ होकर रुद्रप्रयाग तक चली गई है। यह मन्दाकिनी और भागीरथी की घाटियों को पृथक् करती है।

(८) रमनी श्रेणी—

यह पर्वत-श्रेणी अलकनन्दा के पूर्व में नन्दा पर्वत-श्रेणी के त्रिशूल शिखर से प्रारम्भ होती है। यह नन्दाकिनी और विरही नदियों की घाटियों को पृथक् करती है।

(९) खमिल श्रेणी—

खमिल पर्वत श्रेणी नन्दाकिनी उपत्यका और पिण्डर उपत्यका का विभाजन करती है।

(१०) नन्दाकोट-दूधातोली श्रेणी—

यह पर्वत-श्रेणी सरयू और गङ्गा की जल-विभाजक है। इसके पश्चिम की नदियों का जल गङ्गा में मिलता है।

(११) ग्वालदम श्रेणी—

यह पर्वत-श्रेणी रमणी श्रेणी की ही एक शाखा है। यह रामगङ्गा और सरयू उपत्यकाओं की विभाजक है।

(१२) दूधातोली श्रेणी—

यह पर्वत-श्रेणी काले चूना पत्थर की है और सीधी खड़ी है। इसकी तलहटियों की भूमि उर्वर है। यह ग्वालदम पर्वत-श्रेणी से सम्बद्ध है। इसकी ऊँचाई ६०००—१०१८८ फीट है। इसकी अनेक शाखायें हो गई हैं।

(१३) धनपुर श्रेणी—

यह पर्वत-श्रेणी दूधातोली से पूर्व-पश्चिम की ओर चली गई है। इसके शिखर प्रायः ९०००—१०००० फीट ऊँचाई तक के हैं। यह व्यासघाट तक फैली है।

(१४) अमेली श्रेणी—

यह पर्वत-श्रेणी भी दूधातोली की ही एक शाखा है। यह दोनों नयार नदियों की उपत्यकाओं का विभाजन करती है। सतपूली में दोनों नयार नदियों का संगम है।

(१५) विनसर-रानीगढ़ श्रेणी—

यह पर्वत-श्रेणी भी दूधातोली पर्वत-श्रेणी की एक शाखा ही है। यह पूर्वी नयार की उपत्यका के उत्तर-पूर्व में है।

(१६) खतली श्रेणी—

विनसर श्रेणी से आगे पूर्व में खतली पर्वत-श्रेणी है। यह पूर्व में अलमोड़ा की सीमा में खमलेकगढी के पश्चिम में रिखनीखाल तक चली गई है।

(१७) उताई श्रेणी—

रिखनीखाल से आगे चमेताखाल तक यह पर्वत-श्रेणी है। इसकी ऊँचाई प्रायः ४००० फीट है। मुख्य शिखर ६९०० फीट है। यह श्रेणी लैंसडाउन तक विस्तृत है।

(ङ) पर्वत-शिखर—

गढवाल के पर्वत-शिखर औसतन सारे हिमालय में सबसे ऊँचे हैं। यद्यपि हिमालय का सर्वोच्च शिखर गौरीशंकर (एवरेस्ट) नेपाल में है, तथापि संख्या में अधिक ऊँचे हिमाच्छदित शिखर जितने गढवाल में हैं, उतने अन्यत्र नहीं हैं। राहुल सांकृत्यायन ने इसके १५ शिखरों की गणना है—

(१) कामेत—

२५४४३ फीट ऊँचाई का यह शिखर विष्णुगङ्गा और धवलगङ्गा नदियों की मध्यवर्ती पर्वत-श्रेणी में है। नीति और माणा दर्रे इसके समीप हैं। इसकी हिमानियों से रिसते जल से देवरियाताल बना है।

(२) कुनलिङ्—

बदरीनाथ के समीपवर्ती यह शिखर दो भागों में विभाजित है। इनमें नर पर्वत की ऊँचाई २१२२६ फीट और नारायण पर्वत की ऊँचाई २००३८ फीट है। इसके पूर्व में नीलकण्ठ शिखर है।

(३) केदारनाथ—

इस शिखर के दो खण्ड हैं -भारतखण्ड और खरचाखण्ड। ये क्रमशः २२८४४ और २१६९५ फीट ऊँचे हैं। इन शिखरों के मध्य केदारनाथ तीर्थ है।

(४) गौरीपर्वत—

यह कामेत पर्वत-श्रेणी का ही एक शिखर है।

(५) चौखम्बा —

यह शिखर बदरीनाथ धाम से उत्तर में है और २०००० फीट ऊँचा है।

(६) नन्दादेवी—

नन्दादेवी एक शिखर-समूह है। इसका मुख्य शिखर २५६६० फीट ऊँचा है। नन्दा पार्वती का ही एक नाम है। शिखर से नीचे प्रति बारहवें वर्ष नन्दादेवी का मेला लगता है। अति दुर्गम होने से बहुत कम व्यक्ति ही वहाँ पहुँच पाते हैं।

(७) नन्दाकोट—

यह शिखर नन्दादेवी परिवार का ही है। इसकी ऊँचाई २२५३० फीट है।

(८) दूनागिरि—

यह शिखर भी नन्दा परिवार का है। उस शिखर के समीप ही यह २३१४४ फीट ऊँचा है।

(९) त्रिशूल—

त्रिशूल पर्वत-शिखर भी नन्दा परिवार का ही है। नन्दा (पार्वती) के समीप ही त्रिशूलधारी शिव को होना चाहिये। तीन शिखरों के रूप में यह त्रिशूल पर्वत है। त्रिशूल शिखर की तीनों चोटियाँ सरल रेखा में उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम में चली गई हैं। ये क्रमशः २३४०६, २२४९० और २२३६० फीट ऊँची हैं।

(१०) तुङ्गनाथ—

तुङ्गनाथ शिखर को चन्द्रशिला भी कहते हैं। गोपेश्वर-ऊखीमठ मार्ग पर चोपता चट्टी से तीन मील उत्तर में यह शिखर १२०७१ फीट ऊँचा है।

(११) बन्दरपूँछ—

यह शिखर उत्तरकाशी जिले के रवांई परगने में स्थित है। यहाँ तीन पर्वत-शिखर एक दूसरे के सामने खड़े हैं। ये हैं—श्रीकण्ठ, बन्दरपूँछ और यमुनोत्तरी। बन्दरपूँछ की ऊचाई २०७३१ फीट है।

(१२) यमुनोत्तरी—

२०९३८ फीट ऊँचा यह शिखर बन्दरपूँछ पर्वतश्रेणी में बन्दरपूँछ शिखर के सामने स्थित है। इसकी तलहटी से यमुना नदी का उद्गम होता है।

(१३) श्रीकण्ठ—

श्रीकण्ठ शिखर की स्थिति गोमुख के समीप है। इसकी ऊँचाई २०१४० फीट है। गोमुख में जहाँ से गङ्गा की धारा का उद्गम है, बायीं ओर का शिखर शिवलिंग शिखर कहलाता है। दायीं ओर का शिखर नीलकण्ठ है।

(१४) सतोपन्थ—

सतोपन्थ (सत्यपथ) शिखर की ऊँचाई २३६६० फीट है। इसकी तलहटी में हिमाच्छादित हिमसरोवर से अलकनन्दा निकलती है।

(१५) स्वर्गारोहिणी—

यह शिखर केदारनाथ श्रेणी में ही है। 'केदारकल्प' के अनुसार इसके शिखर पर भृगुपृष्ठ से गिरने पर छत्र लेकर स्वयं इन्द्र उपस्थित होते हैं और भक्त को शिव-लोक पहुँचा देते हैं। परन्तु अब यह प्रयास बन्द हो चुका है। स्वर्गारोहिणी शिखर की ऊँचाई २०२९५ फीट है।

(च) हिमानियाँ—

हिमालय पर्वत के पूर्व से लेकर पश्चिम सिरे तक हिमाच्छादित पर्वतों से निकलती हुई नदियाँ पहले प्रायः हिमनदों के रूप में हैं। ये हिमनद नीचे उतर कर बहते जल की नदी का रूप ले लेते हैं। गढ़वाल में भी पूर्व में नन्दादेवी से लेकर पश्चिम में यमुनोत्तरी तक अनेक हिमनद (हिमानियाँ-ग्लेशियर) हैं। इनका पूरा विवरण बहुत लम्बा होगा। तथापि संक्षेप से कुछ कहना आवश्यक है।

पिण्डर नदी का उद्गम पिण्डारी ग्लेशियर से, अलकनन्दा का सतोपन्थ ग्लेशियर से और भागीरथी का उद्गम भागीरथी ग्लेशियर से होता है। कामेत, त्रिशूल, चौखम्बा आदि शिखरों से खिसकती हिम से अनेक हिमानियाँ बन गई हैं। कुछ हिमानियों के नाम राहुल सांकृत्यायन ने अपने ग्रन्थ, 'हिमालय परिचय (१),' में दिये हैं।

(छ) **नदियाँ**—

गढ़वाल की नदियों का बहुत महत्त्व है। यहाँ से निकली नदियाँ भारतवर्ष की आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक गरिमा की उद्घोषक और पोषक हैं। गङ्गा-यमुना के स्रोत गढ़वाल में हैं। कैप्टन शूरवीरसिंह के अनुसार 'ऋग्वेद' का सप्तसैंधव प्रदेश यही है। ये सात सिन्धु हैं—भागीरथी, मन्दाकिनी, नन्दाकिनी, अलकनन्दा, धवलगङ्गा, पिण्डर और नयार [1]।

केदारखण्ड प्रदेश यमुना, भागीरथी, भिलंगना, मन्दाकिनी और अलकनन्दा की उपत्यकाओं में बसा हुआ है। इसके साथ ही दक्षिण में रामगङ्गा है। भागीरथी, मन्दाकिनी और अलकनन्दा मिलकर गङ्गा कहलाती हैं। यमुना और रामगङ्गा भी आगे चलकर गङ्गा में ही मिल जाती हैं।

यमुना नदी की रचना बन्दरपूँछ पर्वत-श्रेणी से निकलने वाली अनेक धाराओं से मिलने से हुई है। इसकी मुख्य सहायक नदियाँ गिरिनदी और तमसा (टौंस) हैं। तमसा की सहायक नदियाँ रुपिन और सुपिन हैं।

भागीरथी गोमुख हिमानी से निकलकर देवप्रयाग में अलकनन्दा से मिलती है। इसकी प्रमुख सहायक हैं—जाडगङ्गा (जाह्नवी) और भिलंगना। अलकनन्दा का उद्गम अलकापुरी और सतोपन्थ से हुआ है। विष्णुप्रयाग में धवलगङ्गा में मिलने से पहले इसको विष्णुगङ्गा भी कहते हैं। इसकी मुख्य सहायक नदियाँ हैं—सरस्वती, ऋषिगङ्गा, रुद्रगङ्गा, पातालगङ्गा, विरहीगङ्गा, नन्दाकिनी, पिण्डर और मन्दाकिनी।

मन्दाकिनी का उद्गम केदारनाथ के शिखरों की हिमानियों से हुआ है। अनेक छोटी-छोटी नदियों के जल को साथ में लेकर यह रुद्रप्रयाग में अलकनन्दा में मिल जाती है।

रामगङ्गा का उद्गम गढ़वाल-कुमाऊँ सीमा के समीपवर्ती प्रदेश से हुआ है। यह दक्षिण-पूर्व गढ़वाल में से बहकर उत्तरप्रदेश के अनेक जिलों को पार करके कन्नौज के समीप गङ्गा में मिल जाती है।

गढ़वाल की नदियों में नयार का भी बहुत महत्त्व है। दूधातोली पर्वत के दो पार्श्वों से पूर्वी और पश्चिमी नयार निकलकर सतपूली के समीप मिल जाती हैं।

---

१. कैप्टन शूरवीरसिंह : गढ़वाली के प्रमुख अभिलेख और दस्तावेज।
पृ० प्रस्तावना ॥

तदनन्तर यह सम्मिलित नयार व्यासघाट में गङ्गा में मिलती है। इस संगम को इन्द्रप्रयाग भी कहते हैं।

प्राचीन साहित्य में मालन (मालिनी) बहुत प्रसिद्ध है। यह कोटद्वार के समीप भाबर में से बहती हुई नजीबाबाद की ओर जाती है और उसके बाद गङ्गा में मिल जाती है।

(ज) ताल और कुण्ड—

गढ़वाल में ताल और कुण्ड असंख्य संख्या में हैं। छोटे-बड़े इन तालों की गणना करना भी कठिन है। तथापि कुछ प्रमुख तालों का विवरण देना समुचित होगा।

केदार खण्ड की पर्वत-श्रेणियाँ कहीं-कहीं इस प्रकार मिल गई हैं, जिनमें अपने निर्गम का स्थान न पाकर जल एकत्रित हो जाता है। वह ताल बन जाता है। कुछ ताल तो बहुत विस्तृत हैं और शीतल स्वच्छ जल से भरे हुये हैं। कुछ में केवल वर्षा का जल ही एकत्रित होता है। उनको खाल कहते हैं। कुछ ताल सूख गये हैं। वे काणाताल कहलाते हैं[1]।

सतोपन्थ ताल बदरीनाथ से २० किलोमीटर उत्तर में हिमाच्छादित सरोवर है। यह अलनन्दा का उद्गम है। रूपकुण्ड ताल समुद्र तल से १६००० फीट ऊँचाई पर है। यह इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हो गया है। यहाँ ६०० वर्ष पुराने अस्थि कंकाल मिले हैं। कहा जाता है कि इसका निर्माण भगवती नन्दा ने कैलास जाते हुये अपने स्नान के लिये किया था[2]। वेनीताल की स्थिति चांदपुरगढ़ी के उत्तर में पाँच किलोमीटर दूर है। वासुकिताल नागपुर पट्टी में केदारनाथ से आठ किलोमीटर दूर १८००० फीट की ऊँचाई पर है। केदारनाथ के समीप चोरबाड़ी ताल में महात्मा गाँन्धी की अस्थियों का विसर्जन हुआ था। अतः इसको गान्धी सरोवर भी कहते हैं। गौनाताल (विरही ताल) की स्थिति विरहीगङ्गा के तट पर गोहना ग्राम के समीप है। १८९३ ई० में इसके टूटने से भयानक बाढ़ आकर सारा श्रीनगर डूब गया था और वह कर नष्ट हो गया।

देवरिया ताल हिमाच्छादित शिखरों—चौखम्बा, नीलकण्ठ आदि के मध्य में ८००० फीट की ऊँचाई पर है। ऊखीमठ से यह तीन किमी है। हेमकुण्ड (लोकपाल ताल) की स्थिति पाण्डुकेश्वर से १६ मील पर है। इसको सिखों ने अपना धार्मिक तीर्थ बना लिया है। कहा जाता है कि यहाँ गुरु गोविन्दसिंह ने पूर्व जन्म में तपस्या की थी। इसको लक्ष्मणताल भी कहा जाता है। यहाँ लक्ष्मण का प्राचीन मन्दिर है।

मेकल ताल के लिये रूपकुण्ट होकर जाना पड़ता है। ९००० फीट की ऊँचाई

---

१. शिवानन्द नौटियाल: गढ़वाली जनमानस पृ० ७८

२. वही पृ० ७५।

पर स्थित एक किमी घेरे का यह ताल बहुत सुन्दर है। समुद्र तल से १६७६० फीट ऊँचे दो किमी० घेरे के सहस्रताल से मिलंगना नदी का उद्गम हुआ है । दो पर्वतों के मध्य आधा किमी० घेरे के अप्सराताल का दृश्य भी अति मनोरम है । इसके चारों ओर प्रसिद्ध पुष्पों की घाटी है । इस ताल में ब्रह्मकमल खिले रहते हैं ।

टिहरी-उत्तरकाशी के तालों में यमताल प्रसिद्ध है । हिम से सदा आच्छादित रहने वाले इस ताल के किनारे चलना भी अति कठिन है । डोडीताल के लिये उत्तर-काशी से गंगोरी होकर जाना पड़ता है । यहाँ से उसी नदी का उद्गम होता है । उत्तरकाशी जिले की धनपट्टी में पचाणा गांव के समीप नचिकेता ताल सदा स्वच्छ जल से भरा रहता है । डोर्डाताल के पीछे एक काणाताल है। इसमें सदा जल नहीं रहता ।

दूधातोली पर्वत-शृंखला के मध्य एक विशाल ताल है । यह दूधिया रंग के जल से भरा रहता है । यहाँ जाने का मार्ग थलीसैंण होकर है ।

(झ) तप्तकुण्ड—

गढ़वाल में अनेक तप्तकुण्ड भी विद्यमान हैं । इनके उष्ण जल के कारण यहाँ निवास करने वालों को कुछ सुविधा हो जाती है । बदरीनाथ, केदारनाथ और यमुनोत्तरी में तप्तकुण्ड हैं ।

बदरीनाथ मन्दिर के समीप तप्तकुण्ड इस शीतल प्रदेश में अति सुखद है । गन्धक का अंश अधिक होने के कारण इसका जल पेय नहीं है। इसका तापमान १२८ फारेनहाइट रहता है । केदारनाथ से पहले गौरीकुण्ड में उष्ण जल का कुण्ड है । इसमें स्नान करने से पापों का प्रक्षालन होता है । यमुनोत्तरी का तप्तकुण्ड मन्दिर से कुछ नीचे समुद्रतल से १०००० फीट ऊँचाई पर है । इसका तापमान १९४ फारेनहाइट रहता है । पोटली में चावल बाँध कर इस कुण्ड के जल में डाल देने पर वे पक जाते हैं ।

गढ़वाल में अन्य भी तप्तकुण्ड हैं । इनमें से कुछ के नाम राहुल सांकृत्यायन ने अपने ग्रन्थ 'हिमालय परिचय (१)' के पृष्ठ १७ पर दिये हैं ।

(ञ) प्रयाग—

गढ़वाल के भौगौलिक परिवेश और इतिहास में प्रयागों का महत्त्व बहुत अधिक है। दो नदियों के संगम को प्रयाग कहते है ।गढ़वाल में छोटी-बड़ी नदियों के संगम विभिन्न प्रयागों के नामों से प्रसिद्ध हुये हैं । इनका संक्षिप्त विवरण देना उपयोगी होगा ।

गढ़वाल के पञ्चप्रयाग प्रसिद्ध हैं । ये अलकनन्दा के साथ अन्य नदियों के संगम से बने हैं । ये हैं –

(१) विष्णुप्रयाग—यह प्रयाग जोशीमठ से २.५ किमी आगे विष्णुगङ्गा (अलकनन्दा) और धवलगङ्गा का संगम है ।

(२) नन्दप्रयाग—यहां अलकनन्दा और नन्दाकिनी का संगम है।

(३) कर्णप्रयाग—यहाँ अलकनन्दा और पिण्डर नदी का संगम है।

(४) रुद्रप्रयाग—यहाँ अलकनन्दा और मन्दाकिनी का संगम है।

(५) **देवप्रयाग**—यहाँ अलकनन्दा ओर भागीरथी का संगम है।

इनके अतिरिक्त अन्य भी कुछ प्रयाग इस प्रकार हैं।

(१) केशवप्रयाग—अलकनन्दा और सरस्वती का संगम। बदरीनाथ के समीप माणा ग्राम।

(२) सोमप्रयाग—मन्दाकिनी और सोम नदी का संगम। केदारनाथ के मार्ग में गौरीकुण्ड से पहले।

(३) सूर्यप्रयाग—मन्दाकिनी और अलसतरंगिणी (अलस्तर) का संगम। रुद्रप्रयाग से ८ मील केदारनाथ मार्ग पर।

(४) कूलप्रयाग—अलकनन्दा और हर्षवती का संगम। श्रीनगर से १० मील आगे रुद्रप्रयाग के मार्ग पर।

(५) शिवप्रयाग—अलकनन्दा और खाण्डवगङ्गा का संगम। श्रीनगर से ५ मील नीचे।

(६) ढुण्डिप्रयाग—अलकनन्दा और ढुण्डी नदियों का संगम। शिवप्रयाग के के सामने अलकतन्दा के दूसरे पार।

(७) गणेशप्रयाग—भागीरथी और भिलंगना का संगम। यहाँ टिहरी नगर है।

(८) इन्द्रप्रयाग—गङ्गा और नयार का संगम। यह व्यासघाट के समीप है।

(३) गढ़वाल का संक्षिप्त इतिहास

गढ़वाल के अति प्राचीन काल के इतिहास के पृष्ठ उसी प्रकार से अस्पष्ट और अज्ञात हैं, जिस प्रकार कि अन्य भारनीय प्रदेशों के इतिहास के हैं। तथापि अन्य भारतीय प्रदेशों का इतिहास जितना हमको विदित हो सका है, उतना गढ़वाल का नहीं हुआ। यहाँ सम्भवतः न तो इस प्रकार के कोई इतिहास लेखक हुये, जो कल्हण के समान 'राजतरंगिणी' लिख कर इस प्रदेश के इतिढ़ास को स्पष्ट कर पाते ओर नाहीं इस प्रकार के उच्च कोटि के अखिल भारतीय स्तर के कवि और शास्त्रकार हुये, जो अभिनवगुप्त, आनन्दवर्धन, क्षेमेन्द्र, बिल्हण आदि के सदृश ग्रन्थों और काव्यों की रचना करके विद्या प्रेमियों को चमत्कृत कर पाते। यदि हुये भी होंगे तो उनकी कृतियाँ या तो नष्ट हो गई अथवा काल के विकराल गर्भ में विलुप्त हो गई। अतः हमारे समक्ष गढ़वात के प्राचीन इतिहास का स्पष्ट चित्र उपस्थित नहीं हो पाता।

इस प्रकार की स्थिति होने पर भी भारतीय प्राचीन शास्त्रों 'महाभारत' और पुराणों में मध्य हिमालय (गढ़वाल) के अनेक विवरण आ जाते हैं। प्राचीन समय में इस भूभाग के अनेक नाम विभिन्न समयों में प्रसिद्ध रहे थे। मध्य हिमालय,

केदारखण्ड, उत्तराखण्ड आदि नामों का विवरण प्राचीन साहित्य में मिलता है। 'महाभारत' में इस प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के लिये उत्तरकुरु, कुरुजांगल आदि नाम भी प्राप्त होते हैं। कुलिन्द विषय, खसमण्डल, बावनी, गढ़देश, गढ़वान, गढ़पाल और गढ़वाल आदि नाम भी प्रचलित हुये थे। गढ़वाल नाम बहुत बाद का है, जो सम्भवतः अजयपाल (१५०० ई०) के समय में पड़ा। उसने इस प्रदेश के ५२ गढ़ों को जीतकर एक शासन के अन्तर्गत सुसंगठित किया था।

जैसे कि पहले लिखा जा चुका है, 'केदारखण्ड पुराण' में केदारखण्ड (गढ़वाल) की सीमायें सुनिश्चित की गई थीं। इसके उत्तर में श्वेत पर्वत, दक्षिण में माया क्षेत्र, पश्चिम में तमसा (टौंस) नदी और और पूर्व में बौद्धाचल (बधाण) थे। वर्तमान समय में भी गढ़वाल मण्डल की सीमायें प्रायः यही हैं। इतना अवश्य है कि मायाक्षेत्र (हरिद्वार) अब गढ़वाल मण्डल में नहीं है।

गढ़वाल के इतिहास को विविध स्रोतों से जानने का प्रयत्न किया गया है। अति प्राचीन काल का इतिहास तो केवल साहित्य से, महाभारत, पुराण आदि से ही जाना जा सकता है। परन्तु ई० पू० तीसरी शताब्दी से बाद के अनेक अभिलेखों से उस युग के इतिहास के तत्त्वों को कुछ जाना जा सका है। इसके अतिरिक्त पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्री, मुद्राओं, मन्दिरों, मूर्तियों और खुदाइयों में उपलब्ध हो सकी हैं और इनसे प्राचीन इतिहास पर प्रकाश पड़ा है। उदाहरण के लिये तीसरी शताब्दी ई० पू० के अशोक कालीन शिलालेख कालसी के समीप प्राप्त हुये हैं। इनसे विदित होता है कि ये सारे क्षेत्र अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत थे। दूसरी शताब्दी ई० के इष्टिका-लेख कालसी के समीप जगतग्राम में मिले हैं। इनसे विदित होता है कि यहाँ राजा शीलवर्मन ने अश्वमेघ यज्ञ किया था और वह पर्वतीय प्रदेश का राजा था। इसी प्रकार लाखामण्डल के शिलालेख, देवप्रयाग की यात्री-नामावली, पाण्डुकेश्वर से प्राप्त कत्यूरी वंश के राजाओं के ताम्र-शासन पत्र प्राचीन इतिहास पर निश्चय ही प्रकाश डालते हैं। ताम्र-शासनों के आरम्भिक और अन्तिम अंशों में दानदाता नरेशों और उनके वंशों के विषय में कुछ जानकारी अवश्य है।

इसी प्रकार से उपलब्ध प्राचीन मुद्रायें इतिहास पर प्रकाश डालती हैं। "महाभारत" में उत्तराखण्ड पर कुलिन्द वंश के शासन का उल्लेख है। श्रीनगर के समीप सुमाड़ी ग्राम से प्राप्त कुलिन्द मुद्राओं ने इस शासन को पुष्ट किया है। सहारनपुर और गढ़वाल के भाबर क्षेत्रों से प्राप्त प्राचीन अवशेष इस बात को और भी पुष्ट करते हैं। अन्य पुरातत्त्व सामग्री, जैसे प्राचीन गढ़ियों और मन्दिरों के अवशेषों तथा उनमें रखी हुई मूर्तियों से प्राचीन इतिहास पर प्रकाश पड़ सकता है। यद्यपि इस सम्बन्ध की बहुत कुछ सामग्री नष्ट हो गई है, तथापि बची सामग्री की सुरक्षा करना तथा नई सामग्री को खोजना भी आवश्यक है। आज भी प्रभूत पुरातत्त्व सामग्री—भूमि के गर्भ में है या जंगलों में बिखरी है। शाकम्भरी देवी मन्दिर के पीछे के पर्वतीय भाग में इस प्रकार के अवशेष देखे जा सकते हैं। कोटद्वार के समीप कण्व आश्रम भी ऐसा स्थान है।

(क) गढ़वाल के इतिहास का समय विभाजन—

राहुल सांकृत्यायन **ने** गढ़वाल के इतिहास को समय के अनुसार विभाजित करके इसके आठ काल निर्धारित किये हैं—प्रागैतिहासिक काल, आरम्भिक इतिहास, कत्यूरी शासन, बहुराजकता, पंवार वंश, गोरखा शासन, अंग्रेजी शासन और वर्तमान स्वतन्त्र भारत। राहुल जी का यह समय-विभाजन बहुत युक्ति संगत है तथा इसका अनुसरण करना ही उचित प्रतीत होता है।

(ख) प्रागैतिहासिक काल—

प्रागैतिहासिक काल के इतिहास को दो दृष्टियों से देखा जा सकता है। एक तो आर्य जाति की दृष्टि से तथा दूसरा आर्येतर जातियों के निवास की दृष्टि से।

आर्य दृष्टिकोण धार्मिक विचारधारा को लेकर चलता है। हिन्दुओं (आर्यों) के पवित्रतम तीर्थ गढ़वाल में हैं। यहाँ के चार धाम यमुनोत्तरी, गङ्गोत्तरी, केदारनाथ और बदरीनाथ हैं। इनके मार्गों में पड़ने वाले तीर्थ-स्थान हरिद्वार से ही प्रारम्भ हो जाते हैं। हरिद्वार से ऋषिकेश, देवप्रयाग, उत्तरकाशी, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग, गुप्तकाशी, गौरीकुण्ड, ऊखीमठ, विष्णुप्रयाग आदि तीर्थ तथा, सैंकडों अन्य तीर्थ यात्रा-मार्ग पर हैं। अनेक तीर्थों पर स्वयं महादेवताओं—ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने भी तप किया था। भगवान् राम ने स्वयं विश्वेश्वर शिव के लिङ्ग की स्थापना देवप्रयाग में की थी। रावण ब्राह्मण के वध से उत्पन्न ब्रह्महत्या के पाप का निवारण करने के लिये वे वहाँ आये थे। उन्होंने ऋषिकेश में त्रिवेणीघाट पर तप करने के बाद उत्तराखण्ड की यात्रा की थी। उनके नाम से शिव-पूजन की परम्परा देवप्रयाग और श्रीनगर में अब भी विद्यमान है। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के मन्दिर क्रमशः ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला और मुनि की रेती में हैं।

उत्तराखण्ड में प्राचीन काल में आर्यों के आने के अनेक विवरण प्राप्त होते हैं। 'रामायण', 'महाभारत' और पुराणों में इस प्रकार के वर्णन भरे पड़े हैं। मनु, वेन और पृथु जैसे राजाओं ने यहाँ तप किया था। कपिल, वसिष्ठ, विश्वामित्र, ऋष्यशृङ्ग, मेधातिथि, उद्दालक, व्यास आदि ऋषियों की यह तपोभूमि रहा। गङ्गा के तटवर्ती मुनि की रेती और तपोवन नाम ही सिद्ध करते हैं कि इस भूमि में ऋषियों के आश्रम प्रचुर संख्या में रहे होंगे। गढ़वाल की नदियों तथा अन्य स्थानों के नाम ऋषियों के नामों पर हैं। अयोध्या के राजा भगीरथ ने गङ्गोत्तरी और गोमुख में तप करके तथा श्रीकण्ठ शिखर पर स्थित होकर गङ्गा को स्वर्ग से अवतरित कराया था। इसीलिये यह भागीरथी कहलाई। इन्हीं के वंशज दशरथ ने देवप्रयाग में तप किया और इस कारण यह पर्वत दशरथाचल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ से निकलने वाली नदी का नाम भी उनकी पुत्री शान्ता के नाम पर शान्ता है। भिलंगना नदी की घाटी भिलंग कहलाती है। यहां भिल्ल रूप धारी शिव अपनी

प्रियतमा पार्वती के साथ 'हिमालय पुत्री' विहार करते हैं । भुवनेश्वरी, चन्द्रवदनी, कुब्जापुरी, राजराजेश्वरी, सुरकण्ठा, सुरेश्वरी आदि उन्हीं के प्रसिद्ध मन्दिर हैं। प्रसिद्ध है कि परशुराम ने इसी भूमि में भगवान् शिव से धनुर्विद्या को प्राप्त किया था। अगस्त्यमुनि नामक स्थान, (रुद्रप्रयाग और गुप्तकाशी के मध्य) अगस्त्य मुनि का तपःक्षेत्र रहा था। सूर्यप्रयाग (तिलबाड़ा) के समीप सप्तर्षियों के तप का वर्णन केदारखण्ड पुराण में है। माणा ग्राम में प्रसिद्ध व्यासगुहा है । यहाँ व्यास मुनि ने 'महाभारत' और पुराणों की रचना की थी। यहाँ गणेशगुहा भी है, जिसमें उनके लिपिक गणेश देवता रहते थे।

उत्तराखण्ड (गढ़वाल) की भूमि के साथ आर्यों की अति प्राचीन परम्परायें होने पर भी यह विचारणीय प्रश्न रह जाता है कि यहाँ के मूल निवासी कौन थे। प्रायः अधिकांश इसिहासविदों का मत है कि आर्य जाति ने यहाँ बाद में प्रवेश किया। उससे पहले यहाँ किरात, किन्नर, नाग, यक्ष, खस आदि जातियाँ निवास करती थीं। प्रागैतिहासिक काल का इतिहास इन्हीं जातियों का है। इनका स्पष्ट इतिहास तो नहीं मिलता, परन्तु प्राचीन साहित्य में और इस प्रदेश की संस्कृति में इनके संकेत अवश्य मिलते हैं। ।

(१) यक्ष—

गढ़वाल में प्राचीन समय में यक्ष जाति का निवास अवश्य रहा था। परम्पराओं के अनुसार उत्तर दिशा का अधिपति कुबेर देवता है, जो यक्षों का अधिपति है। यक्ष-नायक मणिभद्र की नगरी मणिभद्रपुर का उल्लेख मिलता हैं। बदरीनाथ धाम के समीपवर्ती माणा ग्राम को ही मणिभद्रपुर माना गया है। गढ़वाल के अनेक स्थान-नामों से यक्ष पद की ध्वनि के संकेत मिलते हैं। जाख, जाखनी, जाखी, जाखरी, जाखेरी, जखोली जखनोली आदि पद इसके सूचक हैं। गढवाल में जाख पद को यक्ष पद के अपभ्रंश के रूप में उच्चारण किया जाता है। ये पद यहाँ प्राचीन काल में यक्षों के निवास को सूचित करते हैं।

(२) नाग—

गढवाल में किसी समय नाग जाति का भी प्रभुत्व रहा था। यहाँ नाग पूजा का प्रचलन बहुत है। नागपुर और उरगम पट्टियों के नाम नागों से सम्बन्धित हैं। अलकनन्दा उपत्यका में नाग जाति की बस्तियाँ थीं। नागनी नागोगढ़, नागटिब्बा आदि यहाँ के प्रसिद्ध स्थान हैं। ग्रामों के बाहर नागपूजा के स्थान प्रायः दृष्टिगोचर होते हैं। नागराज-तोक उन्हीं के अवशेष हैं। मुखेम का नागराज'मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। आर्यों के पूर्व नागों के अनेक गढों के अवशेष भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों पर मिलते हैं। नागों की सभ्यता को नष्ट करने में पाण्डववंशी जनमेजय का बहुत अधिक प्रयत्न रहा था। जनमेजय ने जब नागयज्ञ में नागों का विध्वंस करना प्रारम्भ किया तो

अनेक नाग-नायक भाग कर उत्तराखण्ड में आ गये और इन्होंने यहाँ अपनी स्थिति मजबूत कर ली।

(३) असुर—

इतिहासविदों का कथन है कि आर्यों से पूर्व गढवाल प्रदेश में अनेक असुर जातियां निवास करती थीं। असुरों और आर्यों में प्रायः युद्ध होते रहते थे। वैदिक साहित्य में इनको दास और दस्यु कहा गया है। शम्बर असुरों का राजा था। मध्य हिमालय, गढवाल और कुमायूं में उसके ३०० किले थे। दिवोदास और सुदास के साथ उसका लम्बा युद्ध चला था।

(४) किरात, भिल्ल और किन्नर—

आर्यों के उत्तराखण्ड में आने से पहले किरात और किन्नर जातियों का यहाँ निवास रहता था। किन्नर अधिकतर पश्चिमी भाग में और किरात पूर्वी भाग में रहते थे। गढ़वाल के पश्चिम में हिमाचल प्रदेश का पूर्वी भाग आज भी किन्नौर कहलाता है, जो किन्नर जाति के निवास की सूचना देता है। यह प्रदेश गङ्गा के पश्चिम से लेकर सतलुज नदी की घाटी तक फैला है।

किरात जाति का निवास पूर्व में था। यह जाति गङ्गा नदी से लेकर पूर्व में वर्तमान गढवाल और कुमायूं में फैली हुई थी। किरातों की एक शाखा राजकिरात (राजी) थी। काली नदी के पश्चिमी तट पर अस्कोट में अब भी उसके अवशेष विद्यमान हैं। भगवान् शिव को किरातों और भिल्लों का अधिपति कहा गया है। किरात और किन्नर भाषाओं में बहुत से तत्सम शब्द संस्कृतज प्रतीत होते हैं।

(५) कुणिन्द और खस—

किरातों के समान ही कुणिन्द जाति का भी उत्तराखण्ड में आधिपत्य रहा। यह कहना कठिन है कि कुणिन्द जाति किरातों की ही एक शाखा थी या यह स्वतन्त्र जाति थी। 'महाभारत' में इस जाति का उल्लेख हुआ है। उस युग में यहाँ का राजा सुबाहू था। इसका राज्य तराई क्षेत्र तक विस्तृत था। सुबाहु को कुणिन्दविषयाधिपति कहा गया है। अनेक इतिहासविदों का कथन है कि कुणिन्द और खस एक ही जाति की दो शाखायें थीं। ये मध्य एशिया से तिब्बत को पार करके आर्यों से पूर्व यहाँ आये थे। इन्होंने इस देश पर अधिकार करके यहाँ के पूर्व निवासियों को अपना दास और सेवक बना लिया। सम्भवतः गढ़वाल के डोम और शिल्पकार उसी वर्ग के हैं।

प्राचीन काल के अनेक राजाओं ने अपने प्रभाव का विस्तार गढ़वाल प्रदेश में भी किया था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की सम्पूर्णता के लिये अर्जुन ने इस पार्वत्य प्रदेश को जीता था। इस समय यहाँ मुख्य रूप से कुणिन्द सौर खस जातियां बहुत शक्तिशाली थीं। ये लोग अपनी भेंड़ों को लेकर युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ में

उपस्थित हुये थे[1]। वनवास की अवधि में जब पाण्डव द्वैतवन से उत्तर में उत्तराखण्ड में गये तो कुणिन्द विषय के अधिपति सुबाहू ने श्रीपुर में इनका स्वागत किया था। सम्भवतः वर्तमान श्रीनगर ही उस समय श्रीपुर रहा होगा। यह बहुत समय तक इस प्रदेश की राजधानी रहा। महाभारत युद्ध में अनेक कुणिन्द कुमारों ने युधिष्ठिर के पक्ष में युद्ध किया था।

युधिष्ठिर के बाद भी सुबाहू और उसके उत्तराधिकारी पाण्डवों के अधीनस्थ के रूप में शासन करते रहे। परन्तु जनमेजय के यज्ञ के बाद यहाँ नागों ने अपनी स्थिति मजबूत कर ली। परन्तु उनको भी खसों ने पराजित किया। खसों का यहाँ प्राबल्य हुआ और यह देश खसमण्डल कहलाने लगा। मौर्य साम्राज्य का विस्तार होने तक वे यहाँ सर्वतन्त्र स्वतन्त्र राज्य करते रहे।

इतिहासविदों का कथन है कि खस आर्यों के ही भाई-बन्द थे। वे मध्य एशिया के पहाड़ी क्षेत्रों से तिब्बत को पार करके हिमालय में आये थे। आज भी पहाड़ों में खसों की संख्या बहुत है। ये खस काश्मीर से नेपाल तक फैले हैं। केदारखण्ड में खसों की संख्या इतनी अधिक हो गई थी कि यह प्रदेश खसमण्डल (केदारे खस-मण्डले) कहा जाने लगा। खसों ने काश्मीर से लेकर नेपाल तक विस्तृत साम्राज्य बनाया था। पहले किसी समय गढवाल और कुमायूं में राजनीतिक एकता रही होगी। कत्यूरियों का शासन गढवाल-कुमायूं में विस्तृत था। ये कत्यूरी भी खस ही थे। टंगण जाति भी खस ही थी। एटकिन्सन का कथन है कि खसों की उपजाति टंगणिया है। चमोली और जोशीमठ के मध्य टंगणी नाम की चट्टी है। टंगण लोग गङ्गा के ऊपरी भाग में रहते थे[2]।

'महाभारत' के आदिपर्व की एक कथा के अनुसार खसों की उत्पत्ति नन्दिनी गौ द्वारा हुई थी। विश्वामित्र ने जब वसिष्ठ मुनि की गौ नन्दिनी को बलपूर्वक ले जाना चाहा तो उसने विभिन्न सैनिक जातियों में खसों को भी उत्पन्न किया था[3]। मनु का कथन हैं कि खस क्षत्रिय थे जो ब्राह्मणों का दर्शन न करने के कारण शूद्र हो गये[4]। प्राचीन साहित्य में अन्यत्र भी खसों के प्रचुर उल्लेख हैं, जो एक लडाकू जाति के रूप में है।

राहुल साँकृत्यायन का कथन है कि खश, खस और कश एक ही पद के विभिन्न उच्चारण हैं। ये खस काश्मीर के पानीर से लेकर नेपाल तक फैले थे। अशोक के समय में ये प्रायः बौद्ध हो गये। मुसलमानी काल में काश्मीर के अधिकाँश खस मुसलमान

. महाभारत—सभापर्व अध्याय ५२

२. एटकिन्सन : हिमालयन गजेटियर वो० २ पृ० ४४०-४४१

३. महाभारत—आदिपर्व अध्याय—१७१

४. मनुस्मृति १०.४३-४४

हो गये। परन्तु गढ़वाल-कुमायूं में ब्राह्मणों के प्रभाव के कारण ये हिन्दू बने रहे[१]। खस जाति में मृतक के संस्कार के लिये शव को भूमि में गाड़कर समाधि बनाई जाती थी। परन्तु मुसलिम कबरों से ये इस बात में भिन्न हैं कि इनके शव के सिर के पास मद्य तथा भोजन के पात्र मिलते हैं तथा शव के घुटने मुड़े होते हैं। गिलगित से लेकर नेपाल तक इस प्रकार की खस समाधियाँ खोज करने पर मिलती हैं। किन्नौर और तिब्बती सीमान्त पर भी ये मिली हैं।

(६) वैदिक आर्य—

खसों के बाद पर्वतीय क्षेत्रों में वैदिक आर्यों ने प्रवेश किया था। इन्होंने उस समय पर्वतों में विद्यमान असुर-द्रविडों को, जो शम्बरासुर के नेतृत्व में लड़े थे, पराजित कर अपना आधिपत्य स्थापित किया था। ये आर्य पाञ्चाल के त्रित्सु थे तथा दिवोदास के नेतृत्व में आये थे। महाभारत काल तक आर्यों ने गढ़वाल-कुमायूँ को अपने साँस्कृतिक और राजनीतिक प्रभाव में ले लिया था। यह ऋषियों की तपोभूमि के रूप में अधिक प्रसिद्ध हुआ। बुद्धकाल में हिमवन्त को ऋषियों की तपोभूमि कहा जाता था[२]।

(ग) आरम्भिक इतिहास—

गढ़वाल के इतिहास का आरम्भिक काल 'महाभारत' से लेकर ११६० ई० तक माना जा सकता है। इस समय अशोकचल्ल ने कत्यूरी राजाओं को पराजित कर अपने साम्राज्य की स्थापना की थी। इस युग के अनेक अभिलेख और पुरातत्त्व अवशेष मिले हैं। इनसे प्राचीन इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अगस्त्यमुनि, आदिबदरी, उरगम, कालीमठ, केदारनाथ, कोलसारी, गुप्तकाशी गोपेश्वर, चाँदपुर-गढ़ी, जोशीमठ, टंगणी, पाण्डुकेश्वर, देवप्रयाग, नागपुर, नारायणकोटि, बदरीनाथ, बाड़ाहाट, वैराटगढ़, भिल्लकेदार, मोरध्वज, श्रीनगर, हरियाली, हेलङ, आदि स्थानों पर प्राप्त पुरातत्त्व अवशेष, मूर्तियाँ और मन्दिर इतिहास की कहानी को कह रहे हैं। इस इतिहास का स्वल्प परिचय देना उचित होगा।

(१) मौर्य साम्राज्य—

मौर्यों ने अपने साम्राज्य का विस्तार हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में निश्चय रूप से किया था चन्द्रगुप्त की सेना में पर्वतीय राजा थे जिनकी सहायता से उसने नन्द को पराजित किया था। गढ़वाल प्रदेश भी निश्चय ही मौर्यों के साम्राज्य में रहा था।

---

१. राहुल साँकृत्यायन : हिमालय परिचय (१) पृ० ५६-५७

२. हिमालय परिचय (१) पृ ६०

विशाखदत्त ने 'मुद्राराक्षस' नाटक में वर्णन किया है कि चन्द्रगुप्त के साम्राज्य की उत्तरी सीमा उत्तर में हिमालय प्रदेश से आरम्भ होती थी, जहाँकि गङ्गा का उद्गम है। दक्षिण में यह दक्षिण समुद्र तक विस्तृत थी।[1] चन्द्रगुप्त ने पर्वतेश्वर की सहायता से नन्द को पराजित किया था। यह पर्वतेश्वर किस प्रदेश का अधिपति था यह कहना कठिन है। छठी शताब्दी ईसवी में पर्वताकर राज्य के ताम्र अभिलेख उपलब्ध हैं। सम्भवतः पर्वतेश्वर यहीं का अधिपति रहा होगा। परन्तु इस बात को निश्चित प्रमाणित रूप से नहीं कहा जा सकता। मेगास्थनीज ने हिमालय की अत्यधिक ऊँची पर्वत-श्रेणियों का वर्णन किया है, जो विभिन्न वृक्षों से आच्छादित थीं[2]।

देहरादून जिले के कालसी के समीप अशोक के शिलालेख मिले हैं। इनसे सूचना मिलती है कि इस प्रदेश में उसका साम्राज्य विस्तृत था। अशोक ने यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार किया था तथा बौद्ध प्रचारक भेजे थे। तृतीय बौद्ध संगीति के बाद मोग्गलिपुत्त स्थविर ने (२५३ बी० सी०) बुद्ध शासन की स्थापना के लिये जिन प्रदेशों में स्थविरों को भेजा, उनमें हिमवान् (हिमालय) प्रदेश में मज्झिम (मध्य) स्थविर को भेजा था[3]।

(२) यवन राज्य—

गढ़वाल का पश्चिमी क्षेत्र जौनसार कहलाता है यह यमुना नदी के पश्चिम में तमसा (टौंस) नदी तक विस्तृत है। कुछ इतिहासविदों का कथन है कि मूल रूप में यह पद यवनपुर था और यहाँ ग्रीकों का प्रभाव रहा होगा। परन्तु अन्य विद्वान् इससे सहमत नहीं हैं। इनका मत है कि जौन पद यमुना का अपभ्रंश है। यमुना नदी के दोनों ओर के पर्वतीय भूभाग को जौनसार या जौनपुर कहा गया होगा। परन्तु इस क्षेत्र की संस्कृति पर कुछ ग्रीक प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है। जौनसार या जौनपुर के लोगों की आकृति, रूपरेखा, रीतिरिवाज आदि पर यह प्रभाव है। पाण्डुकेश्वर और जोशीमठ के स्थापत्य पर भी ग्रीक प्रभाव परिलक्षित होता है।

यदि ग्रीकों का कुछ प्रभाव रहा भी है, तो भी प्रथम शताब्दी ई० में शक यहाँ आये थे। ये शक मूलतः खस ही थे, जो प्रथम शताब्दी ई० में पंजाब, अफगानिस्तान और पश्चिमी उत्तरप्रदेश के शासक हो गये थे। कहा जाता है कि राजपूत, गूजर, जाट और अहीर जातियाँ इन प्राचीन शकों की ही वंशज हैं[4]। इनका कुछ भाग इन पर्वतीय प्रदेशों में बस गया होगा।

शकों की ही एक शाखा कुषाण हुई। प्रथम शताब्दी ई० में उत्तर-पश्चिमी भारतवर्ष पर इनके साम्राज्य का विस्तार हुआ था। कुषाण सम्राट कनिष्क ने बौद्ध

---

१. आशैलेन्द्राच्छिलान्तःस्खलितसुरधुनीसीकरासारशीता
दातीरान्तान्नैकरागस्फुरितमणिरुचो दक्षिणस्यावर्णस्य। मुद्राराक्षस ३.१९
२. मुकर्जी : चन्द्रगुप्त मौर्य एण्ड हिज टाइम्स पृ० ७५॥
३. शिवप्रसाद डबराल : उत्तराखण्ड का इतिहास भाग ३ पृ० ११५
४. हिमालय परिचय (१) पृ० ६५

धर्म का प्रचार किया था तथा कुषाण पूरी तरह भारतीय हो गये थे कनिष्क के वंशज वासुदेव हिन्दू देवताओं के परम भक्त थे। इनका राज्य निश्चय ही हिमालय के तराई प्रदेशों तक विस्तृत था। इनकी स्वर्ण मुद्रायें बिजनौर से १५ मील उत्तर-पूर्व में गङ्गा के खादर में टिप के टीले की खुदाई में मिली हैं[1]।

गढ़वाल में सूर्य-पूजा का प्रचार शकों और कुषाणों के प्रभाव का परिचायक है। गढ़वाल में बूटधारी सूर्य देवता की मूर्तियाँ अनेक स्थानों पर मिली हैं। श्रीनगर के लक्ष्मीनारायण के मन्दिर में तथा जोशीमठ में प्राप्त सूर्य-मूर्तियाँ उसी प्रकार की हैं, जैसी कि काश्मीर के मार्तण्ड मन्दिर और अलमोड़ा के कटारमल मन्दिर (सूर्य मन्दिर) की मूर्तियाँ हैं। गढ़वाल में शकशालिवाहन सम्वत् का प्रचार भी इनके प्रभाव का द्योतक है।

गढ़वाल में हूणों के आगमन और प्रभाव के बहुत स्पष्ट प्रमाण तो नहीं हैं, तथापि पाँचवीं शताब्दी ई० में हूणों ने गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त को पराजित कर भारतवर्ष में प्रवेश किया था। हूण राजा तोरमाण (५०२ ई०) का राज्य कैस्पियन समुद्र से भारतवर्ष के मध्य तक विस्तृत था। मिहिरगुल ने मगध पर आक्रमण किया था। सम्भावना की जा सकती है कि तोरमाण और मिहिरगुल के शासनाधिकार में हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों का भी कुछ भाग अवश्य रहा होगा। कहा जाता है कि ईसवी सदी के प्रारम्भ में तिब्बत पर्यन्त हिमालय क्षेत्र कुषाणों के अधिकार में आ गये थे। परन्तु तीसरी शताब्दी ई० में कुषाणों का पतन होने पर ये प्रदेश स्वतन्त्र हो गये।

(३) हिन्दू राज्य—

विक्रम सम्वत् प्रारम्भ होने के बाद गढ़वाल में कुछ हिन्दू राज्यों के प्रमाण भी प्राप्त होते हैं।

कालसी के समीप जगतग्राम में ईंटों पर कुछ अभिलेख मिले हैं। इससे विदित होता है कि यहाँ तीसरी शताब्दी विक्रमी में शीलवर्मन् नामक राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया था। वह पर्वतों का राजा था। उसको युगशैलमहीपति कहा गया है। टिहरी गढ़वाल राज्य उसके शासन के अन्तर्गत रहा होगा।

जौनसार के क्षेत्र में लाखामण्डल में प्राचीन शिव मन्दिर मिला है। उसके साथ दो अभिलेख भी प्राप्त हुये हैं। प्रथम अभिलेख पाँचवी शताब्दी ई० का माना गया है। यह अभिलेख छागलेश का है, जिसमें नौ राजाओं के वंशक्रम का वर्णन है। प्रथम राजा जयदास तथा अन्तिम राजा अजेश्वर है। दूसरा अभिलेख ईश्वरा का है, जो आठवीं शताब्दी ई० का कहा जाता है। रानी ईश्वरा ने अपने पति की स्मृति में जो जलन्धर का राजकुमार था, एक शिवमन्दिर बनवाया था। वहाँ उसने एक शिव

१. उत्तराखण्ड का इतिहास भाग ३ पृ० २२४

मन्दिर भी बनवाया था। इसमें उसने एक अभिलेख भी टंकित कराया। इसमें उसने अपने पिता, सैंहपुर के राजा यादववंशी भास्करवर्मन् का भी उल्लेख किया है। यह सैंहपुर स्थान कालसी से १३ किमी दूर यमुना के दायें तट पर नीचे है। इन अभिलेखों से विदित होता है कि इस क्षेत्र में तथा गढ़वाल के अन्य भागों में इन राजाओं का आधिपत्य था।

उत्तरकाशी (बाड़ाहाट) के विश्वनाथ मन्दिर के सामने देवी मन्दिर में छः फीट ऊँचे धातु निर्मित त्रिशूल पर अंकित अभिलेख में राजा गुह का नाम उत्कीर्ण है। वह गणेश्वर का पुत्र और उत्तराधिकारी था। गढ़वाल के उत्तरी भाग में उसका राज्य विस्तृत रहा होगा। इस अभिलेख को पाँचवीं शताब्दी ईसवी का माना गया है।

६३५ ई० में हिमालय के केदारमण्डल में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने यात्रा की थी। उसने यहाँ की राजधानी का नाम ब्रह्मपुर लिखा है। इसकी परिधि ४००० ली (१०६७ किमी०) लिखी गई है। सम्भवतः यह राज्य गढ़वाल–कुमाऊँ के विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ था। कुषाण साम्राज्य के पतन के बाद भारतवर्ष में शक्तिशाली विस्तृत साम्राज्य की स्थापना वर्धनवंशी सम्राट् हर्षवर्धन ने की थी। इसका राज्यकाल ६०५-६४८ ई० रहा। इसके ही राज्यकाल में ह्वेनसांग भारतवर्ष में आया था। वह स्थाण्वीश्वर से (थानेसर) स्रुघ्न (जिला सहारनपुर) होकर मंडावर (जिला बिजनौर) से मायापुर (हरिद्वार) गया। यहाँ से उसने ब्रह्मपुर की यात्रा की। मंडावर से ब्रह्मपुर की दूरी ३०० ली (८० किमी०) थी। उसके वर्णनों से प्रतीत होता है कि यह राज्य (ब्रह्मपुर) हर्षवर्धन के अधीन रहा होगा। ब्रह्मपुर स्थान का निर्धारण अभी तक नहीं हो सका है। कुछ इतिहासविद बाड़ाहाट को, कुछ जोशीमठ को और कुछ वैराटगढ़ को ब्रह्मपुर कहते हैं।

(४) तिब्बती शासन—

६४८ ई० में हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद वर्धन साम्राज्य बिखर गया। उस समय तिब्बत में स्रोङ्-चन्-साम्-पो (६२६–६४६ ई०) ने नये साम्राज्य की स्थापना की। उसके वंशजों ने चीन पर भी विजय प्राप्त की थी। भारतवर्ष के साथ इन राजाओं का धार्मिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा था। इन राजाओं ने सारे हिमालय प्रदेश को जीत कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। लगभग दो शताब्दियों तक केदारमण्डल पर तिब्बतियों का अधिकार रहा। हर्षवर्धन के बाद साम्राज्य का उत्तरी भाग उत्तराधिकार के रूप में भण्डी के वंशजों को मिला। परन्तु ये इसको सुरक्षित नहीं रख सके। जबकि हर्षवर्धन के उत्तराधिकारी कन्नौज के शासक अर्जुन को भी पकड़ कर तिब्बती सेना ल्हासा ले गई थी तो भण्डी के वंशजों का तो क्या हाल हुआ होगा। चीनी इतिहासकारों के अनुसार ८३६–८४८ ई० में तिब्बती शक्ति का पतन

होने लगा था। इस समय केदारमण्डल से भी तिब्बती शासन की समाप्ति होकर यह देश स्वतन्त्र हो गया।

(घ) **कत्यूरी वंश—**

गढ़वाल के इतिहास में कत्यूरी वंश के शासन का बहुत अधिक महत्त्व है। इनका शासन गढ़वाल और कुमाऊँ दोनों मण्डलों में रहा था। सम्भवतः यह प्रथम ऐतिहासिक राजवंश है, जिसके विषय में आधिकारिक और प्रामाणिक रूप से कुछ जाना जा सका है। एटकिन्सन के अनुसार कत्यूरी वंश का उद्‌गम कुषाण-शकों से है। इनके सिक्कों पर कार्तिकेय (स्कन्द) की मूर्ति रहती थी। ये इनके इष्टदेव थे। कत्यूरी वंश भी कार्तिकेय का उपासक रहा होगा। उन्होंने अपनी राजधानी का नाम कार्तिकेयपुर रखा था।

तिब्बती शक्ति के निर्बल हो जाने के बाद कत्यूरियों ने गढ़वाल-कुमाऊँ में अपना शासन स्थापित किया था। इनके शासन का आरम्भ ८५० ई० के लगभग और समाप्ति १०५० ई० के लगभग कहे जाते हैं। अभिलेखों के प्रमाणों से इस अवधि में १३ कत्यूरी राजाओं ने शासन किया। इनके समय के पाँच ताम्रलेख और एक शिलालेख मिले हैं। इनका विस्तृत परिचय आगे दिया जायेगा। इनमें चार अभिलेख पाण्डुकेश्वर से और एक अभिलेख बागेश्वर से मिले हैं। बागेश्वर से एक शिलालेख भी मिला है। इनका विवरण तथा इनके अनुसार कत्यूरी वंश-परम्परा को राहुल जी ने इस प्रकार दिया है[1]—

अभिलेख प्राप्ति स्थान	**अभिलेख सामग्री**	**राजा**	**काल**	**राजधानी**
पाण्डुकेश्वर	ताम्रपत्र	ललितशूर	९४५–९५० ई०	कार्तिकेयपुर
पाण्डुकेश्वर	ताम्रपत्र	ललितशूर	९४५–९५० ई०	कार्तिकेयपुर
बागेश्वर	शिला	भूदेव	९६०–९८० ई०	—
बागेश्वर	ताम्रपत्र	देशट	१०१५–३० ई०	कार्तिकेयपुर
पाण्डुकेश्वर	ताम्रपत्र	पद्मट	१०३०–४५ ई०	कार्तिकेयपुर
पाण्डुकेश्वर	ताम्रपत्र	सुभिक्षराज	१०४५–६० ई०	सुभिक्षपुर

वंश-परम्परा—

प्रथम परम्परा— १. वसन्तन
२. खर्पर
३. अधिधज
४. त्रिभुवनराज
५. निंवर्त

१. हिमालय परिचय (१) पृ० ७२–७३।

६. इष्टगण
७. ललितशूर
८. भूदेव
द्वितीय परम्परा—९. सलोणादित्य
१०. इच्छट
११. देशट
१२. पद्मट
१३. सुभिक्षराज

अभिलेखों से विदित होता है कि कत्यूरी वंश का संस्थापक वसन्तन होगा। ललितशूरदेव के पुत्र भूदेव के बागेश्वर के अभिलेख से इस वंश-परम्परा का बोध होता है। वसन्तन की आठ और सलोणादित्य की पाँच, इन तेरह पीढ़ियों ने गढ़वाल में अपना राज्य स्थापित किया था। राहुल सांकृत्यायन का अनुमान है कि इन तेरह कत्यूरी राजाओं का शासन का काल ८५०–१०५० ई० रहा होगा।

जैसे कि पहले लिखा जा चुका है कि कत्यूरी वंश का शासन गढ़वाल और कुमायूँ दोनों मण्डलों में रहा था। गढ़वाल में इनकी राजधानी कर्तृपुर, कार्तिकपुर या कार्तिकेयपुर थी। कार्तिकेयपुर कहाँ था, यह भी विवादास्पद हो गया है। सांकृत्यायन के अनुसार प्रथम कार्तिकेयपुर वर्तमान जोशीमठ ही था। इसके पतन के बाद इन्होंने नई राजधानी वैद्यनाथ (वैजनाथ) को बना कर उसका नाम कार्तिकेय-पुर रखा[1]। सुभिक्षराज ने इस कार्तिकेयपुर को ही अपने नाम पर सुभिक्षपुर की संज्ञा दी।

गढ़वाल पर कत्यूरी वंश का राज्य सुभिक्षराज के समय तक ही प्रतापशाली रहा होगा। उसके बाद के विवरण या अवशेष उपलब्ध नहीं हैं। परन्तु उनके उत्तरा-धिकारी गढ़वाल और कुमायूँ के विभिन्न क्षेत्रों में राज्य अवश्य करते रहे थे। डोटी, अस्कोट और पाली (द्वाराहाट) में स्वतन्त्र कत्यूरी राज्य स्थापित हुए थे। डोटी नेपाल में, अस्कोट कुमायूँ में और पाली गढ़वाल में हैं। डोटी की वंश-परम्परा में ३९, अस्कोट की वंश-परम्परा में ५१ और पाली की वंश-परम्परा में ६ राजाओं के नाम मिलते हैं[2]।

परम्पराओं के अनुसार अन्तिम कत्यूरी राजा वीरदेव था। उसके अत्याचार की कहानियाँ कुमायूँ में बहुत प्रसिद्ध हैं। तरुणियों को वह जबरदस्ती पकड़वा लेता था। प्रजा के धन को छीन लेता था और मजदूरों पर अत्याचार करता था। कहते हैं कि पालकी ढोने वाले दो मजदूरों ने उसको मारने का निश्चय किया। वे राजा की

---

१. हिमालय परिचय (१) पृ० १०४।
२. वही पृ० १०७–१०९।

पालकी को लिये एक खड्ड में कूद गये। अपने प्राण देकर भी उन्होंने इस अत्याचारी राजा का अन्त कर दिया।

कत्यूरी शासन के समय गढ़वाल में ब्राह्मण पौराणिक धर्म का बहुत अधिक प्रचार और प्रसार हुआ। इससे पहले यहाँ बौद्ध धर्म का खूब प्रचार था। कत्यूरी वंश का संस्थापक वासुदेव (वसन्तन) कहा जाता है (८५० ई०)। वसन्तन को ही वासुदेव माना गया है। वह ब्राह्मण से बौद्धधर्मी बना। शङ्कराचार्य सम्भवतः उसके समय या उससे कुछ ही पहले गढ़वाल मण्डल में आये होंगे। अभिलेखों में कत्यूरी राजाओं ने अपने को परम माहेश्वर लिखा है। वे शिव के उपासक थे। वे शैवों के लकुलीश सम्प्रदाय को प्रोत्साहन देते रहे।

कत्यूरी शासन से पहले गढ़वाल और कुमायूँ मण्डलों में भोटों का, तिब्बतियों का शासन था। वे बौद्ध धर्मावलम्बी थे। कत्यूरियों ने जब भोटों को, तिब्बतियों को पराजित करके अपना शासन स्थापित किया, तो बौद्ध धर्म को निरुत्साहित किया। इस प्रकार इस राजनीतिक युद्ध में गढ़वाल से बौद्ध धर्म का लोप हो गया। वासुदेव ने अपने को प्रबल करने के लिये ब्राह्मणों की सहायता ली होगी और पौराणिक ब्राह्मण धर्म को स्वीकार करके इसके प्रचार-प्रसार में सहायता की होगी। कत्यूरी अभिलेखों के दान-अभिलेखों से स्पष्ट है कि हिन्दू देवताओं के मन्दिरों के लिये उन्होंने प्रचुर धन और सम्पत्ति का दान किया।

(ङ) बहुराजकता काल—

कत्यूरी वंश के क्षीण होने के बाद गढ़वाल–कुमायूँ मण्डलों में कोई केन्द्रीय शक्ति नहीं रही। स्वयं कत्यूरी वंश में ही अनेक विभाग हो गये। इस समय अनेक छोटे-छोटे राजा विभिन्न स्थानों पर राज्य करते रहे। इस समय नेपाली राजाओं ने गढ़वाल और कुमायूँ मण्डलों पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की। परन्तु इनका शासन स्थायी नहीं रहा। इस ऐतिहासिक अवधि को ११९०–१४०० ई० का रखा जा सकता है। अब गढ़वाल के पँवारवंशी राजाओं ने गढ़वाल को विशाल साम्राज्य के रूप में संगठित किया। इस अवधि को तीन विभागों में बाँटा जा सकता है— अशोकचल्ल, क्राचल्लदेव और ५२ गढ़।

(१) अशोकचल्ल—

प्राचीन अभिलेखों के अनुसार अशोकचल्ल ने ११९१ ई० में कत्यूरी राजाओं को जीत कर इनके राज्य का विध्वंस किया था। इसी के दो वर्ष पश्चात् मोहम्मद गौरी ने कन्नौज के गहरवार राजवंश को पराजित करके उस राज्य को अपने अधिकार में लिया था (११९३ ई०)।

अशोकचल्ल के व्यक्तित्व की पहचान विवाद से परे नहीं है। इसके नाम अशोकमल्ल और अनेकमल्ल भी मिलते हैं। नेपाल के राजाओं की वंशावलि से इसका मेल नहीं खाता। अभिलेखों में इस राजा ने अपने को दानवभूतल का राजा और

गौडवंशोद्‌भूत लिखा है। अपने को वह बोधिसत्त्वावतार भी लिखता है। इससे उसका बौद्धमतावलम्बी होना सिद्ध होता है। राहुल सांकृत्यायन के मत से वह पश्चिमी मानसरोवर का मल्ल उपाधिधारी नागराज का वंशज होगा। कुछ इतिहासविद् अशोकचल्ल को नेपाली मानते हैं।

अशोकचल्ल की विजयों के प्रमाण के रूप में हमको दो अभिलेख प्राप्त होते हैं। एक तो गोपेश्वर में १६ फीट ऊँचे लौह निर्मित त्रिशूल पर उत्कीर्ण है और दूसरा बाड़ाहाट (उत्तरकाशी) में विश्वेश्वर मन्दिर के सामने शक्ति मन्दिर के २१ फीट ऊँचे अष्ट धातु से निर्मित त्रिशूल पर है। इन दोनों अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि अशोकचल्ल का अधिकार अलकनन्दा से लेकर भागीरथी तक था। वर्तमान सारा गढ़वाल मण्डल उसके शासन के अन्तर्गत आ गया था। डा० शिवप्रसाद डबराल ने अशोकचल्ल के सम्बन्ध के आठ पुरातात्त्विक प्रमाण निम्न प्रकार से परिगणित किये हैं—

१. बोधगया का अशोकचल्ल का शिलालेख
२. सहणपाल का बोधगया का शिलालेख
३. पुरुषोत्तमसिंह का बोधगया का शिलालेख
४. गोपेश्वर का अशोकचल्ल का त्रिशूल अभिलेख (१)
५. गोपेश्वर का अशोकचल्ल का त्रिशूल अभिलेख (२)
६. बाड़ाहाट का अशोकचल्ल का त्रिशूल अभिलेख
७. नाला का अशोकचल्ल का विजय-स्तम्भ
८. जागेश्वर में अशोकचल्ल की धातु मूर्ति

(२) **क्राचल्लदेव**—

अशोकचल्ल के ३२ वर्ष पश्चात् क्राचल्लदेव ने गढ़वाल मण्डल पर विजय प्राप्त की थी। यह आक्रमण १२२३ ई० में हुआ था। क्राचल्लदेव नेपाली शासक था। इतिहास से उसके नेपाली राजा होने का संकेत मिलता है। उस समय नेपाल अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। क्राचल्लदेव की विजय के प्रमाण हमको बालेश्वर के उस अभिलेख से मिलते हैं, जो कत्यूरी राजा देशटदेव ने उत्कीर्ण कराया था। उसी अभिलेख के पीछे की ओर क्राचल्लदेव ने भी अपना अभिलेख उत्कीर्ण कराया।

इस अभिलेख के अनुसार क्राचल्लदेव की माता का नाम श्रीमती शिरा था। वह बौद्ध धर्म और जैन धर्म का अनुयायी था। उसने कीर्तिपुर (कार्तिकेयपुर) के राजाओं को पराजित करके अपना अधिकार स्थापित किया था। उसने एकरुद्र-बालेश्वर के पुजारी ब्राह्मण भट्टनारायण को भूमि तथा धन का दान, इस अभिलेख के

द्वारा दिया था। बालेश्वर ताम्रशासन में उस पुजारी ने क्राचल्लदेव के यश का गान किया है[1]।

(३) **बावनगढ़**—

कत्यूरियों की शक्ति निर्बल होने पर उनका शासन विच्छिन्न हो गया। अशोकचल्ल और क्राचल्लदेव ने बाहर से आकर गढ़वाल मण्डल को जीता तो परन्तु वे वापिस चले गये और उनका शासन स्थिर नहीं रह सका। इन परिस्थितियों में गढ़वाल में अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र राजा हो गये। इनमें प्रत्येक का अपना एक स्वतन्त्र गढ़ था। १२००–१४०० ई० तक ये गढ़पति परस्पर लड़ते रहे, दूसरों को लूटते रहे और स्वयं भी लुटते रहे। इनकी संख्या ५२ थी। इन्हीं गढ़ों के नाम पर इस प्रदेश का नाम बावनी या गढ़वाल प्रसिद्ध हुआ। ये गढ़पति प्रायः खस जाति के थे। अतः गढ़वाल को खसमण्डल भी कहा जाता था। १४०० ई० के लगभग जब गढ़वाल में पँवार राजवंश का उदय हुआ तो इन राजाओं ने सभी गढ़पतियों को जीत कर गढ़वाल को एक सुसंगठित शक्तिशाली राज्य के रूप में विकसित किया।

राहुल सांकृत्यायन के अनुसार ये ५२ गढ़ निम्न थे[2]—

संख्या	**नाम गढ़**	**परगना या पट्टी**	**जाति**	**विशेष कथन**
१.	अजमीर	अजमीर	पयाल	
२.	इडिया	रवांई बड़कोट	इडिया	यहाँ रूपचन्द द्वारा ध्वस्त भैरव मन्दिर है
३.	उपू तथा उल्का	उदयपुर	चौहान	
४.	परासू	श्रीनगर से ऊपर		
५.	कंडार	नागपुर	कंडारी	अन्तिम राजा नरवीरसिंह पँवारों से हार कर मन्दाकिनी में डूब मरा
६.	कांडा	रावतस्यूँ	रावत	
७.	कुइली	कुइली	सजवाण	जौरासीगढ़ भी कहलाता है
८.	कुजेगी	कुजेगी	सजवाण	अन्तिम थोकदार गोविन्दसिंह

१. श्रीक्राचल्लदेवस्य यावद् अम्भोजिनीपतिः।
विहरतु भुवि तावत् कीर्तिरस्य नृपकुमुदाकरस्य॥
—बालेश्वर ताम्रशासन

२. हिमालय परिचय (१) पृ० ११७–११९।

९.	कोल्लीगढ़	बछवाणस्यूँ	बछवाणविस्ट	
१०.	गडताङ्	तकनीर	भोट	वंश अविदित
११.	गढ़कोट	मल्ला ढांगू	बगडवालविस्ट	
१२.	गुजडू–गुरन	गुजडू		
	गुरुगढ़ (तल्लासलाण)			पुराना गढ़
१३.	चम्पा			पुराना गढ
१४.	चाँदपुर	तेली चाँदपुर	सूर्यवंशी भानुप्रताप	पँवार कनकपाल के पास गया
१५.	चौड़ा	शीलीचाँदपुर	चौडाल	
१६.	चौंदकोट	चौंदकोट	चौंदकोटी	
१७.	जौट	जौनपुर		
१८.	जौलपुर			
१९.	डोंडराक्वांरा	विशेर (महासू)		
	ढांढूगढ़	गंगासलाण		
२०.	तोप		तोपाल	तुलासिंह ने ढलवाई थी
२१.	दशोली	दशोली		मानवर प्रतापी राजा हुआ
२२.	देवल	देवलगढ़		देवल राजा निर्माता
२३.	धौना	इडवालस्यूँ	धौन्याल	
२४.	नागपुर	नागपुर	नागवंशी	अन्तिम राजा सज्जन-सिंह
२५.	नयाल	कटूलस्यूँ	नयाल	अन्तिम राजा भग्गू
२६.	नाला	देहरादून		अब नालागढ़ी
	पैंनखण्डा	पैंनखण्डा		जोशीमठ से ८ मील नीचे हेलङ् के पास
२७.	फल्याण	फल्दाकोट	फल्याण	ब्राह्मण शमशेरसिंह ठाकुर ने ब्राह्मणों को दान दिया
२८.	बदलपुर	बदलपुर		
२९.	बधाण	बधाण	बधाणी	पिण्डर नदी के ऊपर
३०.	वनगढ़	वनगढ़		अलकनन्दा के दक्षिण
३१.	बाग	गंगासलाण	बागूड़ी नेगी	बागड़ी भी कहते हैं।

३२.	बागर	बागर	नागवंशी राणा	धिरबाण खसियों का अधिकार
३३.	विशल्टा	जौनपुर	रावत	अन्तिम थोकदार भूपसिंह
३४.	भरदार	भरदार		अलकनन्दा के दक्षिण तट पर
३५.	भरपूर	भरपूर	सजवाण	अन्तिम थोकदार गोविन्दसिंह
३६.	भुवना मवागढ़	गंगा-सलाण		
३७.	मुंगरा	रवांई	रावत	अब भी रौतेले रहते हैं।
३८.	मोल्या	रमोली	रमोला	
३९.	रतन	कुजड़ी	धमादा	ब्रह्मपुरी के ऊपर
४०.	खाड	बदरीनाथ मार्ग	खाडी	
४१.	राणी	रानीगढ़ पट्टी	खाती	
४२.	रामी	शिमला	राणा	
४३.	रैका	रैका	रमोला	
४४.	लंगूर	लंगूर पट्टी		भैरव का प्रसिद्ध मन्दिर
४५.	लोद		लोदी	
४६.	लोदन			
४७.	लोहबा	लोहब्रा	लोहबाल नेगी	दिलेबरसिंह और प्रमोदसिंह प्रतापी
४८.	श्रीगुरु	सलाण	पडियार (पतिहार)	अन्तिम राजा विनोदसिंह
४९.	संगेला	तेल चामी	संगेला बिस्ट	
५०.	सांकरी	रवांई	राणा	
५१.	सावली	सावली खाटली		
५२.	सिलगढ़	सिलगढ़	सजवाण	अन्तिम राजा सबलसिंह

जैसा कि पहले लिखा गया है, आठवीं शताब्दी ई० तक गढ़वाल प्रदेश पर पराक्रमी कत्यूरी राजाओं का शासन रहा। इनकी राजआनी कार्तिकेयपुर (वर्तमान जोशीमठ) रही थी। इनके दानपत्र पाण्डुकेश्वर से मिले है। कत्यूरी शासन के निर्बल होने पर गढ़वाल में अनेक गढ़पति (५२) हो गये, जो परस्पर लड़ते-भिड़ते रहते थे। इनमें से कुछ ही गढ़पतियों के नाम विदित हो सके हैं। इनको ऊपर की सूची में

दिया गया है। शेष गढ़ों के विषय में हमारा ज्ञान अन्धकार में ही है। ये गढ़पति लगभग १४०० ई० तक सर्वतन्त्र व स्वतन्त्र राज्य का उपभोग करते रहे, जबकि पंवारवंशी राजा अजयपाल ने इनको जीतकर सम्पूर्ण गढ़ प्रदेश को एक शासन के सूत्र आबद्ध कर लिया।

(च) पंवार वंश—

गढ़वाल के इन गढ़पालों में चाँदपुरगढ़ी (जि० चमोली) का अधिपति भानुप्रताप अधिक प्रसिद्ध हुआ। किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि उसके समय में पंवारवंशी राजकुमार कनकपाल धारानगरी से तीर्थयात्रा के लिये आया था। उसको भानुप्रताप ने सम्मानित किया। उसकी दो पुत्रियाँ थीं। भानुप्रताप ने एक पुत्री का विवाह कनकपाल के साथ करके उसको अपना जामाता बनाया तथा राज्य का उत्तराधिकारी भी नियत कर दिया[1]। राजा भानुप्रताप का किला चाँदपुरगढ़ मल्ला चाँदपुर में था। भानुप्रताप यहाँ का राजा था[2] और ५२ गढ़ों में अधिक प्रतापी था। वह बदरीनाथ का भी राजा था। अतः अन्य गढ़पति उसको धार्मिक दृष्टि से शिरोमणि मानते थे। वह पृथ्वीराज चौहान के कुल का था और कुछ पीढ़ी बाद हुआ था। भानुप्रताप ने अपनी जयेष्ठ कन्या का विवाह कुमायूँ के राजा राजपाल से किया तथा छोटी कन्या का विवाह पंवार वंश के राजकुमार कनकपाल से किया। उससे गढ़वाल का राजवंश चला[3]।

(१) कनकपाल और उसके उत्तराधिकारी राजा—

पंवार राजवंशावलि में भी कनकपाल को इस वंश का संस्थापक प्रथम राजा

---

१. हरिकृष्ण रतूड़ी : गढ़वाल का इतिहास पृ० २५७–५८।

२. आसीत् कश्चिद् हिमाद्रौ सुरवरतटिनीनीरतीरेऽतिरम्ये।
पुण्ये केदारखण्डे सुरुचिरबदरीकाननस्यैकदेशे।
नाम्ना भानुप्रतापो नृपमुकुटमणिश्रेणिनीराजितांघ्रिः।
सर्वोर्वीसार्वभौमो विबुधगणयुतः पालको वै प्रजानाम्॥
दैवात् कन्याप्रजोऽसौ कुलविरतिभयात् श्रीविशाले चरन्ते
भेजे भक्त्या नितान्तं क्रतुभिरपि तपोदानमानव्रताद्यैः।
आगन्ता दर्शनार्थं मम कनकमहीपालसंज्ञो धरेशः।
दत्त्वा तस्मै सुतां स्वां मम तनय इव त्वं कुलस्यास्य हेतुः।
पश्चाल्लोके मदीये जनि-भृति-भवनं त्यज्य गन्तासि नूनम्॥

३. हरिकृष्ण रतूड़ी : गढ़वाल का इतिहास पृ० ३३७–३६।

लिखा गया है [१]। परन्तु हरिकृष्ण रतूड़ी का कथन है कि इस राजवंशावलि में कनकपाल सम्बन्धी यह श्लोक कवि ने ठीक प्रकार से विना जाने लिखा है [२]।

कनकपाल के सम्बन्ध में एक दूसरी किंवदन्ती का भी उल्लेख राहुल सांकृत्यायन ने पातीराम की 'गढ़वाल' पुस्तक के सन्दर्भ में किया है। कनकपाल ने भिलङ् के राजा सोनपाल की पुत्री से विवाह किया था। वह उत्तरी गढ़वाल का राजा था [३]। तथापि गढ़वाल में कनकपाल के श्वसुर का नाम भानुप्रताप ही अधिक प्रसिद्ध है, जो चाँदपुरगढ़ी का राजा था।

राहुल जी का कथन है कि कनकपाल के धारानगरी से आकर राज्य करने का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। कुमायूँ के चन्द राजाओं के समान ही इनका आरम्भ भी अन्धकाराच्छन्न है। यह भी सम्भव है कि किसी खसिया राजा ने ही गढ़वाल के सभी गढ़ों को जीतकर अपने को सशक्त बनाया हो तथा अपने वंश को सम्मानित करने के लिये पंवार राजवंश से अपना सम्बन्ध जोड़ा हो [४]। तथापि हरिकृष्ण रतूड़ी ने अपने 'गढ़वाल का इतिहास' में चाँदपुरगढ़ी से प्राप्त एक शिलालेख का उल्लेख किया है (यह शिलालेख अब उपलब्ध नहीं है)। इसके अनुसार कनकपाल यहाँ ६४५ विक्रमी संवत् में आया था।[५] इसमें प्रमर शब्द पंवार के लिये है।

गढ़वाल के पंवार राजाओं की जो वंशावलियाँ मिली हैं, वे एक जैसी नहीं हैं। इनमें परस्पर भिन्नता है। राहुल जी ने हिमालय परिचय (१) में इन वंशावलियों का तुलनात्मक विश्लेषण किया है। उनके अनुसार हार्डविक वंशावलि में भगदत्त से लेकर पिरथी तक ५८ राजा हुये। परन्तु यह अविश्वसनीय ही है। हरिकृष्ण रतूड़ी ने ब्रेकेट की वंशावलि के आधार पर कनकपाल से मानवेन्द्रशाह तक ६० राजाओं की सूची दी है। इसमें कनकपाल प्रथम तथा अजयपाल ३७ वाँ राजा हुआ। विलियम्स की वंशावलि में कनकपाल का नाम प्रथम है तथा अन्तिम राजा फतेशाह (१६६६–१७४६ ई०) है। इसमें अजयपाल का नाम ३५ वें नम्बर पर है। अलसोड़ा से प्राप्त वंशावलि में प्रथम राजा भगवानपाल और अन्तिम राजा भवानीशाह (१८५६–७१ ई०)

---

१. राजा वै कनकपालो विधुकुलतिलको गुर्जरातात् प्रसिद्धः
दैवात् तीर्थप्रदेशान् अवनितलगतान् धूतपापान् प्रपश्यन्।
गच्छन् शृण्वन् प्रभावं विशदमतिरयं प्रापद् अश्रान्तचेताः।
वर्षे बाणाब्धिगोत्रे नरहरिकृपया प्राप्य राज्यं शशास।।

२. हिमालय परिचय (१) पृ० १२५

३. हिमालय परिचय (१) पृ० १२६

४. हिमालय परिचय (१) पृ० ११६

५. शायकाब्धिनवसम्मितवर्षे विक्रमस्य विधुवंशजपूज्यः।
श्रीनृपः कनकपाल इहाप्तः शौनकर्षिकुलजः प्रमरोऽयम्।।

है। इसमें कनकपाल का नाम नहीं है। ३६ वाँ राजा अजयपाल और ३७ वाँ राजा अजेयपाल है।

ऊपर के विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस पंवार वंश का उदय कहीं से भी हुआ हो, इसका पहला राजा कनकपाल हुआ। परन्तु वह अधिक शक्तिशाली नहीं रहा। इस वंशावलि के प्रारम्भ के २० राजा अन्य गढ़पालों के समान छोटे राजा रहे। वे जोशीमठ के कत्यूरी राजाओं के समान ही थे। परन्तु १२ वीं शताब्दी में कत्यूरी राजाओं की शक्ति निर्बल हो जाने पर वे शक्तिशाली होने लगे। धीरे-धीरे ५२ गढ़पालों में उनका स्थान सम्मानित हो गया। उन्होंने अनेक गढ़पातों को जीतकर विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की तथा यह प्रदेश गढ़वाल कहलाने लगा।

पंवार राजाओं में २१ वाँ राजा विक्रमपाल था। उसका पुत्र विचित्रपाल तथा उसका पुत्र हंसपाल हुआ। हंसपाल १२ वीं शताब्दी के अन्तिम दशाब्द में हुआ था। हंसपाल के पुत्र सोनपाल (सोहनपाल) ने भिलंगना और भागीरथी घाठी में अपने राज्य का विस्तार किया था। उसने अनेक खस सरदारों को सहायक बनाकर लगभग सारे पश्चिमी गढ़वाल पर अधिकार कर लिया था। उसने बाड़ाहाट (उत्तरकाशी) को मुख्यालय बनाकर गङ्गोत्तरी के तीर्थयात्रा मार्ग पर अधिकार कर लिया था। एक वंशावलि के अनुसार सोनपाल १२०६ ई० में राजा था।

गढ़वाल में किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि सोहनपाल की केवल एक पुत्री ही थी। उसके समय में धारा नगरी से एक राजकुमार कदिलपाल तीर्थयात्रा के लिये गढ़भूमि में आया था। वह सोहनपाल से मिलने गया। सोहनपाल उसके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ। उसने अपनी पुत्री का विवाह कदिलपाल से करके दहेज में चाँदपुर परगना दे दिया। सोहनपाल की मृत्यु के बाद कदिलपाल उसका उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु उसने चाँदपुरगढ़ी को ही अपनी राजधानी बनाये रखा। पंवार राजवंशावलि में कदिलपाल का नाम कान्तिपाल या कान्तिकृपापाल भी है। पंवार राजवंश के प्रताप-सूर्य का उदय राजा अजयपाल से माना जाता है। रतूड़ी की वंशावलि के अनुसार यह कनकपाल के बाद ३७ वाँ और कदिलपाल के बाद १२ वाँ राजा हुआ था। कनकपाल की ऐतिहासिकता तो सन्देह के घेरे में आती है, परन्तु अजयपाल की ऐतिहासिकता के विषय में सन्देह नहीं है। अजयपाल और उसके बाद के राजाओं का सारे गढ़वाल पर एकच्छत्र राज्य रहा। अतः इन राजाओं के विषय में कुछ कहना उचित होगा।

(२) अजयपाल—

गढ़वाल के इतिहास में यह किम्वदन्ती है कि अजयपाल चाँदपुरगढ़ी से २·५ किमी० दूर चौण्ड ग्राम का एक छोटा सा सामन्त था। अतः इसको चौण्ड्याल कहा जाता है। यह पंवारवंशी ही था। उसने चौण्ड ग्राम से 6·5 किमी दूर स्थित टॉप

गाँव के टॉप्याल राजा को पराजित करके उसके ग्राम पर अधिकार कर लिया। उस समय चाँदपुरगढ़ी में आनन्दपाल राजा था। रतूड़ी की वंशावलि के अनुसार यह कनकपाल के बाद ३६ वाँ राजा हुआ।[1] उससे पहले भी एक आनन्दपाल (कनकपाल से १८ वाँ राजा) हो चुका था। अतः इसको आनन्दपाल द्वितीय कहा गया। अजयपाल ने आनन्दपाल द्वितीय की नौकरी स्वीकार कर ली। परन्तु कुछ समय बाद ही उसने आनन्दपाल को पराजित करके राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। अजयपाल ने पहले तो चाँदपुरगढ़ी पर अपने अधिकार को सुदृढ़ किया और उसके बाद उसने सम्पूर्ण गढ़पालों को जीत कर सारे गढ़वाल को एकच्छत्र शासन के अन्तर्गत सुसंगठित किया। गढ़वाल का यह प्रथम राजा था, जिसने उत्तर में हिमाच्छादित हिम शृंखलाओं से लेकर चण्डी (हरिद्वार) तक (दक्षिण में) साम्राज्य का विस्तार किया। पश्चिम में वह तमसा (टौंस) को पार कर गया था और पूर्व में बधाण तक उसका राज्य विस्तृत था। इस क्षेत्र के ५२ गढ़ों को एक शासन के अन्तर्गत पिरो कर उसने गढ़वाल नाम को सार्थक किया था। उसी समय से इस प्रदेश का नाम गढ़वाल अधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुआ। 'मानोदय' काव्य के रचयिता ज्योतिराय भरत ने अजयपाल के पराक्रम का रोचक तथा उज्ज्वल वर्णन किया है।[2]

अजयपाल ने न केवल गढ़वाल के गढ़पतियों से युद्ध किया था, अपितु कुमायूँ (चम्पावत) के समकालीन राजा से भी युद्ध किया। यह युद्ध पिण्डर घाटी में स्थित बधाण परगना के लिये हुआ। प्रारम्भ में तो उसको असफलता मिली, परन्तु बाद में उसने विजय प्राप्त की। उत्तरवर्ती काल में इस परगने के लिये दोनों राज्यों में निरन्तर युद्ध तब तक होते रहे, जब तक कि प्रबल गोरखों ने दोनों राज्यों को जीत नहीं लिया।

अजयपाल का समय भी सन्देह से परे नहीं है। उसके लिये १३५८–७०, १३५९, १३७६, १३८९ और १५००–१५१९ ई० की तिथियाँ कही जाती हैं। एटकिन्सन ने यद्यपि १३५८–७० को अधिक प्रामाणिक माना है, तथापि अधिकाँश इतिहासविद् १५००–१५१९ को अधिक ठीक कहते हैं। राहुल जी ने अजयपाल के शासन का यही समय निर्धारित किया है। यह उत्तरवर्ती वंशावलि के अनुसार अधिक सही बैठता है।

---

१. अजेयपालो नृपतिः स आसीत् नाम्नैव यः शत्रुमनोविभेत्ता।
चन्द्रान्वये जन्म बभूव तस्य युधिष्ठिरस्येव युधिष्ठिरस्य॥
दुर्योधनोऽत्यन्तगुणप्रियोऽपि यो भीमसेनोऽपि गदान्वितेन।
मनुष्यधर्मैर्विविधैरुपेतो महीमहेन्द्रोऽपि बलप्रियो वै॥
नृपवरः स शशास धरामिमां सुनयनन्दितदेवपुरोहितः।
बहुदिगन्तनिवासिनराधिपैः कृतनतिः कुसुमेषुसमद्युतिः॥
मानोदय काव्य प्रथम सर्ग

२. हिमालय परिचय (१) पृ० १२२, १२९।

अजनपाल ने जब शासन को अधिकृत किया तो चाँदपुरगढ़ी उसकी राजधानी थी। यद्यपि यहाँ अजेय दुर्ग था, तथापि यह गढ़वाल के एक कोने में था और समतल मैदान भी बहुत कम था। वह १५१२ ई० में अपनी राजधानी देवलगढ़ ले आया। यह स्थान श्रीनगर से लगभग १० किमी० ऊपर दुर्गम स्थान पर है। यहाँ अब भी अजयपाल का राजमहल है, जिसके ऊपर की मंजिल में उसकी आराध्या राजराजेश्वरी का मन्दिर है। देवलगढ़ की गौरजा देवी की तथा गोरख सम्प्रदाय के मन्दिर की प्रसिद्धि तथा मान्यता बहुत है। परन्तु देवलगढ़ में भी स्थान की कमी होने से वह अपनी राजधानी को १५१७ ई० में श्रीनगर ले आया। यहाँ उसने एक शानदार प्रासाद, दुर्ग ओर नगर की रचना कराई। बाद के राजाओं ने इसका और भी विस्तार किया। समतल भूमि अधिक होने से यहाँ विस्तार की सम्भावना भी अधिक थी। परन्तु १८६३ ई० की बाढ़ ने पुराने श्रीनगर को सम्पूर्ण रूप से बहा दिया। वहाँ के अवशेषो को अंग्रेजों ने कौड़ियों के भाव बेचकर सब कुछ समाप्त कर दिया। आज भी वर्तमान श्रीनगर की इमारतों में प्राचीन राजमहल के पत्थर देखे जा सकते हैं। कहा जाता है कि उस समय के राजमहल की सुगढ़ आकार की बड़ी पाषाण-शिलाओं को प्रति नग चार आना तथा शेष पत्थरों को छः आना प्रति १०० फीट की दर से बेचा गया था। इस प्रकार से उस प्राचीन राजमहल तथा किले का वहाँ नाम-निशान भी न रहा। शोक का विषय है कि गढ़वाल का वह शौर्य और स्वाभिमान न जाने किन स्वार्थी तत्त्वों के वशीभूत था कि उन्होंने अपनी प्राचीन थाती को नष्ट हो जाने दिया और वे लालच में पड़ गये। सम्भवतः गढ़वालियों में स्वाभिमान, स्वदेश प्रेम और निज गौरव की भावनायें नष्ट हो चुकी थीं और वे अंग्रेजों की गुलामी को ही गौरव मानते थे। आज भी पुराने लोगों में यह भाव विद्यमान है।

अजयपाल ने अपने राज्य की सीमाओं को सुनिश्चित किया था। उसने परगनों और पट्टियों को पुनः सुसंगठित किया। वह सामन्त राजाओं के साथ उदार व्यवहार करता था और प्रजा के प्रति स्नेह का भाव रखता था। उसने सेना और प्रशासन को भी सुव्यवस्थित किया था। उसके सुसंगठन का उसके उत्तराधिकारियों ने अनुसरण किया। गढ़वाल के इतिहास में अजयपाल का महत्त्व बहुत अधिक है। उसके बाद से इस प्रदेश का इतिहास भी अधिक स्पष्ट प्राप्त होता है।

गढ़वाल दरबार की राजवंशावलि के अनुसार कल्याणपाल और सुन्दरपाल राजा हुये। इनके बाद हंसदेव और विजयपाल राजा हुये। इनके समय क्रमशः १५१९–२६, १५२६–३६, १५३६–४७ और १५४७–१५५५ थे। परन्तु राहुल जी का कथन है कि ये नाम केवल वंशावलि को लम्बा करने के लिये जोड़े गये थे।[१] वस्तुतः अजयपाल के बाद सहजपाल राजा हुआ था। इस सम्बन्ध में 'मानोदय' काव्य

१. हिमालय परिचय (१) पृ० १२६।

को अधिक प्रामाणिक मानना चाहिये। उसमें अजयपाल के बाद सहजपाल का ही वर्णन है [1]।

तैमूर का आक्रमण—

तैमूर ने १३९८ ई० में गंगा को पार करके चण्डी और हरिद्वार के समीप युद्ध करके तबाही मचाई थी। तदनन्तर उसने गंगा और यमुना की मध्यवर्ती घाटी में वहाँ के राजा बहरुज पर आक्रमण किया। वीरता से लड़ने पर भी यह राजा पराजित हुआ। तैमूर ने उसके राज्य में खूब लूटमार की और अच्छा धन प्राप्त किया। परन्तु वह पर्वतों में आगे नहीं बढ़ सका। वह मैदानों की ओर लौट गया। गढ़वाल गजेटियर के अनुसार यह आक्रमण राजा सुन्दरपाल के समय हुआ। परन्तु गढ़वाल के प्राचीन अभिलेखों में इस प्रकार के तैमूर के आक्रमण का उल्लेख नहीं है। नाहीं बहरुज नाम के किसी राजा का उल्लेख है। सुन्दरपाल का समय भी १३९८ के बहुत बाद का ही है। तैमूर का आक्रमण तो हुआ ही होगा, क्योंकि उसके द्वारा किये गये विनाश के चिह्न हरिद्वार की खुदाइयों में अब तक प्राप्त होते रहे हैं। तथापि गढ़वाल में उस समय इस स्थान पर कोई राजा रहा होगा, जो टिहरी-दून का अधिपति होगा।

(३) **सहजपाल—**

ज्योतिराय भरत ने सहजपाल के उज्ज्वल व्यक्तित्व का वर्णन किया है। उसका समय १५५५-१६७५ ई० कहा जाता है। उसने गढ़वाल की एकता को प्रतिपादित करने में पराक्रम और राजनीतिनिपुणता से कार्य किया। उसकी सीमायें उत्तर में तिब्बत, पूर्व में कुमायूँ, उत्तर पश्चिम में रामपुर बिशेर, पश्चिम में सिरमौर तथा दक्षिण में सहारनपुर और बिजनौर के मैदानी भाग थे। सहजपाल ने १५६१ ई० में (शक सम्वत् १४८२) देवप्रयाग के रघुनाथ मन्दिर में घण्टा चड़ाया था।

ज्योतिराय भरत ने सहजपाल को अजयपाल का पुत्र और उत्तराधिकारी लिखा है। परन्तु जैसाकि पहले लिखा जा चुका है, पंवार वंशावलि में अजयपाल और सहजपाल के बीच में कल्याणपाल, सुन्दरपाल, हंसदेव और विजयपाल ये चार राजा और हुये थे।

(४) **बलभद्रपाल—**

गढ़ राजाओं की वंशावलि में सहजपाल के बाद बलभद्रपाल या बहादुरशाह का नाम है। इसका समय १५७५-१५९१ इ० कहा गया है। इसका सम्पर्क दिल्ली

---

१. सहजपालनृपालशिरोमणिः समभवत् तनयोऽस्य महीभुजः।
यमधिगम्य जना जगतीतले मुमुदिरे मुदिरे विहगा इव॥
मानोदय प्रथम मर्ग

के सुल्तानों से रहा था और उन्होंने उसको बहादुरशाह उपाधि दी थी । मित्रता के उपलक्ष्य में उत्तम पोशाक भी भेंट की । उसके बाद इस वंश के राजाओं के नाम के आगे पाल के स्थान पर शाह पद प्रचलित हुआ । इस राजा को बलभद्रशाह या बहादुर-शाह भी कहा जाने लगा ।

राहुल सांकृत्यायन का मत है कि वंशावलि में यह बलभद्रपाल नाम सन्दिग्ध हैं । 'मानोदय' काव्य के रचयिता ने सहजपाल के बाद मानशाह का वर्णन किया है ।

(५) मानशाह—

बलभद्रपाल के बाद उसका पुत्र मानशाह राजा हुआ । इसका राज्यकाल १५९१-१६१० ई० रहा । मानशाह के पुत्र श्यामशाह के राज्य-काल में कवि ज्योति-राय भरत ने मानशाह की प्रशंसा में 'मानोदय' काव्य की रचना की थी । इस काव्य में कवि ने मानशाह के पराक्रमों और विजयों का विस्तृत वर्णन किया है । मानशाह ने कुमायूँ के राजा उद्योतचन्द्र को पराजित किया । इसके सेनापति नन्दी ने चम्पावत पर भी अधिकार कर लिया था । मानशाह ने दक्षिण में मैदानी भागों पर आक्रमण करके राज्य का विस्तार मंगलौर (सहारनपुर) तक किया । उसने तिब्बत के अधिपति को भी पराजित कर अपनी शर्तें मनवाई । उसके समय में एक फ्रेंच यात्री डेलायट गढ़वाल आया था । उसने गढ़वाल के पर्वतीय सौन्दर्य का वर्णन किया है । ज्योतिराय भरत ने मानशाह की राजधानी का नाम मानपुर लिखा है । सम्भवतः यह नाम श्रीनगर का ही है । राजा मानशाह के गौरव को प्रदर्शित करने के लिये श्रीनगर को मानपुर लिखा गया होगा ।

देवप्रयाग के रघुनाथ मन्दिर में मानशाह के एक अभिलेख का डा० शिव-प्रसाद डबराल ने उल्लेख किया है ।[1]

(६) श्यामशाह—

मानशाह का उत्तराधिकारी श्यामशाह हुआ । इसका राज्य-काल १६१०-१६२९ ई० रहा । श्यामशाह की क्रूरता और वीरता दोनों प्रसिद्ध हैं । उसने प्रजा पर भी अत्याचार किये और कुमायूँ के साथ निरन्तर युद्ध किया । श्यामशाह ने चन्द्र-वंशी आक्रान्ता रुद्रचन्द को पराजित कर भगा दिया । इसके बाद कुमायूँ के चन्द राजाओं और गढ़वाल के पंवार राजाओं में लगभग २०० वर्षों तक निरन्तर युद्ध चलता रहा । इससे दोनों ही राज्य निर्बल हुये ।

गढ़वाल के प्रदेशों में श्यामशाह के अत्याचारों की अनेक कथायें प्रसिद्ध हैं । एक बार उसने एक महल में आग लगवा दी और एक बार कुछ ग्रामों को जलवा दिया । उसकी मृत्यु भी बहुत दर्दनाक हुई । एक बार वह गर्मियों में अलकनन्दा में

---

१. डबराल : उत्तराखण्ड यात्रा-दर्शन पृ० ५२५

नौका-विहार कर रहा था कि उसकी नॉव उलट गई और केवल ३१ वर्ष की आयु में वह अपने मुसाहबों के साथ डूब कर मर गया।

(७) महीपतिशाह—

महीपतिशाह का राज्य-काल १६२६-१६४६ ई० कहा गया है। परन्तु उसका एक दानपत्र १६२५ ई० का भी मिलता है। सम्भव है कि अपने पूर्वज के राज्यकाल में उसने यह दानपत्र लिखा होगा। यद्यपि रतूड़ी द्वारा लिखित वंशावलि में श्यामशाह के बाद महीपतिशाह का नाम है, तथापि प्राचीन अभिलेखों के अनुसार उसको राजगद्दी दुलारामशाह से प्राप्त हुई थी। सम्भव हैं कि दुलारामशाह अत्यल्प समय के लिये राजा रहा हो। इस कारण वंशावलि में उसका नाम आने से रह गया होगा।

महीपतिशाह वीर था और उसने अपने राज्य की सीमाओं को सुरक्षित रखने के साथ ही सीमाओं को बढ़ाया भी। उसको गर्वभञ्जन उपाधि प्राप्त थी। पूर्व में चन्द राजाओं तथा उत्तर में तिब्बत के साथ उसे युद्ध करने पड़े। रुद्रचन्द और उसके उत्तराधिकारी लक्ष्मीचन्द्र ने गढ़वाल पर आक्रमण किये थे। परन्तु उसको हार कर भागना पड़ा।

महीपतिशाह का तिब्बतियों के साथ युद्ध हुआ। ये भोट लोग पैनखण्डा और दसोली परगनों में लूटमार को अपना व्यवसाय बनाये हुये थे। वहाँ का शासक दाया था। महीपतिशाह ने रिखाला लोदी के नेतृत्व में सेना भेजी। उस समय खानपान में बहुत कट्टरता थी। अनेक सैनिक या तो स्वयं भोजन बना कर खाते थे या सरोला ब्राह्मणों के हाथ का खाते थे। उस समय १२ सरोला ब्राह्मणों की जातियाँ थीं। महीपतिशाह के आदेश से अन्य ब्राह्मणों को सरोला बना कर ये ३१ की गईं। रिखाला लोदी ने तिब्बतियों को पराजित किया। दाया शासक की मृत्यु हो गई।

महीपतिशाह का एक सेनापति माधवसिंह था। इसने सीमान्तों की सुरक्षा का विशेष प्रबन्ध किया था। उसकी वीरता की सर्वत्र धाक थी। श्रीनगर के निकट मलेथा की नहर को सुरंग बनवा कर उसने निकाला था।

महीपतिशाह अकबर का समकालीन था। आयने अकबरी और फिरिश्ता में तत्कालीन गढ़वाल के विवरण मिलते हैं। परन्तु उनमें गढ़वाल के लिये कुमायूं पद का प्रयोग है। आयने अकबरी के अनुसार यह राज्य २१ महालों (परगनों) में विभक्त था। इसके राजा की अकबर के साथ मित्रता थी तथा इसको किसी प्रकार का कर नहीं देना पड़ता था। यह राज्य एक प्रकार से सर्वतन्त्र स्वतन्त्र था। फिरिश्ता के अनुसार यह राज्य बहुत समृद्ध था। महीपतिशाह ने १७ वर्ष राज्य करके ३५ वर्ष की आयु में युद्ध भूमि में वीर गति पाई।

(८) पृथिवीपतिशाह—

महीपतिशाह का उत्तराधिकारी पृथिवीपतिशाह हुआ। उसने १६४६-१६७६ ई० तक राज्य किया। वह वीर शासक था। पर्वतीय राजाओं के साथ युद्ध करके

उसने राज्य की सीमाओं का विस्तार किया था । टिहरी गढ़वाल गजेटियर के अनुसार पृथिवीपतिशाह १६३०-३१ ई० में राजगद्दी पर बैंठा था । १६३५ ई० में गढ़वाल में भयानक अकाल पड़ा था ।

गढ़वाल की समृद्धि की कहानियाँ सुन कर मुगल बादशाह शाहजहाँ ने मिर्जा शुजा नजाबत खाँ बदक्शी के नेतृत्व में एक सेना भेजी । इसने दून घाटी के मार्ग से गढ़वाल पर आक्रमण किया । पृथिवीपतिशाह ने पहले तो आक्रमण का सामना नहीं किया । वह पीछे हटता गया । जब मुगल सेना पर्वतों के मध्य काफी आगे बढ़ गई तो बच निकलने के सारे मार्ग बन्द करके गढ़वालियों ने भयानक हमला किया । अधिकांश मुगल सैनिक मारे गये । जो बचे भी, गढ़वालियों ने उनकी नाकें काट कर जाने दिया । मुगल सेनापति ने इस अपमान को न सह कर जहर खा लिया ।

१६४७ ई० में दाराशिकोह ने अपने पिता के कहने पर पृथिवीपतिशाह के पास सम्मानसूचक पोशाक भेंट में भेजी थी ।[1] परन्तु १६५४-५५ में शाहजहाँ ने खलील उल्ला खान के सेनापतित्व में एक मुगल सेना गढ़वाल पर आक्रमण करने के लिये भेजी । इसके साथ गढ़वाल का स्वाभाविक शत्रु चन्द राजा बाजबहादुरचन्द भी था । सेना ने दून की घाटी में प्रवेश किया । परन्तु पृथिवीपतिशाह ने इनको पराजित कर अपनी शर्तों के अनुसार सन्धि की । इसके बाद मुगल सम्राट् ने एक तीसरा आक्रमण १६५६ ई० में किया । बाध्य होकर राजा ने सन्धि के लिये अपने पुत्र को मुगल दरबार में भेजा ।

औरंगजेब द्वारा शाहजहाँ को कैद करके दाराशिकोह की हत्या कर दिये जाने पर उसके पुत्र सुलेमानशिकोह ने १६५६ ई० में पृथिवीपतिशाह से शरण माँगी थी । राजा ने इस मुगल शहजादे को शरण दी । सभी ओर से आक्रमण होने पर भी वह अपने शरणागत की रक्षा करता रहा । राजकुमार मेदिनीशाह भी पिता की इस जिद को नहीं मान रहा था । वह चाहता था कि सुलेनानशिकोह को औरंगजेब को सौंप कर शाही कोप से बच लिया जावे । राजा जयसिंह ने अपने पुत्र रामसिंह को श्रीनगर भेजा कि वह राजा को समझा बुझा कर सुलेमानशिकोह को पकड़ लावे । पकड़े जाने की सम्भावना देख कर सुलेमानशिकोह ने तिब्बत की ओर भाग जाना चाहा । परन्तु पकड़ा गया । औरंगजेब ने इसको ग्वालियर के किले में कैद कर मरवा डाला ।

पृथिवीपतिशाह ने ३० वर्ष तक राज्य किया था और ६३ वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हुई थी । देवप्रयाग के रघुनाथ मन्दिर के एक अभिलेख के अनुसार १६६२ ई० में पृथिवीपतिशाह जीवित था ।

(६) मेदिनीशाह—

पृथिवीपतिशाह के बाद १६७६ ई० में उसका पुत्र मेदिनीशाह राजा हुआ ।

१, टिहरी गढ़वाल गजेटियर पृ० ४२

उसने १६६६ तक राज्य किया। मेदिनीशाह ने औरंगजेब से सन्धि करके दक्षिण की ओर से सुरक्षा पाली थी। परन्तु इसका चन्द राजाओं से निरन्तर युद्ध होता रहा था। चन्द राजा उद्योतचन्द ने जब गढ़वाल पर आक्रमण किया तो मेदिनीशाह ने डोटी के राजा से सन्धि कर उधर से उस पर आक्रमण करा दिया। ६१ वर्ष की अवस्था में १६६६ ई० में मेदिनीशाह की मृत्यु हुई।

टिहरी गढ़वाल गजेटियर के अनुसार पृथिवीपतिशाह के बाद उसका पौत्र फतेशाह राजसिंहासन पर बैठा था। मेदिनीशाह की १६६१ ई० में दिल्ली में ही मृत्यु हो गई थी।[1] परन्तु राहुल सांकृत्यायन ने उसके राज्यकाल का वर्णन किया है। हरिकृष्ण रतूड़ी ने भी गढ़ राजाओं की वंशावलि में मेदिनीशाह का राज्यकाल १६७६-१६६६ ई० दिखाया है।

(१०) फतेशाह—

फतेशाह जब राजगद्दी पर बैठा तो बालक ही था। उसकी माता रानी बर्तवाली (कांगड़ा की राजकुमारी) उसकी संरक्षिका थी। औरंगजेब ने उसके पक्ष में एक फरमान जारी किया था। रानी ने पाँच कडौच भाइयों—भगतसिंह, आलमसिंह, महीपतिसिंह, दयालसिंह और कमलसिंह को अपना सहायक बनाया था। इन भाइयों ने इतने अत्याचार किये कि लोगों ने उनको श्रीनगर से १०-१२ मील उत्तर (भट्टीसेरा से आगे) एक पर्वत पर मार डाला। रानी के परामर्शदाता अब शंकर डोभाल और पुरिया नैथानी हुये।

युवा होने पर फतेशाह ने शासन संभाला। उसका सारा जीवन युद्धों में ही बीता। पहले तो उसके युद्ध पश्चिम में सिरमौर से हुये। तदनन्तर दक्षिण के राजाओं से हुये। उसका सारे जीवन भर चन्द राजा ज्ञानचन्द और उसके बाद उसके पुत्र जगतचन्द (१७०८-१७२०) से युद्ध होता रहा। कभी कुमायूँ की सेना जीतती और कभी गढ़वाल की। एक बार तो जगतचन्द ने चाँदपुरगढ़ी को लूट कर श्रीनगर पर भी अधिकार कर लिया था तथा उस नगर को एक ब्राह्मण को दान कर लूट का माल अपने साथियों में बाँट दिया। परन्तु फतेशाह ने पुनः अपना अधिकार श्रीनगर पर स्थापित करके कुमायूँ पर आक्रमण किया। फतेशाह के राज्यकाल में ही औरंगजेब की मृत्यु हो गई।

फतेशाह के जीवन की एक घटना गुरु रामराय को जागीर देना था। सिखों के आठवें गुरु हरराय के दो पुत्र थे—हरिकृष्ण और रामराय। गुरु की गद्दी हरिकृष्ण को और उसके बाद तेगबहादुर को तथा उनके बाद गोविन्दसिंह को मिली। औरंगजेब से सनद लेकर रामराय दून की घाटी में आ गये। फतेशाह ने इनको बुड़बुड़ा, राजपुर ओर चामासारी गाँव जागीर में दिये। बाद में राजा प्रदीपशाह ने इनको धामावाला,

१. टिहरी गढ़वाल गजेटियर पृ० ४२

मियांवाला, पंडितवाड़ी तथा धरतावाला गाँव और दिये । गुरु का डेरा पड़ जाने के कारण यह नगर देहरादून (डेरादून) कहलाया ।

राजा फतेशाह ने ५० वर्ष तक शासन किया । उसकी मृत्यु १७४६ ई० में हुई ।

मौलाराम—

फतेशाह के राज्यकाल में १७४० ई० में श्रीनगर में मौलाराम का जन्म हुआ था । गढ़वाल के इतिहास में उसका बहुत महत्त्व है । उसके पूर्वज शामदास और हरदास गढ़वाल में दाराशिकोह के पुत्र सुलेमानशिकोह के साथ पृथिवीपतिशाह के समय में आये थे । वे यहीं श्रीनगर में बस गये । मौलाराम ने 'गढ़ राजवंश का इतिहास' काव्य लिखा है । इसमें श्यामशाह से लेकर सुदर्शनशाह तक के गढ़ राजाओं के विवरण हैं । वह एक कुशल चित्रकार भी था ।

(११) प्रदीपशाह—

फतेशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र दिलीपशाह राजा हुआ । परन्तु कुछ ही समय बाद वह मर गया । उसके बाद उमका भाई उपेन्द्रशाह राजा हुआ । वह भी नौ महीने राज्य करके मर गया । उसके बाद दिलीपशाह का पुत्र प्रदीपशाह राजा हुआ ।

प्रदीपशाह एक प्रतापी राजा था । उसने १७५०-१७८० ई० तक राज्य किया था । प्रदीपशाह के प्रारम्भिक राज्यकाल में गढ़वाल में प्रायः शान्ति बनी रही और सुख तथा समृद्धि बढ़ी । इसी समम अफगान सरदार रहमत खाँ ने कुमायूं पर आक्रमण किया । चन्द राजा कल्याणचन्द ने भाग कर गढ़वाल के राजा की शरण ली और प्रदीपशाह से सहायता माँगी । परन्तु रहमत खाँ ने गढ़वाल और कुमायूँ की सम्मिलित सेना को पराजित किया । प्रदीपशाह ने तीन लाख रुपये देकर उसको लौटने लिये के राजी किया । १७५७ ई० में नजीब खाँ ने देहरादून पर आक्रमण किया । उसने इस नगर के बड़े भाग पर अधिकार कर लिया । नजीब खाँ की मृत्यु तक उसका यह अधिकार बना रहा । प्रदीपशाह विद्वानों का आश्रयदाता था । उसके आश्रित कवि मेधाकर ने 'प्रदीपरामायण' काव्य की रचना की थी । इसके प्रथम सर्ग में कवि ने गढ़ राजाओं का विवरण देने के साथ प्रदीपशाह का विस्तृत इतिहास भी लिखा है । ३० वर्ष शासन करके १७८० ई० में प्रदीपशाह की मृत्यु हो गई ।

(१२) ललितशाह—

प्रदीपशाह के बाद उसका पुत्र ललितशाह राजा हुआ । उसका राज्यकाल १७८०-१७६१ रहा था । अपने राज्य के प्रबन्ध की ओर उसने कम ही ध्यान दिया था । इसका परिणाम यह हुआ कि पहले तो सिखों ने दून की घाटी में घुस कर प्रजा को खूब लूटा और उसके बाद सहारनपुर की ओर मे राजपूत-गूजरों ने लूटपाट करनी प्रारम्भ कर दी । ललितशाह अपनी प्रजा की रक्षा के लिये कुछ न कर सका । परन्तु उसने इतना अवश्य किया कि आक्रमण करने वालों के सरदारों को

कुछ धनराशि वार्षिक देनी निश्चित करके उनको खरीदने का प्रयास अवश्य किया।

ललितशाह के समय में कुमायूँ में बहुत अधिक अव्यवस्था चल रही थी। राजा दीपचन्द निर्बल और अयोग्य था। शासन का सारा सूत्र उसके मन्त्री शिवदेव जोशी के हाथ में था। शिवदेव जोशी का उसी के आदमियों ने कतल कर दिया। अब रानी ने शासन की बागडोर अपने हाथों में लेली। परन्तु शीघ्र ही उसका भी कतल राजपरिवार के एक व्यक्ति मोहनसिंह ने करके तथा राजा को भी मार कर अपने को शासक घोषित कर दिया (१७७७ ई०)। शिवदेव जोशी के मित्र और सम्बन्धी कतल कर दिये गये। कुमायूँ में आतंक का राज्य स्थापित हो गया। राजपरिवार के लोगों ने ललितशाह से सहायता माँगी। ललितशाह ने हस्तक्षेप करना स्वीकार करके कुमायूँ ओर की प्रयाण किया और बागवाली पोखर के समीप मोहनसिंह की सेनाओं को नष्ट कर दिया।

ललितशाह की दो रानियों के चार पुत्र थे। इनके नाम थे—जयकृतशाह, प्रद्युम्नशाह, पराक्रमशाह और प्रीतमशाह। वह सबको राजा बनाना चाहता था। अब उसने प्रद्युम्नशाह को प्रद्युम्नचन्द नाम देकर कुमायूँ का राजा बना दिया। ललितशाह ने दशोली के मन्दिर और लंगूरगढ़ के भैरव मन्दिर के लिये दानपत्र लिखे थे। ललितशाह के समय में नजीबुद्दौला के पौत्र गुलामकादिर (१७८५–१७८६ ई०) ने देहरादून को लूट कर रक्त की होली खेली। १७६१ में ललितशाह की मृत्यु के बाद उसके बड़े पुत्र जयकृतशाह ने राज्य के भार को सम्भाला।

(१३) जयकृतशाह—

ललितशाह के बाद उसका पुत्र जयकृतशाह १७६० ई० में शासन का सूत्रधार बना। वह चाहता था कि प्रद्युम्नचन्द उसका आधिपत्य स्वीकर करे। परन्तु प्रद्युम्नचन्द अपने को स्वतन्त्र राजा मानता था। जयकृतशाह ने कुमायूँ के मोहनसिंह को मिला कर प्रद्युम्नचन्द को हटाकर पराक्रमशाह को राज्य देना चाहा। प्रद्युम्नचन्द ने भी जयकृतशाह को हटाकर गढ़वाल का राजा बनना चाहा। इस समय मोहनसिंह ने अपने मन्त्री हरदेव जोशी को श्रीनगर भेजा। परन्तु जयकृतशाह को उस पर सन्देह हो गया। उसने हरदेव जोशी पर आक्रमण किया। परन्तु कुमायूँ की सेना ने जयकृतशाह की सेना को पराजित कर भगा दिया। जयकृतशाह को अपनी रक्षा के लिये भागना पड़ा। इसी कशमकश में १७६७ ई० में जयकृतशाह की मृत्यु हो गई। अब कुमायूँ की सेना ने श्रीनगर में कत्लेआम करना आरम्भ करके श्रीनगर पर अपना अधिकार कर लिया। यह काण्ड इतिहास में जोशियाना काण्ड के नाम से प्रसिद्ध है।

अब पराक्रमशाह ने अपने को गढ़वाल का राजा घोषित किया। परन्तु प्रद्युम्नचन्द ने तुरन्त ही अलमोड़ा से आकर पराक्रमशाह से राज्य का अधिकार छीन

लिया। प्रद्युम्नशाह नाम धारण करके उसने अपने को गढ़वाल का राजा घोषित कर दिया। एक साल तक प्रद्युम्नशाह का गढ़वाल और कुमायूँ दोनों पर अधिकार रहा। अब उसने पराक्रमशाह को कुमायूँ का शासक बना कर भेजा। परन्तु कुछ ही समय बाद मोहनसिंह ने उसको कुमायूँ से निकाल दिया। १७८८ ई० में हरदेव जोशी ने मोहनसिंह की हत्या कर दी।

(१४) प्रद्युम्नशाह—

प्रद्युम्नशाह १७६७ ई० में गढ़वाल का राजा बना। परन्तु उसका सारा ही समय अशान्ति में बीता। राजा के दरबारी एक दूसरे के विरुद्ध षड्यन्त्र करते रहते थे। मौलाराम ने इन दरबारियों के षड्यन्त्रों का वर्णन 'गढ़राजकाव्य' में किया है। कृपाराम डोभाल ने कार्यालय के मुख्य अधिकारी नित्यानन्द खण्डूरी पर षड़यन्त्र का आरोप लगाकर उसकी आँखें निकलवा लीं। नित्यानन्द के सम्बन्धियों—रामा और धरणी (सेनानायक) ने घमण्डीसिंह द्वारा राजसभा में ही कृपाराम का सिर कटवा लिया। अब सभी अधिकार रामा और धरणी के हाथों में आ गये। राजा इनके हाथों का खिलौना बन गया। राज्य में अत्याचार और अव्यवस्था फैल गये।

गुलाम कादिर के दून पर आक्रमण के बाद उम्मेदसिंह ने दून की घाटी का शासन-सूत्र सम्भाला था। परन्तु वह कभी तो प्रद्युम्नशाह को अपना मालिक मानता था और कभी सिरमौर के राजा को अपना राजा कहने लगता था।

१७७८ ई० में नेपाल में एक राजनीतिक क्रान्ति हुई। इस समय रणबहादुर-शाह ने राज्य के शासन को अपने अधिकार में करके १७६० ई० में सारे नेपाल को एक शासन में सुसंगठित किया। उस समय कुमायूँ का शासन भी बहुत अव्यवस्थित था। अवसर का लाभ उठाकर नेपाली सेना ने आक्रमण किया और शीघ्र ही अलमोड़ा को अपने अधिकार में कर लिया। अगले ही साल नेपाली सेनाओं ने गढ़वाल पर आक्रमण किया (१७६१ ई०)। नेपाली सेनायें लंगूरगढ़ (श्रीनगर से बहुत दूर नहीं) आ गईं। परन्तु गढ़वाली सेनाओं ने उनका भारी प्रतिरोध किया। १२ महीनों तक घेरा डाल कर भी नेपाली सेनायें लंगूरगढ़ पर अधिकार नहीं कर सकीं। इसी समय चीनी सेनाओं के आक्रमण का खतरा उत्पन्न हो जाने के कारण नेपाली सेनाओं को वापिस लौटना पड़ा। परन्तु जाने से पहले उन्होंने गढ़वालियों को इस प्रकार की सन्धि के लिये मजबूर कर दिया कि वे प्रतिवर्ष २५००० रु० कर के रूप में देंगे तथा अपना एक दूत काठमाण्डू में रखेंगे। यह सन्धि १२ वर्षों तक चलती रही। अब नेपाली रेजीडेन्ट भी श्रीनगर में रहता था। अनेक नेपाली तीर्थयात्रा के बहाने गढ़वाल में आते रहते थे। इनका सारा व्यय गढ़वाल के राजा को देना पड़ता था।

नेपालियों को गढ़वाली घृणा की दृष्टि से देखते थे। इनमें अनेक बार खुनी झड़पें हो जाती थीं। १७६४–६५ में गढ़वाल में भयानक अकाल पड़ा और प्रजा भूखों मरने लगी। इधर १८०३ ई० गढ़वाल में भयानक भूकम्प आया। भूकम्प का

केन्द्र बिन्दु गढ़वाल ही था। श्रीनगर के सारे घर हिल गये। तीन चौथाई घर रहने योग्य नहीं रहे। राजा का महल भी बहुत कुछ ध्वस्त हुआ। पहाड़ों के टूटने से कितने ही गाँव दब गये तथा पुरानी जल-धारायें सूखकर नई धारायें फूट पड़ीं। इससे गढ़वाल में हाहाकार मच गया।

इधर गढ़वाल में रामा और धरणी ने शासन को अपने अधिकार में कर रखा था। षड्यन्त्रकारियों ने इन पर ही षड्यन्त्र करने का आरोप लगाकर रामा को पैंनखण्डा के धूनीरामणी स्थान पर मरवा दिया। धरणी को भी श्रीनगर में ही अलकनन्दा की रेती में मार डाला गया। इनके घर की विधवा (बैजू की बामणी) नेपाल के राजगुरु की पुत्री थी। वह रोती कलपती पिता के घर आई। इधर गढ़वाल दरबार ने नेपाल को २—३ वर्ष का कर नहीं भेजा था। गुरखाओं के लंगूरगढ़ी पर अधिकार करने के अनेक प्रयत्न विफल हो गये थे। इन सब कारणों से नेपाल के अधिकारियों ने समुचित अवसर देख कर गढ़वाल पर आक्रमण कर दिया।

फरवरी १८०३ ई० में नेपाल की एक सेना अमरसिंह थापा और हस्तिदल चौतरिया के नेतृत्व में तेजी से श्रीनगर की ओर बढ़ी। बची-खुची अस्तव्यस्त सेना को लेकर प्रद्युम्नशाह ने नेपाली सेना का सामना तो किया, परन्तु वह उसके सामने ठहर नहीं सका। नेपाल की दूसरी सेना भक्ति थापा और चन्द्रवीर कुँवर के नेतृत्व में लंगूरगढ़ पर अधिकार करके श्रीनगर पहुँच गई। दोनों सेनायें श्रीनगर पहुँच कर मिल गईं। अपने परिवार को लेकर राजा पहले तो बाड़ाहाट की ओर भागा। गोरखा सेना द्वारा पीछा करने पर वह बाड़ाहाट से देहरादून पहुँचा। गोरखों ने वहाँ भी उसका पीछा किया। साधनों से हीन प्रद्युम्नशाह सहारनपुर की ओर भागा। उसने अपने राजसिंहासन और आभूषणों को बेचकर कुछ धन एकत्रित किया और लंढौरा के राजा रामदयालसिंह की सहायता से १२००० गूजर-राजपूत सेना एकत्रित की अब उसने देहरादून में गोरखों पर आक्रमण कर अपने कलंक को धोने का प्रयत्न किया। परन्तु खुड़बुड़ा के मैदान में उसके सिर में एक गोली लगी और वह वहीं मर कर गिर गया। उसका भाई प्रीतमसिंह कैद कर लिया गया। पराक्रमशाह अपनी ससुराल कांगड़ा जाकर कुछ ससय बाद मर गया। जनवरी १८०४ ई० के इस युद्ध के बाद गढ़वाल के इस राजवंश की स्वतन्त्र सत्ता समाप्त हो गई। प्रद्युम्नशाह के पुत्र सुदर्शनशाह को स्वामिभक्त सेवकों ने किसी प्रकार बचा कर ज्वालापुर पहुँचाया।

(छ) गोरखा शासन—

देहरादून के खुड़बुड़ा के युद्ध के बाद गढ़वाल पर नेपाली शासन सुदृढ़ हो गया। नेपालियों ने इस शासन को सुव्यवस्थित करना प्रारम्भ किया। गढ़वाल और कुमायूँ का प्रमुख शासक अमरसिंह थापा नियुक्त किया गया। उसने अपने पुत्र रणजोर थापा को अपना प्रमुख सहायक नियुक्त किया। बाद में हस्तिदल थापा और भक्ति

थापा को भी विशेष रूप से गढ़वाल में शासन चलाने के लिये सहायक के रूप में नियुक्त किया गया।

गढ़वाल में गोरखों के शासन का एक ही मुख्य उद्देश्य था कि यहाँ से किस प्रकार से अधिक से अधिक धन को चूसा जावे। उन्होंने नागरिक प्रशासन की व्यवस्था को तो पहले राजाओं के समान बनाये रखा, परन्तु सैनिक शासन अपना चलाया। शासन के लिये गढ़वाल को तीन भागों और ८४ परगनों में बाँटा गया। प्रधान शासक लंगूरगढ़ी, चाँदपुरगढ़ी और श्रीनगर में रहते थे। श्रीनगर अब भी गढ़वाल की राजधानी थी।

परगनों के शासन के लिये सैनिक अधिकारी, फौजदार नियुक्त किये गये। वे लोहदण्ड से क्रूरता से शासन करते थे। शासन करने के लिये वे सब प्रकार से स्वतन्त्र थे। जब तक कि वे सरकारी कर को खजाने में जमा करते रहें, तब तक उनको सब प्रकार की स्वतन्त्रता थी। जनता से वे किस प्रकार से कर वसूल करते हैं, इस पर कोई प्रश्न नहीं किया जाता था वे खेतों से तरह-तरह के कर वसूल करते थे। वे न्यायाधिकारी भी थे। छोटी-छोटी बातों के लिये भी बड़े दण्ड वसूल करते थे। यह दण्ड की राशि उन अधिकारियों की ही जेबों में जाती थीं। इन अफसरों के समक्ष प्रजा की न तो सम्पत्ति सुरक्षित थी और न ही सम्मान सुरक्षित था। युवती स्त्रियों की इज्जत का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। जो व्यक्ति कर या दण्ड देने में थोड़ी सी भी आना-कानी करते थे या दे नहीं पाते थे, वे दास बनाकर बेच दिये जाते थे।

कहा जाता है कि गोरखों ने एक चौकी हर की पौड़ी के समीप बनाई थी। यहाँ १८१४ ई० तक दास-दासियों का बाजार लगता रहा। दासों का मूल्य १० से १५० रुपये तक था। अपने शासन की अवधि में गोरखों ने लगभग दो लाख दास बेचे थे।

गोरखों के इन अत्याचारों के वृत्तान्त गढ़वाल में गोरख्याली के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन अत्याचारों से गढ़वाल की जनता की दशा दयनीय हो गई। उनका मनोबल और आत्मबल इतना गिर गया कि वे अपने उद्धार की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। ग्राम जनशून्य हो गये और कृषि नष्ट हो गई। जनसंख्या बहुत कम हो गई। गोरखों द्वारा लगाये गये करों और जुर्मानों के कारण लोगों ने गाँव के गाँव खाली कर दिये। इसका परिणाम यह हुआ कि पंवार राजाओं के समय में प्रजा से जो कर वसूल होता था, उसकी मात्रा लगभग चौथाई रह गई।

इतिहासविदों का कथन है कि विजेता गोरखों का व्यवहार बहुत रूखा और क्रूर था। राजधानी के समीप ही हत्या, अपमान और बलात्कार के काण्ड होते रहते थे। परन्तु कोई कुछ बोलता नहीं था। इससे गढ़वालियों के हृदयों में गोरखों के प्रति असीम घृणा उत्पन्न हो गई। गढ़वाल की इस दुर्दशा का समाचार नेपाल भी

पहुँचा। मौलाराम ने श्रीनगर-दुर्दशा का चित्र उस आवेदन के साथ खींचा था, जो उसने नेपाल के प्रधान मन्त्री भीमसेन थापा के पास भेजा था।

सुदर्शनशाह, नेपाली विजय के समय नाबालिग था और निर्वासन में ज्वालापुर-कनखल में रह रहा था। विशेष रूप से हरदेव जोशी, जो कुमायूँ से निर्वासित था, ईस्ट इण्डिया कम्पनी से अपील कर रहा था कि वह गोरखों को नेपाल से निकालने में सुदर्शनशाह की सहायता करे। परन्तु पहले तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी इसके लिये राजी नहीं हुई, परन्तु नेपालियों ने जब ब्रिटिश क्षेत्र पर आक्रमण करने प्रारम्भ किये तो उस समय के गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्स ने आदेश दिये कि नेपाल पर जितने भी क्षेत्रों से सम्भव हो, आक्रमण किया जावे। इस समय अंग्रेजों ने बहाना तो यही किया कि नेपाल ने कम्पनी सरकार के अनेक इलाकों पर दखल कर लिया है। परन्तु अंग्रेजी आक्रमण के अन्य भी अनेक कारण रहे थे। इनमें एक तो यह था कि अंग्रेजों ने हिमालय में अपार धन-सम्पदा के विषय में सुन रखा था। दूसरा यह था कि पर्वतीय क्षेत्रों में ऐसे सुरम्य ठण्डे स्थान खोजे जा सकते थे, जो ठण्डे देश में रहने वाले अंग्रेजों के लिये अधिक उपयुक्त होते। एक नवम्बर १८१४ को अंग्रेजों ने युद्ध की घोषणा कर दी।

अंग्रेजों ने चार स्थानों से नेपाल पर आक्रमण किया—बिहार से, गोरखपुर से, देहरादून की ओर से और यमुना-सतलज के बीच से। देहरादून की ओर से जनरल जिलेप्सी ने ३५०० सैनिकों को लेकर अमरसिंह थापा पर आक्रमण किया। परन्तु सफल न हो सका। देहरादून से ५ किमी० दूर कलंगा (नालापानी) के किले के घेरे में वह मारा गया। परन्तु अन्त में अंग्रेजों ने किले पर अधिकार कर लिया। १८१४ के अन्त तक ब्रिटिश सैनिक नेपालियों को देहरादून से निकालने में सफल हो गये। इस युद्ध में गोरखा सेनापति बलभद्र और उसके गोरखा सैनिकों ने अद्भुत वीरता का प्रदर्शन किया। परन्तु अग्रेजों की शक्ति से वे पराजित हुए। उधर सतलज-यमुना के मध्य से जनरल आक्टरलोनी ने ६००० सैनिकों के साथ लुधियाना से प्रस्थान किया। बिहार और गोरखपुर से चलने वाली सेनाओं को विशेष सफलता नहीं मिली। परन्तु इन दोनों सेनाओं ने सफलता पाई।

गोरखों की पश्चिमी कमान अमरसिंह थापा के पास थी। उसने वीरता से अंग्रेजों का सामना किया। परन्तु अंग्रेज किले पर किले जीतते आगे बढ़ते गये। अन्त में अमरसिंह थापा ने मलांव दुर्ग में आश्रय लिया। समीप के सूरगढ़ किले में बैठे भक्ति थापा ने अंग्रेजों पर आक्रमण किया, पर वह मारा गया। अन्त में अमरसिंह थापा को पराजय स्वीकार करनी पड़ी। गढ़वाल के सभी किले अंग्रेजों के अधिकार मे आ गये। इधर अंग्रेज कुमायूँ में भी बढ़ गये थे। उन्होंने २७ अप्रैल १८१५ को अलमोड़ा पर अधिकार कर वहाँ के शासक बमशाह को कुमायूँ खाली करने के

लिये बाध्य कर दिया। इस प्रकार गढ़वाल और कुमायूँ अंग्रेजों के अधिकार में आ गये।

अंग्रेज लेखकों का कथन है कि इस युद्ध में उनकी विजय का श्रेय अंग्रेजी युद्ध-कौशल और वीरता को उतना नहीं है, जितना कि स्वयं नेपालियों की निर्बलता को है। नेपालियों की निर्बलता सबसे अधिक यह थी कि स्थानीय निवासी उनसे घृणा करते थे। अंग्रेजी सेना ने ज्यों ही गढ़वाल में प्रवेश किया, स्थानीय निवासी उनकी सहायता को आये। वे आवश्यक सामग्री प्रदान करते थे। वे ब्रिटिश सेना को आवश्यक जानकारी देते थे तथा गोरखों की गतिविधियों की सूचनायें पहुँचाते थे। स्थानीय भूमि के मार्गों की जानकारी प्राप्त करना अंग्रेजों के लिये बहुत महत्वपूर्ण था। इसके बिना अंग्रेजों के लिये सम्भव नहीं था कि वे उचित दिशा का निर्देश पा सकते। हरदेव जोशी का स्थानीय जनता पर प्रभाव था और वह उनको अंग्रेजों की सहायता के लिये प्रेरित करता था। गढ़वालियों की इस हार्दिक सहायता के बिना अंग्रेजों के लिये युद्ध जीतना सम्भव नहीं था।

गोरखों की शक्ति अंग्रेजों ने नष्ट कर दी और गढ़वालियों को बदला लेने का अवसर मिल गया। उन्होंने अपने रक्त का, हत्याओं का, बलात्कारों का, लूटमार का और अन्य अत्याचारों का भयानक बदला अत्याचारियों से लिया। गोरखों की अकेली पड़ गई टुकड़ियाँ कत्ल कर दी गईं। उनको वीरान पर्वतों के मध्य भूख ओर सर्दी से मरने के लिये खदेड़ दिया गया। यह एक भयानक बदला था। इन गोरखों में कुछ ही बच पाये होंगे, जिन्होंने या तो स्थानीय गढ़वाली परिवारों में विवाह कर लिये थे या कुछ दयालु किसानों द्वारा बचा लिये गये थे। परन्तु अधिकांश गोरखे मारे गये।

गढ़वाल और कुमायूँ से भगाये जाने पर गोरखों की अंग्रेजों के साथ सन्धि की वार्ता होने लगी। पहले तो नेपालियों ने अंग्रेजों की शर्तें नहीं मानीं, परन्तु बाद में अधिक सैनिक दबाव पड़ने पर उनको ये शर्तें माननी पड़ीं। इस सन्धि के अनुसार नेपालियों को अन्य क्षेत्रों के साथ ही काली नदी के पश्चिम का सारा इलाका खाली करना पड़ा। अब कुमायूँ और गढ़वाल दोनों अंग्रेजी राज्य के अन्तर्गत हो गये। ३ मई १८१५ ई० को अंग्रेजों ने कुमायूँ और गढ़वाल को ब्रिटिश इलाका घोषित किया। दो दिसम्बर १८१५ को सन्धि की शर्तें बनीं और चार मार्च १८१६ ई० को सन्धि अन्तिम रूप से सम्पन्न हुई।

(ज) अंग्रेजी शासन—

गोरखों पर विजय के साथ ही अंग्रेजी शासन का काल प्रारम्भ होता है। इस समय गढ़वाल के दो भाग हो गये थे। टिहरी गढ़वाल और ब्रिटिश गढ़वाल। इनमें ब्रिटिश गढ़वाल तो अंग्रेजों के प्रत्यक्ष अधिकार में था, जिसका इतिहास भारतवर्ष के अन्य भागों के ही समान है। परन्तु टिहरी गढ़वाल का इतिहास राजाओं का इतिहास है। प्रत्येक राजा के सम्बन्ध में कुछ विचार करना उचित होगा।

(१) सुदर्शनशाह—

गढ़वाल का स्वामित्व अंग्रेजों के हाथ में जाने के समय सुदर्शनशाह बहुत गरीबी की अवस्था में देहरादून में रह रहा था। ब्रिटिश अधिकारी इतने उदार नहीं थे कि सारा गढ़वाल उसको दे देते। उन्होंने उसको केवल वह इलाका दिया, जो वर्तमान टिहरी जिला है। १८२४ ई० में उसको रवांई (वर्तमान उत्तरकाशी) का इलाका दिया गया।

गोरखा युद्ध से पहले ही सुदर्शनशाह ने कह दिया था कि देहरादून तथा चण्डी (हरिद्वार में गंगापार) का क्षेत्र वह अंग्रेजों को सौंप देगा। पर युद्ध समाप्त होने पर अंग्रेजों ने देहरादून और चण्डी क्षेत्र को अपने अधिकार में रखकर भी गढ़वाल के दो भाग कर दिये। अलकनन्दा के दक्षिणवर्ती तथा मन्दाकिनी के पूर्व का भाग अंग्रेजों के अधिकार में रहा। यह ब्रिटिश गढ़वाल कहलाया। शेष भाग सुदर्शनशाह को दे दिया गया। बेचारा सुदर्शनशाह असहाय था और अंग्रेजों की दया पर निर्भर था। उसको जो कुछ मिला, उसने ले लिया। सुदर्शनशाह ने अपनी राजधानी गंगा-भिलंगना के संगम (गणेशप्रयाग)पर टिहरी में बनाई और अपना महल एक पहाड़ी पर बनाया, जो अब पुराना दरबार कहलाता है। १८२४ ई० में कम्पनी सरकार ने राजा को सनद दी तथा उसमें अनेक शर्तें लगाई गईं।

इन शर्तों के अनुसार टिहरी गढ़वाल के राजा का कर्तव्य था कि वह अंग्रेजों को आवश्यकता के अनुसार सहायता दे तथा सामान सप्लाई करे। वह व्यापारिक सुविधायें भी दे। अपने राज्य की कोई भूमि वह ब्रिटिश सरकार की अनुमति के विना न तो किसी को दे सकता था और न रहन ही रख सकता था। वह ब्रिटिश सरकार का संरक्षित राज्य था।

सुदर्शनशाह ने शीघ्र ही शासन को सुदृढ़ किया और अंग्रेजों का भक्त रहा। १८५७ ई० के स्वतन्त्रता संग्राम में उसने अंग्रेजों की सहायता की। उसके २०० सैनिक अंग्रेजों की सहायता के लिये राजपुर के समीप सदा सन्नद्ध रहते थे। नजीबा-बाद के नबाब ने उससे स्वतन्त्रता संग्राम में योग देने को कहा तो उसने इन्कार कर दिया तथा स्वामिभक्त बना रहा। स्वतन्त्रता का युद्ध समाप्त होने पर अंग्रेजों ने उसकी सेवाओं के बदले में विजनौर के कुछ इलाके देने चाहे तो सुदर्शनशाह ने देहरादून तथा ब्रिटिश गढ़वाल देने की बात कही। अभी यह वार्ता चल ही रही थी कि जून १८५६ ई० में सुदर्शनशाह की मृत्यु हो गई तथा यह बात यहीं समाप्त हो गई।

सुदर्शनशाह विद्वान्, कवि तथा कवियों का आश्रयदाता था। उसकी प्रशंसा में संस्कृत में 'सुदर्शनोदयम्' काव्य लिखा गया था।

ब्रिटिश गढ़वाल—

अंग्रेजों ने देहरादून जिले पर अधिकार कर लिया था। देहरादून को अन्य

पर्वतीय भू-भागों के साथ मिला कर अलग जिला बनाया गया तथा यह मेरठ कमिश्नरी में शामिल हुआ। इसको अंग्रेजों ने अपनी सुविधा के लिये विकसित किया। मसूरी को अपने निवास के उपयुक्त बनाया। ब्रिटिश गढ़वाल की राजधानी अभी तक श्रीनगर ही थी। गर्मियों में यह गरम स्थान था। अंग्रेजों ने १८४० ई० में पौड़ी को सदर मुकाम बना लिया। १८१५–१८३५ ई० में कर्नल ट्रेल कुमायूँ-गढ़वाल कमिश्नरी का कमिश्नर रहा। १८३९ ई० में ब्रिटिश गढ़वाल एक पृथक् जिला बना। गढ़वाल के शासन को व्यवस्थित करने तथा भूमि का बन्दोबस्त करने और तीर्थयात्रा मार्गों को विकसित करने में उसने विशेष योग दिया था।

(२) भवानीशाह (१८५९–१८७१ ई०)—

सुदर्शनशाह का कोई पुत्र नहीं था। अतः उसके उत्तराधिकारी पर विवाद उत्पन्न हुआ। सुदर्शनशाह के मरते ही उसकी खनेती रानी की सहायता से शेरशाह ने अपने को राजा घोषित कर दिया। ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति पाने के लिये उसने अपने सभी सौतेले भाइयों, थोकदारों, ठाकुरों और सयानों के हस्ताक्षरों से युक्त एक पेटीशन कुमायूँ-गढ़वाल के कमिश्नर ट्रेल के पास भेजा। इस समय दूसरे दावेदार भवानीशाह के भी हस्ताक्षर कराये गये थे। परन्तु भवानीशाह की पत्नियों ने अलग से एक अपील कमिश्नर से की। टिहरी आकर कमिश्नर ने शेरशाह से कहा कि वह जौनपुर परगने पर अपना हक छोड़ दे। परन्तु शेरशाह ने स्वीकार नहीं किया और विद्रोह की धमकी दी। कमिश्नर उसको शिकार के बहाने देहरादून ले गया तथा कैद कर लिया। भवानीशाह को राजा घोषित कर दिया गया।

भवानीशाह कोमल स्वभाव का राजा था। अपना अधिक समय वह एकान्त में तथा तीर्थ यात्राओं में बिताता था। उसके समय में जौनपुर परगने में राजा के विरुद्ध आन्दोलन हुआ। परन्तु अंग्रेजी फौजों ने इस आन्दोलन को दबा दिया। रवांई में भी विद्रोह हुआ, परन्तु वह राजा के सैनिकों द्वारा ही दबा दिया गया। १८७१ ई० में भवानीशाह की मृत्यु हो गई।

(३) प्रतापशाह (१८७१–१८८६ ई०)—

भवानीशाह के बाद उसका पुत्र प्रतापशाह २१ वर्ष की आयु में राजा हुआ। उसने अपने नाम से एक नगर टिहरी के समीप पर्वत-शिखर पर प्रताप नगर नाम से बसाया। यह राजा शिक्षा, संगीत और शिकार का शौकीन था। उसने टिहरी में स्कूल खोला (अब प्रताप इण्टर कालेज)। उसने वन, न्याय तथा पुलिस प्रशासन को सुव्यवस्थित किया।

प्रतापशाह के समय अनेक जन-आन्दोलन हुए। पहला पट्टी खास में हुआ। परन्तु राजा ने इसको समझा-बुझा कर शीघ्र ही दबा दिया। दूसरा लच्छू लठैत के नेतृत्व में बसार विद्रोह हुआ। परन्तु राजा ने इसको भी बुद्धिमानी से शान्त कर

दिया। उसने जनता को अनेक रियायतें दीं। १८८६ ई० में अधिकारियों के क्रूर व्यवहार के कारण पुनः आन्दोलन हुआ। बहुत अधिक संख्या में टिहरी में लोग एकत्रित हो गये। परन्तु उसी समय ३५ वर्ष की अल्प आयु में राजा की मृत्यु हो गई। तब रानी गुलेरी की अपील पर लोग अपने-अपने घरों को चले गये।

(४) **कीर्तिशाह** (१८८६–१९१३ ई०)—

भवानीशाह की मृत्यु के समय उसके पुत्र कीर्तिशाह की आयु १२ वर्ष की थी। रानी गुलेरी (राजमाता) ने उसके चाचा विक्रमशाह को संरक्षक बना कर कीर्तिशाह को राजा बनाया। परन्तु प्रजा के असन्तोष को देखते हुए एक वर्ष के ही भीतर स्वयं राज्य-शासन के अधिकार अपने हाथों में ले लिये। उसने शासन में सहायता के लिये तीन सदस्यों की समिति बनाई। १८९२ ई० में कीर्तिशाह ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। उसका विवाह नेपाल के राजा जंगबहादुर की भतीजी से हुआ।

कीर्तिशाह ने अच्छी शिक्षा पाई थी। उसने प्रशासन में अनेक सुधार किये थे। उसने अनेक स्कूल खोले, टिहरी में एक क्लाक टावर बनवाया तथा कीर्तिनगर नाम से एक नगर की स्थापना की। निचली अदालतों की अपीलों को सुनने के लिये उसने हाईकोर्ट की स्थापना की। बैंक आफ गढ़वाल भी उसके समय में बना। १९१३ ई० में वह केवल ४० वर्ष की आयु में मर गया।

(४) **नरेन्द्रशाह** (१९१३–१९४८ ई०)—

कीर्तिशाह की मृत्यु के समय उसका पुत्र नरेन्द्रशाह अवयस्क था। उस समय इस राज्य के शासन को ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त पोलीटिकल एजेन्ट ने संभाला था। नरेन्द्रशाह ने भी अच्छी शिक्षा पाई थी। उसकी प्रशासन में भी रुचि थी। उसने ऋषिकेश से १० मील ऊपर नरेन्द्र नगर की स्थापना करके उसको अपनी राजधानी बनाया। उसने कीर्तिनगर-टिहरी और ऋषिकेश-कीर्तिनगर मोटर मार्गों का भी निर्माण कराया था। उसके समय में एक सिविल कानून (नरेन्द्र हिन्दू ला १९१८) बना। १९२४ ई० में टिहरी की सारी भूमि का पुनः बन्दोबस्त हुआ और १९२७–२८ ई० में वन कानून बना।

नरेन्द्रशाह ने ग्रामों की भूमि की सीमायें निश्चित कीं (मुनारबन्दी)। इससे ग्रामवासियों से अन्य भूमि छिन गई। रवांई परगने में १९३० ई० में विद्रोह हुआ। परन्तु राजा के सैनिकों ने बन्दूकों के बल पर इसको निर्दयता से कुचल दिया।

ब्रिटिश राज्य के स्वतन्त्रता आन्दोलन का प्रभाव टिहरी की प्रजा पर भी पड़ रहा था। यहाँ लोग अपने नागरिक अधिकारों के लिये सजग होने लगे थे तथा शोषण के विरुद्ध सचेत हो गये। अत्यधिक मात्रा में विविध करों, नजराना की पद्धति, बड़ा-बेगार और प्रभु सेवा, सीमावर्ती कर-चौकियाँ, अधिकारियों के अत्याचार और

दुर्व्यवहार, रिश्वत और भ्रष्टाचार, राजा के दैवीय अधिकार आदि तत्त्व निरन्तर स्वतन्त्रताप्रिय नागरिकों के हृदयों में आक्रोश उत्पन्न कर रहे थे। उन्होंने इन अत्याचारों से छुटकारा पाने का निश्चय किया।

देहरादून में रहने वाले टिहरी के कुछ नागरिकों ने देहरादून में प्रजामण्डल की स्थापना की। इसमें राजा के शासन के अत्याचारों को दूर करने का आन्दोलन चलाने का निश्चय किया गया। इस आन्दोलन में देवसुमन का नाम महत्त्वपूर्ण है। वह परगना नरेन्द्र नगर की पट्टी बमूद के जॉल गाँव का रहने वाला था। गढ़वालियों ने मसूरी, लाहौर और दिल्ली में भी प्रजामण्डल की शाखायें खोलीं। देवसुमन का सम्बन्ध कांग्रेस तथा देश के दूसरे नेताओं से भी था। इस आन्दोलन को देख कर कीर्तिशाह ने कुछ सुधारात्मक कदम उठाये। उसने कान्स्टीट्यूएन्ट असेम्बली बनाई तथा प्रताप इण्टर कालेज में डिबेटिंग सोसाइटी बनाने की अनुमति दी। परन्तु इससे लोगों को सन्तोष नहीं हुआ। राज्य में प्रजामण्डल की गतिविधियों का विस्तार हुआ। राज्य के अनेक भागों में शैक्षणिक तथा सामाजिक संस्थायें बनीं। इनके जरिये से राजनीतिक आन्दोलन होते रहे।

१९४२ ई० के भारत-छोड़ो आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में प्रजामण्डल ने राजा से माँग की कि वह अंग्रेजों से सम्बन्ध तोड़ ले। परन्तु देवसुमन को ३१ आदमियों के साथ देवप्रयाग में पकड़ कर टिहरी जेल में बन्द कर दिया गया। जेल अधिकारियों के अमानवीय व्यवहार के कारण ३ मई १९४४ को श्री देवसुमन ने भूख हड़ताल प्रारम्भ कर दी। श्री देवसुमन को न्यूमोनिया हो गया तथा जेल में ही उसकी मृत्यु हो गई। अधिकारियों ने इसकी सूचना किसी को न देकर उसका शव गुप्त रूप से भागीरथी में बहा दिया।

श्री देवसुमन के इस बलिदान ने स्वतन्त्रता आन्दोलन की अग्नि में घी का कार्य किया। राजा के विरुद्ध क्रोध की लहर व्याप्त हो गई। राजा की पुलिस तथा निषेधाज्ञा होते हुए भी १९४६ ई० में श्री देवसुमन दिवस सारे राज्य में मनाया गया। राजा ने कुछ सुधार घोषित किये, परन्तु प्रजा में सन्तोष नहीं हुआ। बड़ा-बेगार, नजराना, पन्टोली, वन-कानून तथा अन्य ज्यादतियों के विरुद्ध भेजे गये डेपुटेशन को टिहरी पहुँचने से पहले ही कैद कर लिया गया। परन्तु जन-आन्दोलन रुका नहीं। राजा को प्रजामण्डल को कानूनी मान्यता देनी पड़ी। परन्तु उसने एक नई संस्था प्रजा हितकारिणी सभा की घोषणा भी की।

प्रजामण्डल ने मई १९४७ ई० में टिहरी में अधिवेशन करके प्रजा के प्रति उत्तरदायी सरकार की स्थापना की माँग की।

(ग) स्वतन्त्र भारत—

१५ अगस्त १९४७ ई० को अंग्रेज भारत को छोड़ कर चले गये तथा यह

देश स्वतन्त्र हो गया। राजा नरेन्द्रशाह ने सोचा कि वह अब पूर्ण स्वतन्त्र हो गया है। उसने प्रजामण्डल के अधिकारियों को कैद कर लिया। टिहरी में पूर्ण हड़ताल हुई। राजा ने इनको भारी जुर्माना करके मुक्त कर दिया।

राजा की ज्यादियों के विरुद्ध राज्य में अनेक स्थानों पर आन्दोलन हुए। चकलाना (नरेन्द्रनगर परगना) के लोगों ने **आलू-विक्रय** के राज्य के एकाधिकार के विरुद्ध विद्रोह किया। अनेक स्थानों पर—सकलाना, बडियारगढ़, कीर्तिनगर आदि स्थानों पर प्रजामण्डल ने राजकीय अधिकारियों को भगा कर या कैद करके सारे प्रशासन के अधिकार अपने हाथों में ले लिये। कीर्तिनगर से २०० सत्याग्रहियों का जत्था टिहरी की ओर चला। मार्ग में अनेक लोग इसमें सम्मिलित हुए। आन्दोलन में दो सत्याग्रही—नरेन्द्रदत्त सकलानी और मोहनसिंह मारे गये। हजारों लोग इनके शवों को लेकर टिहरी पहुँचे। यह मकर संक्रान्ति का दिन था। भिलंगना और भागीरथी के संगम पर हजारों लोग एकत्रित थे। यहाँ दोनों शहीदों का दाह-संस्कार हुआ। लोगों ने राजा के शासन को उखाड़ फैंकने की प्रतिज्ञा की। राजा किंकर्त्तव्य-विमूढ हो गया। प्रशासन पंगु हो गया। प्रजाजनों ने नगर में प्रवेश के मार्ग को बन्द कर दिया। लोगों ने रानी की अपील को नहीं सुना तथा नरेन्द्रशाह और उसके पुत्र को टिहरी में प्रवेश नहीं करने दिया।

अन्त में ६० वर्ष की आयु के राजा नरेन्द्रशाह ने अपने पुत्र मानवेन्द्रशाह के पक्ष में राजगद्दी से त्याग-पत्र दे दिया। १५ जनवरी १९४८ ई० को स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया। फरवरी १९४८ ई० में मानवेन्द्रशाह को संवैधानिक राजा मान कर संविधान परिषद् की स्थापना की गई। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा नियुक्त ज्योति प्रसाद के नेतृत्व में एक अन्तरिम मन्त्रिमण्डल बना। इस समय १९४९ ई० में एक कार दुर्घटना में राजा नरेन्द्रशाह की मृत्यु हो गई।

संवैधानिक राजतन्त्र और अन्तरिम मन्त्रिमण्डल का कार्य ३१ जुलाई १९४९ ई० तक चला। एक अगस्त १९४९ ई० को टिहरी राज्य का विलय उत्तर प्रदेश में हो गया। राज्य के विलीनीकरण के बाद इसको टिहरी गढ़वाल नाम से एक पृथक् जिला बना दिया गया। कुछ समय के बाद इसके दो भाग करके उत्तरी भाग में सीमान्त जिला उत्तरकाशी बना।

मानवेन्द्रशाह को राजा का पद छोड़ना पड़ा। उसके लिये तीन लाख रुपये की प्रतिवर्ष की प्रिवी पर्स तथा कुछ अन्य सम्बन्धियों के लिये कुछ भत्ते निर्धारित हुए। उसका टिहरी का महल राज्य सरकार ने ले लिया। नरेन्द्रनगर का प्रासाद उसको मिल गया। इस प्रकार गढ़वाल के इस अति प्राचीन और शक्तिशाली राजवंश की पूर्ण रूप से समाप्ति हो गई।

गढ़वाल अभी तक कुमायूँ कमिश्नरी के अन्तर्गत था। देहरादून जिला मेरठ कमिश्नरी में आता था। कमिश्नरियों तथा जिलों का पुनः संगठन किया गया। गढ़वाल को अलग कमिश्नरी बनाया गया। इस समय कमिश्नरी का सदर मुकाम पौड़ी है। इसमें पाँच जिले हैं—पौड़ी गढ़वाल, टिहरी गढ़वाल, उत्तरकाशी, चमोली और देहरादून।

गढ़वाल के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ना है। उत्तरप्रदेश के पर्वतीय जिलों—गढ़वाल और कुमायूँ के जिलों को मिला कर उत्तराखण्ड (उत्तरांचल) राज्य की रचना भारतीय संविधान के अन्तर्गत प्रस्तावित है। इसको उत्तरप्रदेश विधान सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। तथा इस प्रस्ताव को स्वीकृति के लिये केन्द्रीय सरकार को भेजा गया है।

—:०:—

द्वितीय खण्ड—अभिलेख अध्ययन

१. अभिलेख का अर्थ और उसके उपादान

अभिलेख का अर्थ है, किसी ऐसी वस्तु पर लेख को उत्कीर्ण कर देना, जो कि एक स्थायी रूप धारण कर ले। जिससे कि शताब्दियों तक उस पर हानिकारक प्रभाव न हो। प्राचीन समय में अभिलेखकारों ने जिन सामग्रियों पर अभिलेख लिखवाये थे, उनको दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) अधातु
(ख) धातु

अधातु अभिलेखों की सामग्री को पुनः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। एक तो वे पदार्थ हैं, जो स्वतः प्रकृति में उपलब्ध हो जाते हैं। इनकी सतह को साफ-सुथरा करके उस पर छैनी आदि औज़ार से अभिलेख उत्कीर्ण किया जाता है। जैसे कि शिलाओं पर ये लेख उत्कीर्ण किये जाते हैं। अशोक का कालसी का और ईश्वरा का लाखामण्डल का अभिलेख इसी कोटि के हैं।

दूसरे प्रकार से पदार्थ होते तो मनुष्य निर्मित हैं, परन्तु प्राकृतिक भी हैं। जैसे कि भित्तियों, स्तम्भों, मूर्तियों आदि के सतही पार्श्व। कालीमठ का अभिलेख मन्दिर की पाषाण-भित्ति पर है। तीसरे प्रकार के पदार्थ वे हैं, जिनको रूपान्तरित कर अभिलेख लिखे जाते हैं। जैसे कि ईंटें, मृण्मुद्रा आदि। शीलवर्मन् का इष्टिका-लेख इसी प्रकार का है।

अभिलेख लिखने के लिये विभिन्न धातुओं का उपयोग भी किया जाता रहा था। इनमें लोहफलक, ताम्रफलक, धातु की मूर्ति, घण्टा आदि लिये जा सकते हैं। कत्यूरी राजाओं के ताम्र शासन-अभिलेख, बाड़ाहाट का त्रिशूल अभिलेख आदि इसी वर्ग के अन्तर्गत हैं। कत्यूरी राजाओं ने अपने दान-अभिलेख ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण कराये थे। ताम्रपत्रों पर अभिलेख उत्कीर्ण कराने की परम्परा गुप्त युग में प्रारम्भ हुई थी। ये अभिलेख प्रायः दानपत्रों के रूप में हैं। गोपेश्वर और उत्तरकाशी (बाड़ाहाट) में त्रिशूल पर अभिलेख हैं। देवप्रयाग के रघुनाथ मन्दिर के घण्टे पर भी अभिलेख है। इस घण्टे को राजा सहजपाल ने मन्दिर के लिये अर्पित किया था।

२. अभिलेखों की शैली

प्राचीन अभिलेखों की शैली और सयोजन भिन्न-भिन्न प्रकार से है। कुछ अभिलेख अपने साहित्यिक सौष्ठव के लिये उल्लेखनीय हैं तो कुछ ऐतिहासिक महत्त्व

के दस्तावेज के रूप में महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं। कुछ अभिलेखों से नाममात्र का परिचय मिलता है। जैसे कि देवप्रयाग का यात्री नाम अभिलेख है। कुछ अभिलेख धार्मिक स्वरूप के हैं। इनका सम्बन्ध मन्दिरों के रखरखाव, व्यवस्था, निर्माण, मूर्ति-रचना, जलाशय-निर्माण और इनकी मरम्मत या पुनर्रचना से है। अन्य अभिलेखों की अपेक्षा शासकीय अभिलेख अधिक बड़े आकार के हैं। चाहे वे प्रशासनिक व्यवस्था से सम्बन्धित हों या प्रशस्ति के रूप में हों या स्मारक हों अथवा दानलेख हों। इनमें शासकों की वंश-परम्परा के साथ-साथ उनके महनीय कार्यों का भी विवरण रहता है। अनेक अभिलेखों में यह विवरण अतिरंजित रूप में है। अन्य अभिलेखों से भी हमको उस काल की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अवस्थाओं का कम–अधिक ज्ञान हो जाता है।

अभिलेखों की एक परम्परागत शैली है और शब्दावलि भी परम्परागत सी है। सामान्य रूप से अभिलेखों के प्रारम्भ में स्वस्ति, ओम्, सिद्धम् आदि पदों का प्रयोग हुआ है। डी. सी. सरकार ने त्रिरत्न, श्रीवत्स आदि चिह्नों का तथा वेष्टनी पर वृक्ष अथवा कुछ अन्य स्मारक चिह्नों का भी परिचय दिया है।

गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख प्रायः ब्राह्मी अथवा कुटिल (उत्तरी ब्राह्मी) लिपि में हैं। इनका अंकन काफी शुद्ध है। तथापि उनमें भाषा या वर्तनी या कुछ न कुछ अशुद्धियाँ मिल ही जाती हैं। इन अशुद्धियों का कारण लेखक का अज्ञान भी हो सकता है। टंकण करने वाले कारीगर की बुद्धि का असन्तुलन भी कारण हो सकता है। तथापि शब्दों के संयोजन को, संघटना को, अलंकारों के प्रयोग को, भाषा के सौष्ठव को और इसी प्रकार विविध तत्त्वों को देख कर व्याकरण आदि दोषों को लक्ष्य करके तत्कालीन भाषा के स्वरूप तथा प्रकृति का अनुमान लगाया ही जा सकता है। अनेक अभिलेखों में प्रशस्तिकार, काव्यकर्ता, लेखक, उत्कीर्णक आदि के नाम दिये गये हैं। सन्धिविग्राहिक या महासन्धिविग्रहाक्षपटलाधिकृत नामक अधिकारी ने अभिलेख को उपस्थित करने का कार्य किया है। अभिलेखों की पंक्तियों में विराम चिह्नों का प्रयोग भी प्रायः मिलता है।

अनेक अभिलेखों पर उनके रचयिता, लेखक, उत्कीर्णक तथा लिखवाने वाले अधिकारी के नाम दिये हुये हैं। ललितशूर के ताम्र-अभिलेखों पर लेखक का नाम आर्यवतु तथा उत्कीर्णक का नाम श्री गंगाभद्र उत्कीर्ण है। कुछ अभिलेखों पर विक्रम या शक संवत् का अथवा दोनों का उल्लेख है। अनेक अभिलेखों में वंश के राजा द्वारा प्रचारित संवत् का तत्कालीन राजा का विजयाब्द संवत् मिलता है। कुछ अभिलेखों में तिथि, मास, वार, पक्ष, घड़ी तथा विशेष ग्रहों की स्थिति तथा लिखने का स्थान भी उत्कीर्ण किया हुआ है।

३. भारतवर्ष में अभिलेखों का महत्त्व

मौर्य सम्राट् अशोक और महान् गुप्त नरेशों की परम्परा में अभिलेखों के उत्कीर्णन का कार्य अधिक हुआ था और उनका महत्त्व सुप्रचारित हुआ। अशोक और उसके वाद अभिलेखों को प्रचुर संख्या में लिखने की पद्धति खूब प्रचलित हुई। परन्तु भारतवर्ष की राजनीतिक स्थिति विसंगठित तथा अशान्त हो जाने के कारण इस ओर अधिक ध्यान भी नहीं दिया गया। भारतवर्ष में ब्रिटिश राज्य की स्थापना होने के समय तक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी कि अधिकांश प्राचीन अभिलेख उपेक्षित होकर अपाठ्य और रहस्यमय हो गये। कालसी की कालशिला पर उत्कीर्ण अभिलेख दर्शकों के लिये चित्रमात्र ही रह गये और यहाँ के निवासी इनको छत्रशिला या चित्रशिला कहने लगे। पाण्डुकेश्वर से प्राप्त ताम्र अभिलेखों को यहाँ के पण्डे पाण्डवों की पाटी कह कर अन्ध श्रद्धालु तीर्थयात्रियों से दक्षिणा वसूल करते थे।

उन्नीसवीं शताब्दी ईसवी में अभिलेखों की ओर तत्कालीन शासकों का ध्यान गया। कुछ अंग्रेज शासक विद्वान् और विद्यानुरागी थे। उन विद्वानों ने इनको पढ़ने का प्रयत्न किया और इनके ऐतिहासिक महत्त्व को समझा। जेम्स, प्रिन्सेप, कनिंघम, हुल्त्ज, फ्लीट, बर्गीज, कीलहार्न, बुह्लर, इलियट आदि विद्वान् अधिकारियों के अथक प्रयत्नों से भारतवर्ष में अभिलेखों का पढ़ा जाना सम्भव हुआ। आधुनिक पद्धति से अध्ययन करने वाले अनेक भारतीय विद्वानों ने भी इस ओर प्रयास किया। डी० आर० भण्डारकर, भगवानलाल इन्द्रा, डी० आर० बनर्जी, हरिप्रसाद शास्त्री, बी० विनायक, एन० डी० मजूमदार, एन० पी० चक्रवर्ती, डॉ० गॉड आदि के नाम इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय हैं।

४. अभिलेखों में उत्तराखण्ड और गढ़वाल

गढ़वाल के प्राचीन अभिलेखों में उत्तराखण्ड नाम नहीं है। १७ वीं शताब्दी के पूर्व के अभिलेखों में गढ़वाल नाम भी नहीं है[1]। इन प्राचीन अभिलेखों में जिन स्थानों, ग्रामों या जनपदों के नामों का उल्लेख है, उनमें स्रुघ्न, कर्तृपुर, कार्तिकेयपुर, पर्वताकर, हिमालय, हिमाचल, गंगास्रोत, खसदेश, कैलास, केदारभूमि आदि उल्लेखनीय हैं। तालेश्वर ताम्र-अभिलेखों में स्पष्ट रूप से पर्वताकर राज्य और ब्रह्मपुर राजधानी का उल्लेख हुआ है। प्राचीन समय में राज्य को राजधानी के नाम से भी कह दिया जाता था। अतः ह्वेन्त्साँग ने जिस ब्रह्मपुर का वर्णन किया है, वह पर्वताकर राज्य के लिये ही किया गया होगा। इस राज्य की राजधानी ब्रह्मपुर थी। इसी परम्परा के कारण मुस्लिम तथा यीरोपीय लेखकों ने गढ़वाल को

१. पृथिवीपतिशाह के हाटगाँव के ताम्रपत्र (गढ़वाली भाषा में उत्कीर्ण) में सर्वप्रथम गढ़वाल नाम का उल्लेख हुआ है।

श्रीनगर राज्य लिख दिया था। क्योंकि श्रीनगर गढ़वाल राज्य की राजधानी थी। गढ़वाल पद का इस राज्य के लिये प्रयोग बहुत बाद में हुआ। श्री गुप्ते ने गढ़वाल पद की उत्पत्ति पर्वताकर पद के समानार्थी गिरि + अवली = गिर्यावली पद से मानी है। अनेक विद्वान् ५२ गढ़ों के संगठन से इस प्रदेश का नाम गढ़वाल प्रसिद्ध होना मानते हैं। यह संगठन पंवार राजा अजयपाल ने किया था।

५. अभिलेखों के साक्ष्य पर गढ़वाल के इतिहास का अध्ययन

गढ़वाल में प्राप्त अभिलेखों में सबसे प्राचीन अभिलेख अशोक का शिला अभिलेख है। यह देहरादून जिले के कालसी स्थान के समीप प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख से ईसापूर्व तृतीय शताब्दी गढ़वाल के इतिहास पर प्रकाश पड़ना प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु साहित्यिक परम्पराओं में अशोक से पूर्व भी गढ़वाल के इतिहास के सम्बन्ध में कुछ तत्त्वों का बोध हो सकता है।

महाभारत काल से लेकर प्रथम शताब्दी ई० तक गढ़वाल में कुलिन्दों की सत्ता स्थापित होने के प्रमाण मिलते हैं। इनकी एक शाखा का राज्य स्रुघ्न जनपद में था। इसका विस्तार पश्चिम में वर्तमान अम्बाला जिले में गिरिनदी से लेकर पूर्व में गङ्गा नदी तक था। यह शाखा इसी नाम से प्रसिद्ध हुई। स्रुघ्न (सुघ गाँव) के समीप से लगभग १०० सिक्के मिले हैं, जिन पर कुणिन्द नरेश अमोघभूति का नाम अंकित है। प्रथम शताब्दी ई० तथा इसके बाद इस राज्य पर शकों और कुषाण आक्रमणकारियों का दबाव पड़ा होगा और वे और भी उत्तर में पर्वतीय दुर्गम इलाकों में पलायन कर गये। इसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में कुणिन्दों के राज्य का विस्तार हुआ।

गढ़वाल में प्राप्त अभिलेखों में कुलिन्दों, कुणिन्दों या पुलिन्दों के साथ टंगणों का भी काफी उल्लेख हुआ है। महाभारतकार इनको पर्वतवासी कहता है। कत्यूरी ताम्रपत्रों में टंकणपुर विजय का उल्लेख है। एटकिन्सन ने टंकणपुर की पहचान वर्तमान टंगणी से की है, जो जोशीमठ से पहले तथा पीपलकोटि से आगे एक प्रमुख चट्टी है।

कालसी के अशोक के शिलालेखों के उपलब्ध होने से इस पर्वतीय क्षेत्र में मौर्य साम्राज्य के विस्तार और बौद्ध धर्म के प्रसार के संकेत मिलते हैं। जगतग्राम में शीलवर्मन के इष्टिकालेखों से विदित होता है कि ईसा की दूसरी शताब्दी में यहाँ वर्मन् वंश का राज्य था और बौद्ध धर्म का प्रभाव समाप्त होकर यज्ञ प्रधान ब्राह्मण वैदिक धर्म का प्रसार हो गया था।

अभिलेखों में कार्तिकेयपुर का राजधानी के रूप में उल्लेख है। कार्तिकेयपुर की स्थिति पर इतिहासकारों के विभिन्न मत हैं। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में कामरूप और नेपाल के बाद कर्तृपुर का उल्लेख प्रत्यन्त राज्यों के रूप हुआ है। यह कथन गढ़वाल-कुमायूँ पर ही समुचित प्रतीत होता है। पाण्डुकेश्वर से प्राप्त

कत्यूरी ताम्र-अभिलेख कार्तिकेयपुर से ही प्रचारित हुये थे। निकटवर्ती क्षेत्रों के रूप में अभिलेखों में टंकणपुर, बदरिकाश्रम, योशिका, तपोवन, गरुडाश्रम, पलसरि और विष्णुगङ्गा के उल्लेख से इनकी स्थिति वर्तमान पैनखण्डा में प्रतीत होती है। लखनपालदेव के अभिलेख में वैद्यनाथ कार्तिकेयपुर का नाम आया है। इससे अनुमान किया गया है कि वर्तमान जोशीमठ के समीप राजधानी को छोड़कर उत्तरवर्ती कत्यूरी राजाओं ने वैजनाथ के समीप राजधानी बनाई थी और उसको वैद्यनाथ कार्तिकेयपुर नाम दिया था।

गोपेश्वर और बाड़ाहाट में गुह और अशोकचल्ल के अभिलेख मिले हैं, जो त्रिशूलों पर उत्कीर्ण हैं। इनसे विदित होता है कि यहाँ नाग जाति का राज्य था। सम्भवतः गुप्तों से पराजित होकर नाग राजा इस क्षेत्र में चले आये थे और यहाँ उन्होंने अपने राज्य की स्थापना की थी। दक्षिणी गढ़वाल में और मुख्य रूप से देहरादून जिले के समीपस्थ प्रदेशों में दास और यादव राजवंशों की सत्ता का अनुमान लगाया गया है। लाखामण्डल में मिले अभिलेखों मे इनकी सत्ता की कल्पना की जा सकती है।

हर्षवर्धन के समय में गढ़वाल सम्भाग सम्भवतः उसके साम्राज्य के अन्तर्गत था। 'हर्षचरित' में वर्णन है कि हर्ष ने हिमाच्छादित दुर्गम पर्वतीय प्रदेशों से कर लिया था। गौरीशंकर चटर्जी ने इससे अनुमान लगाया है कि यह हिमाच्छादित प्रदेश गढ़वाल ही था[1]। अतः यह प्रदेश हर्ष के साम्राज्य में सम्मिलित था। प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर यह भी अनुमान किया गया है कि यहाँ वर्मन वंशी शासकों या उपरिकों का राज्य था। अतः हम कल्पना कर सकते हैं कि हर्ष से पहले यहाँ मौखरियों का आधिपत्य रहा होगा। हर्ष ने पुनः अपनी राजसत्ता को सुदृढ़ किया होगा। हर्ष के बाद यहाँ छोटे-छोटे प्रान्तपतियों के स्वतन्त्र राज्य बन गये होंगे। यह एक प्रकार से अराजकता का ही युग हो गया था।

इस अराजकता का अन्त कत्यूरियों के सुदृढ़ शासन से ही हुआ। कत्यूरी वंश के पराक्रमी राजाओं ने इस प्रदेश को जीत कर कार्तिकेयपुर को राजधानी बनाया। शासन को सुव्यवस्थित करने के लिये राज्य के विभाग किये गये। इसको इन्होंने टंकणपुर, कार्तिकेयपुर, अन्तराग और ऐशाल, इन चार विभागों में विभाजित किया। यह व्यवस्था लगभग १० वीं शताब्दी ई० तक चलती रही। इन राजाओं के युग में शासन सुव्यवस्थित रहा, प्रजाजन समृद्ध रहे और धार्मिक जागरण रहा। इस अवधि में गढ़वाल में मन्दिरों और मूर्तियों का प्रचुर निर्माण हुआ। गढ़वाल के प्राचीन मन्दिर और मूर्तियाँ अधिकतर कत्यूरी युग के हैं। सम्भवतः शङ्कराचार्य भी कत्यूरियों के शासन काल में ही गढ़वाल में आये थे।

---

१. डा० गौरीशंकर चटर्जी : हर्षवर्धन पृ० १६१

परन्तु यह राजनीतिक स्थिरता अधिक समय तक बनी नहीं रही। या तो धार्मिक विवादों के कारण या तिब्बती लुटेरों के आक्रमणों के कारण अथवा हिमानियों के स्खलन के कारण कत्यूरियों को अपनी राजधानी कार्तिकेयपुर (जोशीमठ) को छोड़ना पड़ा। वे इसको बैजनाथ के समीप (बैद्यनाथ कार्तिकेयपुर) ले गये। इससे उनके राज्य का केन्द्रीय स्वरूप बदल गया। उनकी सैनिक शक्ति भी क्षीण हुई। कुछ ही समय बाद नेपाली आक्रमण (अशोकचल्ल और क्राचल्लदेव) ने सारे गढ़वाल को आक्रान्त कर लिया। नेपालियों की विजय भी स्थायी नहीं रह सकी। शीघ्र ही सारे गढ़वाल में छोटे-छोटे राज्य (ठकुराइयाँ) बन गये तथा इसके ५२ गढ़ प्रसिद्ध हो गये।

प्रथम नेपाली विजेता अशोकचल्ल था। परन्तु कुछ इतिहासकारों ने उसका नाम अनेकमल्ल पढ़ा है। यह एक विवाद का विषय हो गया है कि उसका नाम अशोकचल्ल है या अनेकमल्ल है। राहुल जी तथा उनके साथ एक मत रखने वाले विद्वानों ने इसको अशोकचल्ल ही कहा है। बोधगया के अभिलेखों में इस नेपाली राजा को अशोकचल्ल ही कहा गया है। यह सपादलक्ष-शिखरि खस देश का अधिराज था।

अशोकचल्ल और क्राचल्लदेव के आक्रमणों के बाद १२–१३ वीं शताब्दी ई० में गढ़वाल में कोई केन्द्रीय शासन नहीं रहा। एक प्रकार की अराजकता सी फैल गई। परस्पर युद्धरत छोटे-छोटे गढ़पति हो गये, जो सामूहिक गौरव को बनाने की अपेक्षा अपने ही अभिमान में पड़ौसी गढ़पति को नीचा दिखाने में तत्पर रहते थे। परम्पराओं के अनुसार इन गढ़पतियों की संख्या ५२ थी। अजयपाल के पूर्वज पंवार वंशी राजा भी छोटे गढ़पति ही रहे थे। इनका शासन चाँदपुरगढ़ी के समीपवर्ती प्रदेशों तक ही सीमित रहा होगा। गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख प्रायः पंवार वंशी राजाओं के पूर्व के ही हैं। ये अभिलेख प्रायः संस्कृत में हैं, केवल मौर्य सम्राट् अशोक का एक अभिलेख प्राकृत भाषा में है, जो ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी का है।

६. अभिलेखों की विषयवस्तु

गढ़वाल के प्राचीन अभिलेखों से हमको तत्कालीन विविध स्थितियों का बोध होता है। इनसे अनेक राजवंशों और उनमें उत्पन्न होने वाले नरेशों का परिचय तो मिलता ही है, साथ में उनके कार्यकाल, प्रशासन की पद्धति, आर्थिक दशा, धार्मिक अवस्था और सामाजिक परम्पराओं का ज्ञान भी प्राप्त होता है। भाषा और लिपि के अतिरिक्त अन्य सभी दृष्टियों से इनको तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) ऐतिहासिक भूगोल
(ख) सांस्कृतिक भूगोल
(ग) नृवंशीय अध्ययन

(क) ऐतिहासिक भूगोल—

तत्कालीन प्रशासनिक इकाइयों तथा उनकी भौगोलिक सीमाओं के विस्तार की पहचान करना ही ऐतिहासिक भूगोल है। किसी भी राज्य की सीमाओं तथा प्रशासनिक इकाइयों की संरचना का आधार अधिक स्वाभाविक रूप से ऊँची पर्वत-श्रेणियाँ, उत्तुंग शिखर, गहरी घाटियाँ तथा वेगवती नदियाँ हैं। किसी क्षेत्र विशेष के नामकरण पर भी भौगोलिक प्रभाव होता है। जैसे कि अन्तराग विषय और पर्वताकर राज्य हैं।

कुलिन्द जनपद और राज्य का बोध केवल साहित्यिक स्रोतों से होता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में तथा इसकी व्याख्याओं में कुलिन्द राज्य का विवरण है। 'महाभारत' में भी इस राज्य का उल्लेख है। इस राज्य का विस्तार उत्तर में कलिन्द पर्वत (बन्दरपूँछ पर्वत-श्रेणी) से लेकर दक्षिण में शिवालक पर्वत-श्रेणियों तक था। पश्चिम में यह राज्य व्यास-सतलज नदियों से लेकर पूर्व में कालीगंगा तक विस्तृत था। इसके अन्तर्गत वर्तमान हिमाचल प्रदेश का पूर्वी भाग, गढ़वाल और कुमायूँ आ जाते हैं। टालेमी ने कुलिन्द्राइन जनपद का विस्तार (कुलिन्द जनपद) सतलज-गंगा-यमुना की पर्वतीय उपत्यकाओं में कहा है[1]।

कालसी के शिलालेखों से स्पष्ट है कि अशोक के समय में यहाँ के निवासियों को पुलिन्द कहते थे। इस क्षेत्र को अपरान्त कहा जाता था। इस अभिलेख में कहा गया है कि यवनों के अतिरिक्त कोई ऐसा जनपद नहीं है, जहाँ ब्राह्मण और श्रमण निवास न करते हों। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता ह० वि० सांकलिया ने अनुमान किया है कि अशोक के शिलालेखों में जिन सीमावर्ती राज्यों के नाम लिखे गये हैं, उनके अतिरिक्त अन्य राज्य या तो करद थे या अधीनस्थ मण्डल थे अथवा राष्ट्र थे। कालसी के शिलालेखों से यह स्पष्ट है कि कम से कम दक्षिणी गढ़वाल उसके साम्राज्य के अन्तर्गत था। इसके साथ ही बौद्धाचल (बधाण) तक बौद्ध धर्म का प्रसार था। यहाँ बौद्ध भिक्षुओं का आवागमन था। अतः उत्तरी गढ़वाल में भी उसके साम्राज्य का निश्चित रूप से विस्तार था।

कौटिल्य का कथन है कि मण्डल पद का अभिप्राय सीमान्त प्रदेशों के करद राज्यों से है। मौर्य साम्राज्य में यही स्थिति रही होगी। पैनखण्डा, मण्डल, लाखामण्डल, डांडामण्डल, केदारमण्डल आदि पद वर्तमान समय में भी प्रचलित हैं। ये उत्तरी सीमान्त पर हैं। वर्तमान समय में भी प्रचलित ये पद प्राचीन समय के प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। सामन्त पुरुषोत्तम के शासन में कमामण्डल का उल्लेख है[2]। यह वर्तमान कुमायूँ ही रहा होगा।

---

१. मोतीचन्द : ज्योग्राफिकल एण्ड एकोनोमिकल स्टडीज इन दी महाभारत पृ० ७७।
२. इण्डियन एन्टीक्वेरी जि० १०, पृ० ७१।

गुप्त काल में राष्ट्र पद का उदय हुआ और यह खूब प्रचलित हुआ। जनपद का ही एक परिष्कृत रूप राष्ट्र पद था। राष्ट्र के निवासी राष्ट्रिय कहलाते थे। राठ पद राष्ट्र का ही अपभ्रंश है। गढ़वाल का राठ क्षेत्र ताम्बे और लोहे की खानों के लिये प्रसिद्ध रहा। यह भांग के रेशों से बुने वस्त्रों के लिये भी बहुत प्रसिद्ध रहा। राठ क्षेत्र के निवासियों को राठी कहा गया था। प्राचीन समय में जबकि यह राष्ट्र कहलाता था, इसका क्षेत्र अधिक विस्तृत रहा होगा।

(१) परगना और पट्टी—

गढ़वाल की प्रशासनिक इकाइयों में परगना और पट्टी पदों का प्रयोग बहुत अधिक है। सांकलिया का कथन है कि ग्रामों के समूह को परगना कहते थे। भारतवर्ष में साम्राज्यों के युग से भी पहले ये पद प्रचलित थे। परगना से छोटी इकाई पट्टी या पट्टिका है। गुजरात में इसको पथक कहते हैं। कर्दमवंशी भानुवर्मा के शासनपत्र में पाटि शब्द का प्रयोग हुआ है। भूमि के एक टुकड़े के लिये यह (कर्दमपट्याम्) पद प्रयुक्त हुआ है।

(२) ग्राम और पल्लिका—

गढ़वाल के प्राचीन अभिलेखों में ग्राम एवं पल्लिका या पल्ली पदों का प्रयोग अनेक बार हुआ है, जो किसी पद के साथ उतरपद है। तालेश्वर और पाण्डुकेश्वर ताम्र-अभिलेखों में १५ बार ग्राम और ३१ बार पल्लिका उत्तरपद में हैं। पल्लिका से अभिप्राय छोटे ग्राम से है। भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों में, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश कीं वन्य जातियों के क्षेत्रों में पल्ली का अभिप्राय छोटा ग्राम है। पल्लिकाओं के नामों में, पूर्व पदों का प्रयोग उनके आकार, गुण, विश्वास आदि की विशेषताओं को प्रकट करते हैं। यथा—भूतपल्लिका, वृद्धपल्लिका, सुवर्णकारपल्लिका, जयभट्टपल्लिका, वाटकपल्ली आदि। जातिवाचक पदों का भी प्रयोग हुआ है। यथा—खसियासपरिभुज्यमानपल्लिका आदि। वर्तमान समय में गढ़वाल में जो पल्ली, पाली, सतपाली, बड़पाली, भरपाली आदि नामों वाले ग्राम मिलते हैं, ये पद पल्लिका पद से ही बने।

ग्रामों के नामों में भी इसी प्रकार की विशेषतायें हैं। जैसे—द्रुमतीप्रतिबद्ध, योशिप्रतिबद्ध, काकस्थलीग्राम, तन्तुजालध्वंसकग्राम आदि। ग्राम पद का ही अपभ्रंश है—गौं। वर्तमान समय में गढ़वाल के अनेक ग्रामों के नाम इसी पद्धति पर हैं। जैसे—भलगाँव, भजगौं, कुडिगौं, नौगौं, चड़िगौं, नौटियालगाँव, बेड़गाँव, बणगों आदि। ताम्र-अभिलेखों में जिन गाँवों का उल्लेख है—उनमें से अनेक गाँव आज भी उसी रूप में या तत्सम रूप में पुकारे जाते हैं। ताम्र अभिलेखों में दिये गये ग्राम नामों की कुछ पहचान उन्हीं के तत्सम वर्तमान नामों से इस प्रकार की जा सकती है[1]—

१. डा० शिवप्रसाद नैथानी के शोध प्रबन्ध से।

ज्योराणायाम	—	ज्यूराण
पलसरि	—	पलसरि
कोल्लपुरी	—	कोलपुरी
खरक	—	खरक
कर्कोटक	—	कुरकुटी
उष्ट्रामलक	—	ऊँटाधुरा
गक्षीकरण	—	गौख
गोमतीसारी	—	मोतीस्वारी
चम्पकतोली	—	चमतोली
चन्दुलाकपल्लिका	—	चौंकड़पाली
चोरकटक	—	चोरकटी
टंकणपुर	—	टंगणी
दाडिमिका	—	दाडिमी
दूर्वाषण्डक	—	दुरवसा
देवक्यतोली	—	दयोताली
नरक	—	नरख
निम्बसारी	—	निमसारी
बुरांसिका	—	बुरांसी
भेलमात्रक	—	भेलमुंडी
बदरिकाश्रम	—	बदरीनाथ
स्वर्णकारपल्लिका	—	सुनारगाँव

(३) भूमि और अन्न-माप सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द—

अभिलेखों में भूमि और अन्न के मापसम्बधी अनेक पारिभाषिक पदों का प्रयोग किया गया है । इससे उस युग की एतद् विषयक जानकारी मिलती है । अन्नों के मापम्म्बन्धी पद हैं—वाप, आढवाप, द्रोणवाप, कुल्यवाप, खारिवाप आदि । गढ़वाल में दून (द्रोण) माप सम्वन्धी पद का प्रयोग वर्तमान समय में भी अन्दरूनी गाँवों में जाता है ।

भूमि के माप सम्बन्धी पदों का प्रयोग भी अभिलेखों में हुआ है । भूमि सम्बन्धी अनेक पद इन अभिलेखों में हैं । यथा—क्षेत्र, स्थान, भू, भूमि, भूखण्ड, जंगल, तोली, शैली, भेल, सारी आदि । सिंचित भूमि को केदार कहा गया है । आज भी यह नाम प्रचलित है । दान दी गई भूमि के लिये दो नाम आये हैं—अग्रहार भूमि और ब्रह्मदेय भूमि ।

(४) पुर-नाम—

अभिलेखों में अनेक पुरों के नाम उल्लिखित हैं । सम्भवतः ये उस युग की

नगरीय बस्तियाँ रही होंगी। प्रमुख नाम हैं— ब्रह्मपुर, कार्तिकेयपुर, सुभिक्षपुर, टंकण पुर, त्र्यम्बपुर, हर्षपुर, सिंहपुर तथा देवपुर। पाणिनि का कथन है कि नगर की सूचना देने के लिये अन्त में पुर लगाया जाता है[1]। ब्रह्मपुर कार्तिकेयपुर, सुभिक्षपुर और सिंहपुर राज्यों के केन्द्र-स्थान थे। अतः इनकी स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना रोचक होगा। इनमें देवपुर और त्र्यम्बपुर तीर्थ स्थान प्रतीत होते हैं। हर्षपुर सम्भवतः स्मारक नाम था, जो हर्ष की स्मृति में बसा होगा। इसकी यथार्थ स्थिति का बोध नहीं होता। सम्भवतः यह देवप्रयाग के समीप अलकनन्दा की उपत्यका में रहा होगा।

इस स्थल पर अभिलेखों में उल्लिखित प्रमुख प्राचीन नगरों का संक्षिप्त विवरण देना समुचित होगा—

(१) ब्रह्मपुर—

तालेश्वर ताम्र-शासन-पत्रों को ब्रह्मपुर से लिया गया था। प्रतीत होता है कि जनपद का नाम ब्रह्मपुर था और उसकी राजधानी भी ब्रह्मपुर थी। द्युतिवर्मन् और विष्णु-वर्मन् के समय ब्रह्मपुर ही राजधानी रही थी। 'मार्कण्डेय पुराण' और 'बृहत्संहिता' में जिस ब्रह्मपुर का उल्लेख है[2], वह गढ़वाल की भौगोलिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में ठीक नहीं उतरता। ह्वेन्त्सांग ने ब्रह्मपुर (पो-लो-कि-मो-पौ-लो) को ६६६ मील (४०६० ली) परिधि का पर्वतों से घिरा बताया है। राजधानी का विस्तार ५० मील (३०० ली) है। ठण्डी जल-वायु, कुछ असभ्य आचरण और व्यापार यहाँ की विशेषतायें हैं। बौद्ध और ब्राह्मण यहाँ दोनों निवास करते है। शासिका स्त्री है। लोग भेड़ और टट्टू पालते हैं। तालेश्वर स्थान से जो दो ताम्र-अभिलेख मिले है, उनमें पर्वताकर राज्य का उल्लेख है, जिसकी राजधानी ब्रह्मपुर है। इन वर्णनों से यही प्रतिपादित होता है कि ब्रह्मपुर की स्थिति तालेश्वर के समीप पर्वतों के मध्य रही होगी।

कनिंघम ने अलकनन्दा और करनाली नदियों के मध्यवर्ती पर्वतीय प्रदेश को, जिसमें गढ़वाल और कुमायूं दोनों के क्षेत्र सम्मिलित थे, ब्रह्मपुर कहा है[3]। डा० यशवन्तसिंह कठोच ने ब्रह्मपुर के सम्बन्ध में आठ मतों को तो उद्धृत किया है, परन्तु उनको प्रायः अग्राह्य ही माना है[4]। चौथानपट्टी में बिनसर (वीरणेश्वर) के समीप एक विनष्ट बस्ती के अवशेष मिले हैं। इसको ब्रह्मपुर मानने के पक्ष में कुछ सबल प्रमाण हैं।

(२) कार्तिकेयपुर—

ललितशूर और पद्मटदेव के ताम्र-शासन-अभिलेख कार्तिकेयपुर से लिखे गये

---

१. वासुदेवशरण अग्रवाल : इण्डिया एज नोन टु पाणिनि पृ० १३६
२. बृहत्संहिता ४.३०
३. कनिंघम : एन्शिएन्ट ज्योग्राफी आफ इण्डिया पृ० ४०७
४. मध्य हिमालय का पुरातत्व–यशवन्तसिंह कठोच–पृ० १३४

थे। कत्यूर राजाओं का यह नगर राजधानी रहा था। कार्तिकेयपुर के लिये कर्तृपुर और कार्तिकेयनगर पद भी प्राचीन साहित्य में व्यवहृत हुये हैं। तालेश्वर अभिलेखों में कार्तिकेयपुर को ब्रह्मपुर राज्य के अन्तर्गत कहा गया है। कत्यूर राजाओं की राजधानी जोशीमठ के निकट ही थी, यह इतिहासविदों ने प्रमाणित किया [1]। परन्तु एटकिन्सन ने अलमोड़ा जनपद की गोमती घाटी में बैजनाथ के समीप कार्तिकेयपुर की स्थिति मान कर भ्रान्ति उत्पन्न कर दी [2]।

कार्तिकेयपुर से निर्गत ताम्र-अभिलेखों में जिन स्थानों का विवरण है, वे जोशीमठ के निकट हैं। वे अलकनन्दा और मन्दाकिनी की उपत्यका में हैं। इनमें गाँव तो अब भी बदरीनाथ मन्दिर की गूंठ में हैं। अभिलेखों में वर्णित योशि या योशिका (जोशीमठ) को कार्तिकेयपुर के समीप ही होना चाहिये।

डा० यशवन्तसिंह कठोच ने सम्भावना प्रकट की है कि समय के फेर से उत्तरवर्ती कत्यूर राजाओं को, गोमती घाटी में संक्रमित होना पड़ा। लखनपालदेव (१०६७ ई०) और त्रिभुवनपालदेव के बैजनाथ अभिलेखों में वैद्यनाथ कार्तिकेयपुर पद आया है। उस समय यहाँ इन राजाओं ने प्राचीन नगर करवीरपुर के अवशेष पर अपनी राजधानी बनाई तथा पुरानी स्मृति के मोहवश इसका नाम भी कार्तिकेयपुर रखा [3]।

(३) सुभिक्षपुर—

सुभिक्षपुर के ताम्र-अभिलेख में उसकी राजधानी सुभिक्षपुर कही गई है। विद्वानों का अनुमान है कि सुभिक्षराज ने सम्भवतः कार्तिकेयपुर का नाम ही अपने नाम पर सुभिक्षपुर रखा होगा। अथवा पुराने नगर के समीप एक नई आबादी बसा कर उसका नाम सुभिक्षपुर रख दिया होगा। यह कार्तिकेयपुर का ही एक उपनगर रहा होगा। जोशीमठ तहसील में तपोवन के समीप सुभाई (सुभैं) की पहचान सुभिक्षपुर से की गई है।

(४) करवीरपुर (करवीरगर्ता)—

तालेश्वर अभिलेख में करवीरगर्ता पद का प्रयोग करवीरपुर के लिये ही हुआ है। 'महाभारत' में हिमालय के तीर्थों में करवीरपुर का उल्लेख ही हुआ है [3]। यह गोमती घाटी में है। उत्तरवर्ती कत्यूर राजाओं ने बसी के अवशेषों पर नया कार्तिकेयपुर बसाया था।

(५) केदारभूमि—

सम्पूर्ण गढ़वाल का प्राचीन नाम केदारखण्ड या केदारभूमि है। इसकी सीमा

---

१. ओकले : होली हिमालय

२. (क) राहुल सांकृत्यायन : हिमालयन परिचय (१) पृ० ५४, १०८

(ख) डबराल : उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग ३, पृ० २८५, ४४८

३. यशवन्तसिंह कठोच : मध्य हिमालय का पुरातत्व पृ० १२८

उत्तर में श्वेत पर्वत से दक्षिण में गंगाद्वार तक तथा पश्चिम में तमसा से लेकर पूर्व में बौद्धाचल तक हैं। केदार खण्ड में शिव की प्रधानता होने से इसको केदारभूमि कहा गया था। अशोकचल्ल ने केदारभूमि को विजय किया था।

(६) टंकणपुर विषय—

पद्मटदेव और सुभिक्षराज के ताम्र-अभिलेखों में टंकणपुर (टङ्गणपुर या तङ्गणपुर) का उल्लेख है। 'महाभारत' के अनुसार तंगण लोग किरातों के साथ सुबाहु के देश में निवास करते थे[1]। टंकणपुर विषय कत्यूरी राजाओं के अधीन भागीरथी-अलकनन्दा संगम से ऊपर के प्रदेश में था[2]। चमोली से ऊपर पीपलकोटि से आगे ३ किमी दूर एक चट्टी का नाम अब टंगणी है।

(७) द्रोणीघाट—

गङ्गाद्वार से उत्तर और पश्चिम की घाटी, जो शिवालक पर्वत और मध्य हिमालय के बीच में है, द्रोणीघाट या द्रोणीघाटी है। ऋषिकेश, देहरादून आदि नगर इसी घाटी में हैं। भद्रमित्र की रक्षक चौकी द्रोणीघाट के उस स्थान पर थी, जहाँ अब वीरभद्रेश्वर मन्दिर है। इस स्थान पर गङ्गा नदी पर बाँध बना कर विद्युत् उत्पादन के लिये नहर निकाली गई है।

(८) बदरिकाश्रम—

गढ़वाल का यह प्रसिद्ध धाम है। यह भारतवर्ष के चार प्रसिद्ध तीर्थों, धामों-जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्, द्वारका और बदरिकाश्रम में से एक है। इससे कुछ ऊपर माणा (मणिभद्रपुर) में विष्णुगङ्गा (अलकनन्दा) और सरस्वती का सङ्गम है। इसको केशवप्रयाग कहते हैं। बदरिकाश्रम के एक ओर नर तथा दूसरी ओर नारायण पर्वत हैं।

(९) युगशैल—

युगशैल के राजा शीलवर्मन् ने तीसरी शताब्दी ई० में अश्वमेध यज्ञ किया था। यज्ञवेदी के अवशेष कालसी के समीप जगतग्राम (गढ़वाल) में मिले हैं। युगशैल जनपदवाची था, जिसका विस्तार वर्तमान देहरादून जनपद में यमुना के दोनों ओर था। राहुल जी का मत है कि यज्ञस्थल के समीप के पर्वतीय स्थान का नाम युगशैल था। शीलवर्मन् उसका महीपति था।[3]

---

१. महाभारत—वनपर्व १४०·२५

२. हिमालयन गजेटियर भाग २ (१) पृ० ३५७, ३८४

३. राहुल : जीवनयात्रा (५) पृ० ४१३-४१४

(१०) योशि (योशिका)—

वर्तमान जोशीमठ का नाम ही प्राचीन समय में योशि और योशिका था। यहीं शङ्कराचार्य ने समाधि लगाई थी और अपना मठ स्थापित किया था। बदरीनाथ की बहियों में इस स्थान का नाम जोशी है। शङ्कराचार्य के मठ के कारण यह जोशी मठ कहलाया।

(११) वीरणेश्वर—

ब्रह्मपुर के कत्यूर राजाओं के इष्टदेव और कुलदेवता वीरणेश्वर थे। उनका मन्दिर वीरणेश्वर महादेव कहलाया। यह स्थान वर्तमान समय में बिनसर नाम से प्रसिद्ध है। यह पट्टी चौथान में दूधा तोली पर्वतमाला में विद्यमान है। इसके चारों ओर देवदारु वृक्षों का सघन वन है। यहाँ अनेक प्राचीन मन्दिरों के खण्डहर अवशेष हैं।

(१२) स्रुघ्न—

प्राचीन साहित्य के अनुसार स्रुघ्न समृद्ध जनपद और नगर था। ह्वेन्त्सांग ने इसका विशद वर्णन किया है। उस समय यह बहुत कुछ ध्वस्त हो चुका था। वह स्थाण्वीश्वर (थानेसर) से ४०० मील पैदल चल कर यहाँ पहुँचा था। चीनी यात्री के विवरण के आधार पर कनिंघम का मत है कि यह राज्य पश्चिम में गिरि नदी से लेकर पूर्व में गङ्गा तक विस्तृत था। इसमें वर्तमान अम्बाला, सहानपुर जनपदों के कुछ भाग, सिरमौर के पर्वतीय क्षेत्र और गढ़वाल सम्मिलित थे।[१] यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार था और भगवान् बुद्ध यहाँ पहुँचे थे।[२] कनिंघम के अनुसार वर्तमान सुघ ग्राम ही प्राचीन समय में वैभवशाली स्रुघ्न नगर था। कुछ विद्वान् गिरि नदी और यमुना के संगम पर अवस्थित सिंहपुर को स्रुघ्न मानते हैं।[३]

(१३) सपादलक्ष—

बोध गया के एक अभिलेख के अनुसार अशोकचल्ल को सपादलक्षशिखरिखसदेश का राजाधिराज कहा गया है। उसने बोध गया में नये विहार बनवाये थे।

(१४) सैंहपुर—

ईश्वरा के लाखामण्डल के अभिलेख के अनुसार उसके पिता भास्करवर्मन् सैंहपुर के राजा थे। सैंहपुर की स्थिति की पहचान के लिये ईश्वरा के श्वसुर के जलन्धर राज्य, पितृकुल के सैंहपुर राज्य और उसके द्वारा निर्मित भवमन्दिर (लाखेश्वर) की स्थिति को ध्यान में रखना चाहिये। विधवा होने के बाद वह पिता

---

१. एन्शिपन्ट ज्योग्राफी आफ इण्डिया। पृ० ३६५
२. मध्य हिमालय का पुरातत्त्व। पृ० १३७
३. उत्तराखण्ड का इतिहास भाग १ पृ० २११

के घर रहने लगी होगी। उसने मन्दिर के अभिलेख में पितृकुल का ही वर्णन किया है। डबराल के अनुसार स्रुघ्न नगर ही सैंहपुर था। यह अब सिंहपुर के नाम से जाना जाता है। 'महाभारत' के अनुसार राजसूय यज्ञ के प्रसङ्ग में अर्जुन ने सिंहपुर को विजय किया था।[१]

(क) अभिलेखों में पदाधिकारी नाम—

गढ़वाल के प्राचीन अभिलेखों में अनेक पदाधिकारियों के नाम उल्लिखित हैं। इनसे एक ओर जहाँ उस युग के राजनीतिक प्रशासन का बोध होता है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक तथा धार्मिक परम्पराओं का ज्ञान भी, प्राप्त होता है। राहुल सांकृत्यायन ने अनेक पदाधिकारियों के विवरण देने का प्रयत्न किया है।[२] कुछ पदाधिकारियों के पद और कर्तव्यों का स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

(१) अक्षपटलिक—

कार्यालय का प्रधान अधिकारी अक्षपटलिक कहलाता था।

(२) अग्निस्वामिन्—

अग्निस्वामिन् अधिकारी के कर्तव्यों का ठीक निर्धारण करना कठिन है। इसके तीन अभिप्राय हो सकते हैं—

(अ) अग्निस्वामिन् एक वन्य अधिकारी था। वनों में आग लग जाने पर वह उनके शमन की व्यवस्था करता था। ग्रीष्म ऋतु में तेज गरमी पड़ने पर पर्वतीय वनों में आग लग जाने की घटनायें अब भी देखी जाती हैं। अग्निस्वामिन् अधिकारी के पास अग्निशमन दल रहता था।

(ब) नगरों में भवनों और बाजारों में आग लग जाने पर उसके शमन की व्यवस्था अग्निस्वामिन् द्वारा की जाती थी।

(स) प्राचीन समय में यज्ञों की व्यापक परम्परा थी। विशिष्ट पवित्र तीर्थों पर निरन्तर अग्नि के जलते रहने की व्यवस्था की जाती थी। वर्तमान समय में भी त्रियुगीनारायण, बदरीनाथ, केदारनाथ आदि स्थानों पर निरन्तर अग्नि के जलते रहने की व्यवस्था है। इसके लिये या तो स्थानीय ग्राम में किसी को राजकीय वृत्ति देकर नियुक्त कर दिया जाता था कि वह अग्नि जलाये रखने के लिये समिधाओं और सामग्री की सदा व्यवस्था करता रहे अथवा किसी विशेष राजकीय अधिकारी को इस कार्य का प्रबन्ध सौंपा जाता था। इस पद को अग्निस्वामिन् कहा गया होगा।

(३) अष्टादशप्रत्याधिष्ठानीय—

गढ़वाल अति प्राचीन काल से तीर्थों का क्षेत्र रहा है। भारतवर्ष के विभिन्न

---

१. महाभारत–सभा पर्व २७.२०

२. हिमालय परिचय (१) पृ० ८८-९०

भागों से तीर्थयात्री यहाँ आते थे। उनके प्रबन्ध के व्यय को उन्हीं से लेने की व्यवस्था की गई थी। इससे यात्रा-पथों की मरम्मत होती थी और सुविधायें यात्रियों को दी जाती थीं। अतः इन पर १८ प्रकार के कर लगाये गये थे। करों के निर्धारण और वसूली का कार्य अष्टादशप्रत्याधिष्ठानीय अधिकारी करता था।

(४) उपरिक—

उपरिक एक महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता था। इसका मुख्य कार्य प्रशासनिक ही था। अभिलेखों से यह स्पष्ट नहीं होता कि गढ़वाल के राजकीय पदाधिकारियों में उपरिक का क्या कार्य था। तथापि गुप्तों के काल में उपरिक को भुक्ति का शासक माना गया है। सम्भवतः वह वर्तमान समय के मण्डलाधीश (कमिश्नर) के समान होता होगा।

(५) कटुक—

कटुक पद का प्रयोग दंडपाशिक और विषयपति के मध्य में हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि यह भी महत्त्वपूर्ण पद रहा होगा। इसकी ठीक ठीक व्याख्या करना सम्भव नहीं हो रहा। तथापि बाण ने हाथियों की देखभाल करने वाले अधिकारी को कटुक कहा है।

(६) कर्णिक—

कर्णिक का अभिप्राय लिपिक से है। विविध कार्यालयों में कर्णिकों (लिपिकों) की नियुक्तियाँ होती थीं। ये राजकीय आदेशों और दस्तावेजों को सुरक्षित रखते थे।

(७) कारङ्गिककोट—

कारङ्गिककोट नामक अधिकारी का कार्य था कि वह राजकीय आदेशों को सम्बद्ध अधिकारियों तक पहुँचा दे। सम्भवतः कारिन्दा पद इसी का अपभ्रंश है।

(८) काराडपति (कारापति)—

कारागार (जेलखाना) के अध्यक्ष को काराडपति या कारापति कहा गया। इस शब्द की व्युत्पत्ति है—कारे अटति तस्य पतिः।

(९) कारिक—

कारिकपद का अर्थ है—कारीगर। राजकीय निर्माणों की देखभाल करने वाले अधिकारी को कारिक कहते थे। यह वर्तमान समय के इन्जीनियर के समान है।

(१०) किशोरबड-वा-गो-महिष्यधिकृत—

गढ़वाल के दुर्गम पर्वतीय प्रदेश होने के कारण मार्गों पर सवारी की व्यवस्था का होना अत्यावश्यक था। राजकीय कर्मचारियों को शासन का प्रबन्ध करने के लिये भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की आवश्यकता रहती थी। उनके वाहन का

तथा सामान को ढोने का प्रबन्ध करना इस अधिकारी का कार्य था। गढ़वाल में पहले बेगार प्रथा थी। इसमें सामान ढोने के लिये कुली के रूप में लोगों को पकड़ लिया जाता था। खच्चर-घोड़ों का प्रबन्ध भी किया जाता था। इनकी अलग से एजेन्सी होती थी। यह प्रथा बहुत कुछ ब्रिटिश राज्य में भी चलती रही। किशोर-बड़वा-गो-महिष्यधिकृत नाम का अधिकारी इस सब प्रबन्ध को करता था।

(११) कुलचारिक—

कुलचारिक और पट्टकापचारिक पद परस्पर सम्बद्ध प्रतीत होते हैं। अनेक पट्टकापचारिकों का अधीक्षक कुलचारिक था। यह वर्तमान समय के तहसीलदार के समान रहा होगा।

(१२) कोट्टपाल—

सीमान्तों पर सुरक्षा के लिये जो चौकियाँ बनाई जाती थीं, उनको कोट्ट कहते थे। इनकी सुरक्षा के लिये कोट्टपालों की नियुक्ति की जाती थी। गढ़वाल के अनेक गढ़ प्राचीन समय में बहुत शक्तिशाली रहे थे।

(१३) क्षेत्रपाल—

गढ़वाल के पदाधिकारियों में क्षेत्रपाल का बहुत महत्त्व रहा था। सम्भवतः वह विषयपति के अन्तर्गत स्थानीय अधिकारी होता था। प्राचीन वैदिक सभ्यता के ग्रामणी और वर्तमान समय के ग्राम प्रधान के तुल्य वह होता था। राहुल जी ने क्षेत्रपाल का अर्थ किया है—कृषि का अध्यक्ष। गढ़वाल के नगरों और ग्रामों में क्षेत्रपाल देवता का महत्त्व बहुत अधिक है, जो उस स्थान विशेष का रक्षक देवता समझा जाता है। ग्रामों और नगरों के बाहर क्षेत्रपाल देवता के मन्दिर देखे जाते हैं। ग्राम के निवासी समय समय पर उनसे रक्षा और समृद्धि की याचना करते हैं। विवाह के बाद वर-वधू उनसे आशीर्वाद लेने जाते हैं। सम्भवतः प्राचीन समय में स्थानीय निवासियों की पहुँच सामान्य क्षेत्रपाल अधिकारी तक ही रही होगी तथा उसी का प्रतीक क्षेत्रपाल देवता हो गया।

(१४) गोप्ता—

गोप्ता पद का अर्थ है—रक्षक। कालीमठ के रुद्रसूनु के अभिलेख में गिरिपतिगृहगोप्ता पद का उल्लेख हुआ है। गिरिपति पद का अर्थ है—भगवान् शिव या हिमालय। इस अधिकारी पद का अभिप्राय हुआ—हिमालय पर्वत के मन्दिरों की देखभाल करने वाला।

(१५) गौल्मिक—

गौल्मिक पद का अर्थ गुल्म से सम्बन्धित है। गुल्म पद के दो अर्थ हैं— वनस्पतियों का समूह और सेना की एक इकाई के सैनिकों का समूह। पहला अर्थ लेने पर गौल्मिक का अभिप्राय हुआ— वनरक्षक। वन्य सम्पत्ति का वह रक्षक था। वृक्षों,

ओषधियों, लताओं, खनिजों और अन्य वस्तुओं की सुरक्षा का उत्तरदायित्व उस पर था। वर्तमान समय में वनाधिकारी (Forest Officer) इसका समानार्थक हो सकता है।

गुल्म का दूसरा अर्थ लेने पर गौल्मिक का अभिप्राय होगा— सेना के गुल्म का नायक। डी० सी० सरकार ने गौल्मिक को पुलिस अधिकारी कहा है।[1] वह वर्तमान समय के पुलिस अधीक्षक (Suprinptendent of police) के समान होता होगा।

(१६) घट्टपाल—

नदियों के पार उतरने के मार्ग को घट्ट (घाट) कहते थे। इनकी सुरक्षा का प्रबन्ध घट्टपाल करते थे। राज्य में प्रवेश करने वालों पर वे चौकसी रखते थे। आवश्यकता होने पर वे प्रवेशपत्रों की भी जांच करते थे।

(१७) चौरोद्धरणिक—

यह एक पुलिस विभाग का ही अधिकारी था। राज्य में चोर-लुटेरों पर नियन्त्रण रखने और उनको सजा देने का कार्य उसके अधीन था।

(१८) ठक्कर—

ग्राम शासन के अधिकारियों में ठक्कर पद भी आता है। प्रतीत होता है कि ठाकुर पद इसी का अपभ्रंश है। ठक्कर सम्भवतः क्षत्रिय थे, जो ग्राम की रक्षा करते थे।

(१९) तदायुक्तक—

तदायुक्तक पद का सम्बन्ध भी राज्य की सम्पत्ति से था। सम्भवतः वह कोषाधिकारी था, जो राजा के आदेश के अनुसार विभिन्न विभागों के व्यय के लिये राजकोष से धन देता था।

(२०) दंडपाशिक—

इस पद का प्रयोग पुलिस अधिकारी के लिये हुआ है। वह अपराधियों को पाश में बंधवा कर दंड देता था।

(२१) दिविरपति—

यह राजकीय कार्यालयों का कर्मचारी था और अक्षपटलिक के अधीन था। कर्णिक (लिपिक) उसकी अधीनता में कार्य करते थे। उसका वर्तमान समय का रूप सम्भवतः मुख्य लिपिक हो सकता है।

(२२) दुःसाध्यसाधनिक —

यह भी पुलिस विभाग का एक अधिकारी था। अन्य अधिकारियों से कोई कठिन कार्य सम्पन्न न होने पर वह कार्य उसको सौंप दिया जाता था।

१. डी० सी० सरकार : कार्पस इन्स्क्रिप्शिनम इण्डिकेरम जि० १, पृ० २८३

(२३) देवद्रोण्यधिकृत—

देवपूजा के विभाग का अध्यक्ष देवद्रोण्यधिकृत था। देवमन्दिरों, यज्ञशालाओं आदि की और यज्ञ-पूजन की वह व्यवस्था करता था। मन्दिरों के संरक्षण, मरम्मत, अभिषेक, संमार्जन, बलि, चरु, सत्र आदि को सुचारु रूप से चलाने के लिये वह राजा से उचित दान देने और अग्रहार भूमि दान देने की प्रार्थना करता था।

(२४) दोषापराधिक—

दोषों और अपराधों की प्रारम्भिक देखभाल करने और उनका निश्चय करने के लिये इस अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी।

(२५) दौवारिक—

पर्वतीय नरेशों और गढ़पतियों के द्वारों की रक्षा करने वाले कर्मचारी दौवारिक कहलाते थे।

(२६)द्वाररक्षक—

दौवारिक का पर्याय ही द्वाररक्षक है।

(२७) पट्टकापचारिक—

पट्टकापचारिक पद का अर्थ है—भूमि के पट्टों की देख भाल करने वाला अधिकारी। यह पद वर्तमान पटवारी के समान रहा होगा। गढ़वाल में पटवारी का पद बहुत महत्त्व का रहा है।

(२८) पारिषद्—

राजसभा के सदस्यों को पारिषद् कहा गया है। पार्षद शब्द इसका ही पर्याय है। इनका कार्य था— राजकीय कार्यों में राजा को परामर्श देना। पारिषदों को प्रायः जागीरें दी जाती थीं।

(२९) पीलूपति—

यह पद भी अति महत्त्वपूर्ण था। इसका कार्य था कि सारे पर्वतीय प्रदेश में विस्तृत राज्य पर एक दृष्टि रखना।

(३०) पूरोगान—

पूरोगान का अभिप्राय है—विभिन्न उत्सव आदि अवसरों पर मंगल-संगीत की व्यवस्था करने वाला। राजकीय तथा धार्मिक उत्सवों के अवसरों पर मंगलगान तथा मंगलनृत्य की व्यवस्था उसके अधीन थी। इस कार्य के लिये वारांगनायें नियुक्त होती थी। पूरोगान उन सबकी व्यवस्था करता था।

(३१) प्रतिशूरिक—

राजसभाओं में प्रतिशूरिक नामक पद भी था। वह मल्लविद्या में निष्णात होता था। दूसरे देशों से आने वाले मल्लों का वह राजा की ओर से मुकाबला

करता था। उसकी अध्यक्षता में राजकीय अखाड़े होते थे। यहाँ युवा जन मल्लविद्या का अभ्यास करते थे और विभिन्न आयुधों की शिक्षा प्राप्त करते थे। उत्सवों में इनका प्रदर्शन भी किया जाता था। मन्दिरों के साथ अखाड़ों के रहने तथा उनमें मल्लविद्या-निष्णात व्यक्तियों के नियुक्त होने की प्रथा अब भी है।

(३२) **प्रतीहार**—

यह एक प्रकार का द्वाररक्षक ही था और राजा के सभा भवन और अन्तः-पुर के द्वारों पर सदा विद्यमान रहता था।

(३३) **प्रमातार**—

भूमि का सर्वेक्षण और पैमाइश करने वाले अधिकारी को प्रमातार कहा गया है। राहुल जी ने इसका अर्थ सर्वेक्षक किया है। सम्भवतः वह वर्तमान समय के कानूनगो के समान रहा होगा। गुप्त काल में प्रमातृ नामक अधिकारी का उल्लेख हुआ है।

(३४) **प्रान्तपाल**—

प्रान्तपाल का अर्थ वर्तमान के प्रान्त के अधिकारी के तुल्य नहीं था। उस काल में देश का प्रशासनिक विभाजन वर्तमान समय के समान प्रान्तों (इस समय प्रदेशों) के रूप में नहीं था। अतः यहाँ प्रान्त पद का अर्थ है— पर्यन्त भूमि (सीमा प्रदेश)। इसलिये प्रान्तपाल का अर्थ होगा— सीमाप्रदेश का रक्षक अधिकारी।

(३५) **बलाध्यक्ष**—

सेना के नायक को बलाध्यक्ष कहा गया है। उसके अधीन सेना की एक इकाई रहती थी। यह पद वर्तमान फौजदार के समान था।

(३६) **भागिक**—

भागिक एक प्रकार का कर वसूल करने वाला अधिकारी था। राज्य में इस प्रकार के अनेक उद्योग रहे होंगे, जिनमें राजकीय भाग (अंश) भी होता होगा। इस भाग का निर्धारण करना और वसूल करना भागिक का कार्य था।

(३७) **भाण्डागारिक**—

राजकीय वस्तुओं को भण्डारों में सुरक्षित रखने वाला अधिकारी भाण्डागारिक था। सम्भवतः यह पद उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होता था। गढ़वाल में भण्डारी जाति की उत्पत्ति का मूल यही भाण्डागारिक पद रहा होगा। हर्ष के समय में वस्तु भण्डारों के अधिकारी अधीक्षक को भाण्डागाराधिकृत कहा गया है।

(३८) **भृत्य** —

सामान्य सेवक भृत्य थे। भृत्य पद का अर्थ है— भृति अर्थात् वेतन प्राप्त करने वाला। अभिलेखों में भृत्य पद का प्रयोग अनेक बार हुआ है। मन्दिरों तथा राजप्रासादों में विभिन्न कार्यों के करने के लिये भृत्यों (अनुजीवियों) की नियुक्ति होती थी। इनको जीवन-निर्वाह के लिये वेतन के अतिरिक्त— भूमि भी दी जा सकती थी।

कत्यूरी शासन अभिलेखों में भृत्यों को भूमि देने का उल्लेख है। मन्दिरों में गन्ध, पुष्प, दीप, लेखन, बलि, चरु, नृत्य, गीत इन सबकी व्यवस्था करना भृत्यों का कार्य था। वे मन्दिरों की सम्पत्ति, भूमि, भवन आदि की चौकसी भी करते थे। विशेष पूजाओं के समय मन्दिरों में ढोल, नगाड़ा, दमामा, घंटा आदि वाद्यों को बजाने का कार्य भृत्य ही करते थे। मामान्यतः ये शूद्र वर्ग के होते थे। उत्तरवर्ती काल में ये डोम कहलाने लगे।

(३९) भोगपति—

भोगपति का सम्बन्ध भोगिक से है। यह कर वसूल करने वाला अधिकारी है। भोगिक और भोगपति को या तो पर्यायवाची माना जा सकता है अथवा अनेक भोगिक अधिकारियों का अधिपति एक भोगपति होता होगा। यह भी सम्भव है कि जागीरों के प्रभारीं अधिकारी को भोगपति कहते होंगे।

(४०) भोगिक—

राज्य में छोटे करों को भोग कहा गया है। ये वर्तमान समय के चुंगी के समान होते होंगे। इनको निर्धारित करने वाले तथा वसूल करने वाले अधिकारी को भोगिक कहते थे।

(४१) महत्तम—

ग्राम-शासन के अधिकारियों में महत्तम नामक अधिकारी का उल्लेख हुआ है। इसको या तो ग्रामीण जनता द्वारा विशिष्ट कार्यों के लिये चुना जाता था या शासन द्वारा नामित किया जाता था। सम्भवतः ग्राम-पञ्चायतों के सदस्यों को भी महत्तम कहा जाता होगा। ये महत्तम ग्रामों की विशिष्ट समस्याओं को सुलझाते थे। वे प्रारम्भिक न्याय भी करते थे। पंचायत के समय इनके लिये विशिष्ट आसनों की व्यवस्था की जाती थी। श्रीनगर के समीप सुमाड़ी ग्राम के लक्ष्मीनारायण मन्दिर के बाहर विशाल बरगद वृक्ष के चारों ओर इस प्रकार के शिलाओं के ऊँचे आसन हैं, जिन पर बैठ कर ग्राम के महत्तम जन ग्राम की समस्याओं को सुलझाते थे।

(४२) महादंडनायक—

इस पद का प्रयोग सम्भवतः प्रधान सेनापति के लिये हुआ है। उसकी कमान में अनेक दंडनायक रहते थे।

(४३) महाप्रतीहार—

राजप्रासाद के रक्षकों का प्रधान अधिकारी महाप्रतीहार था। द्वाररक्षक भी उसकी अधीनता में कार्य करते थे।

(४४) महामनुष्य—

महामनुष्य को ग्राम-शासन के अधिकारियों में गिना जा सकता है। वह

सामान्य जन के मध्य में से या तो निर्वाचित होता था अथवा शासन द्वारा नामित किया जाता था। राजशासन में वह एक प्रकार से प्रजा का प्रतिनिधि था।

(४५) महासन्धिविग्रहाक्षपटलाधिकृत—

सन्धिविग्रहिक तथा अक्षपटलिक आदि अधिकारियों का यह अध्यक्ष था। वे सब इस अधिकारी के अधीन रह कर अपना कार्य करते थे। इस प्रकार वह राज्य का एक अति महत्त्वपूर्ण अधिकारी था।

(४६) महासामन्त—

ये राज्य के बड़े जागीरदार थे। आन्तरिक शासन में ये स्वतन्त्र थे। परन्तु वे राजा को अपना अधिपति स्वीकार करते थे। एटकिन्सन ने महासामन्त को प्रधान सेनापति कहा है।

(४७) राजन्यक—

एटकिन्सन ने राजन्यक को राजकुमार का पर्याय माना है। शिवप्रसाद डबराल का कथन है कि राजन्यक का अपभ्रंश पद बना है—रैंका। नेपाल (डोटी) में राजा के उत्तराधिकारी को रैंका कहा जाता है। रैंका के नाम से गढ़वाल में अनेक चबूतरे (चौंतरा-चौरा) बने तथा इस नाम की बस्तियाँ अब भी गढ़वाल में हैं। जैसे डाँगचौरा, चौरा, चौंतरा (जोशीमठ) आदि।

(४८) लेखक—

लेखक का अभिप्राय लिपिक से ही है। कर्णिक और लेखक एक से हो सकते हैं। सम्भवतः लेखक वंशपरम्परा से होते थे तथा उनको यह उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होता था। राजशासन में ये प्रतिष्ठा के पात्र थे तथा गोपनीय राजशासन इनके द्वारा लिखवाये जाते थे।

(४९) वणिक्—

राज्य के अधिकारियों में वणिक् भी एक पद है। वणिक् का अर्थ है व्यापारी-प्रशासन में व्यापारियों के प्रतिनिधि को वणिक् कहा जाता था। इस प्रतिनिधि का या तो निर्वाचन होता था या प्रशासन इसको नामित कर सकता था।

(५०) वर्त्मपाल—

राजकीय मार्गों का निर्माण, मरम्मत और सुरक्षा के प्रबन्ध का उत्तरादायित्व वर्त्मपाल का होता था।

(५१) विनियुक्तक—

विनियुक्तक पद का सम्बन्ध राजकीय सम्पत्ति से था। इसका अभिप्राय है विनियोग करने वाला। राजा की सम्पत्ति का विनियोग करना। उसको अच्छे लाभ-दायक कामों में लगा कर समृद्ध तथा सुरक्षित करना। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इस युग में गढ़वाल में राजकीय उद्योग और व्यापार अवश्य होते थे।

(५२) विषयपति—

उपरिक से निचले स्तर का प्रशासनिक अधिकारी विषयपति होता था। इसको वर्तमान समय के जिलाधीश के समान कहा जा ककता है।

(५३) संमार्जक—

संमार्जक पद का अर्थ है—स्वच्छ करने वाला। यह अधिकारी राजा की यात्राओं की व्यवस्था करता था। उसका कार्य था—मार्गों को स्वच्छ, सुरक्षित और ठीक रखना, जिससे मार्ग में कोई उपद्रवी तत्त्व न रहे। राजधानी में राजा की सवारी निकलने पर वह मंगलाचरण का भी प्रबन्ध करता था।

(५४) सत्रपति—

सत्र पद का अर्थ है — उत्सव या यात्रा। गढ़वाल में अनेक पूजा-उत्सव यात्रा के रूप में होते रहते हैं। यात्रा पद का अप्रभ्रंश है— जात। जैसे कि नन्दा देवी की जात। इसका प्रबन्ध करने वाला अधिकारी सत्रपति था। गढ़वाल में नन्दा देवी की जात प्रति १२ वें त्रर्ष मनाई जाती है। जात का प्रचलन भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों में भी है।

(५५) सन्धिविग्रहिक...

तालेश्वर अभिलेखों में सन्धिविग्रहिक का पद महत्वपूर्ण लिखा गया है। अन्य राज्यों के साथ सन्धि और विग्रह करने में तथा विदेशनीति का निर्धारण करते में वह परामर्शदाता का कार्य करता था।

(५६) सूपकारपति—

राजकीय पाठशाला के अध्यक्ष को सूपकारपति कहा गया है। अन्य पाचक सूपकार थे।

(५७) सौधभङ्गाधिकृत—

राहुल साँकृत्यायन ने सौध का अर्थ राजमहल किया है। अतः इस आधार पर इस पद का अभिप्राय है— राजप्रसाद का प्रमुख शिल्पी (इन्जीनियर)। परन्तु एटकिन्सन और अन्य अनेक विद्वान् सौध का अर्थ हिरासत लेते हैं। इस आधार पर इस पद का अभिप्राय होगा— न्यायिक हिरासत में रखने वाला अधिकारी। इस पद का यद्यपि ठीक निर्णय नहीं हो सका है, तथापि राहुल जी का मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है। संस्कृत में सौध का अर्थ प्रासाद प्रसिद्ध है।

(५८) स्थानाधिकृत—

पुलिस के किसी अधिकारी के अस्वस्थ होने अथवा अन्य किसी कारण से उपस्थित न हो सकने की अवस्था में स्थानाधिकृत नामक अधिकारी उस कार्य को संभालता था।

(५९) शरभङ्ग—

धनुष-बाण आदि युद्ध-सामग्री को तैयार करने वाले कारखाने के अध्यक्ष को शरभङ्ग कहते थे। कुछ विद्वानों ने राजकीय चिकित्सक को शरभङ्ग कहा है।

(६०) शार्ङ्गिक—

धनुर्धारी सेना का नायक शार्ङ्गिक कहलाता था। सम्भवतः धनुष-बाण का निर्माण भी उसकी देखभाल में होता था।

(६१) शौल्किक—

शौल्किक पद मे स्पष्ट है कि यह शुल्क (राजकीय कर) को वसूल करने वाला अधिकारी है राज्य के विभिन्न प्रवेश मार्गों पर और घाटों पर शुल्क-शालायें होती थीं। यहाँ शौल्किकों की नियुक्ति होती थी। उस स्थान से यात्रा करने वाले यात्रियों को कर देना होता था। व्यापारिक वस्तुओं पर भी कर लिया जाता था।

(६२) श्रेष्ठी—

प्राचीन साहित्य में श्रेष्ठी और नगर श्रेष्ठी पदों का बहुधा प्रयोग हुआ है। 'मुद्राराक्षस' नाटक में वर्णन है कि कुसुमपुर में चन्दनदास नगर-श्रेष्ठी था। सम्भवतः व्यापार और उद्योग की नीति के निर्धारण में उसका महत्त्वपूर्ण योग होता था। यह पद वणिक् से ऊँचा था।

इस स्थल पर, गढ़वाल के प्राचीन अभिलेखों में जिन अधिकारियों के पद-नाम का उल्लेख हुआ है। उनका स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया गया है। सम्भवतः यह स्पष्टीकरण पूरी तरह से यथार्थ न हो, तथापि बहुत कुछ ठीक है। इससे हमको उस युग के राजप्रशासन की पद्धति, समाज, संस्कृति, धर्म और कर्मकाण्ड का बहुत कुछ बोध हो सकता है।

(ब) सांस्कृतिक भूगोल—

अभिलेखों में अनेक स्थानों के नाम बड़ी संख्या में दिये गये हैं। यह खोज का विषय है कि वर्तमान समय में ये स्थान कहाँ हैं और किन नामों से प्रसिद्ध हैं। इनमें से कुछ स्थानों का परिचय पहले दिया जा चुका है।

स्थानों के नामों का अध्ययन और उनका स्थानीकरण अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि स्थानों के नाम प्रायः आकस्मिक कारणों से नहीं पड़ते। उनकी पृष्ठ-भूमि में किसी समुदाय की सामाजिक, धार्मिक और ऐतिहासिक परिस्थितियाँ भी विद्यमान होती हैं। गढ़वाल के प्राचीन अभिलेखों में अनेक स्थानों के नाम तत्कालीन (प्राचीन गढ़वाली) स्वरूप के प्रतीत होते हैं। प्रतीत होता है कि लेखक और लिपि-कार ने अभिलेखों में उनको संस्कृतनिष्ठ बना कर प्रयुक्त किया है। तथापि नामों के साम्य के आधार पर ही स्थानों की पहचान नहीं की जा सकती। यह बात इस सन्दर्भ

में और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि पर्वतीय अञ्चलों में एक ही नाम के कई स्थान मिलते हैं। यथा–दुगड्डा, पौखाल, उदयपुर, बैजबाड़ी, थापली आदि।

स्थानों के नामों का वर्गीकरण निम्नलिखित आधारों पर करना उचित होगा—

(१) देवता के नाम पर आधारित नाम- यथा– ब्रह्मपुर, कार्तिकेयपुर, त्र्यम्बपुर आदि।

(२) व्यक्ति या प्रमुख पुरुषों के नाम पर आधारित यथा– देवदासतोत्री, जीवा-कर्मामादित्य आदि।

(३) जन-जाति या कबीलों के नामों पर आधारित यथा– कोल्लपुरी, खसियाक-परिभुज्यमानपल्लिका आदि।

(४) भौगोलिक या भौतिक लक्षणों पर आधारित यथा– भेलमस्तक, गोलथानक, गोमतीसारी आदि।

(५) पुष्प, फल, वृक्ष, फसल आदि के नामों पर आधारित यथा– महासाल, बुरासिका सेम्मलक्षेत्र आदि।

(६) पशु, पक्षी, सरीसृप आदि के नामों पर आधारित यथा– शृगालखोल्लणक काकस्थली,कटकभृष्टी आदि।

(७) अन्य स्थान नाम रिवाज, विश्वास, घटना आदि पर आधारित-यथा– भेट-सारी, बज्रस्थल आदि।

स्थानों के नामों के अध्ययन में प्रत्ययों का बहुत महत्व है। ये प्रत्यय हैं–ग्राम, पुर, पल्लिका, ताली, सारी, क्षेत्र, कोष्ठा, कोह, स्थली, स्थल, आश्रम, गर्ता आदि। स्थानों में अनेक रूपों में तथा विशेष रूप से ओली और ली के रूप में भी प्रत्यय मिलते हैं।

नामों के साथ आश्रम शब्द भी महत्वपूर्ण है। इस पर विशेष विचार करना आवश्यक है। अभिलेखों में पौराणिक तथा साहित्यिक ग्रन्थों में वर्णित आश्रमों की उपस्थिति का संकेत गढ़वाल में मिलता है। इससे गढ़वाल संभाग के धार्मिक और आध्यात्मिक महत्त्व की श्रेष्ठता भी प्रतिपादित होती है।

अभिलेखों में उल्लिखित स्थानों के नामों में अनेक में 'का' और 'क' प्रत्ययों का प्रयोग हैं। इससे दो सम्भावनायें प्रकट होती हैं। एक तो यह कि कुछ स्थानों के नामों में 'का' या 'क' वर्ण नामों के अंग थे दूसरी सम्भावना यह है कि कुछ नामों में लेखक ने देशज पदों को संस्कृतनिष्ठ करने के लिये इन प्रत्ययों का प्रयोग किया है। डा० शिवप्रसाद डबराल का अनुमान है कि पर्वताकर शासन-पत्रों से यह सूचना रोचक रूप से प्राप्त होती है कि जनसाधारण की भाषा संस्कृत न होकर अपभ्रंश या देशज भाषा थी। इसका विकास उत्तरवर्ती काल में उत्तराखण्ड की वर्तमान बोलियों के रूप

में हुआ। ग्रामों तथा खेतों के नाम तत्कालीन देशज भाषा में थे। इनको संस्कृतनिष्ठ रूप देकर शासन-पत्रों में अंकित किया गया था[१]।

(ग) नृवंशीय अध्ययन—

कालसी अभिलेखों में यवन, कम्बोज, भोज, आन्ध्र, पुलिन्द आदि जन-जातियों का उल्लेख है। इस उल्लेख से यह भ्रम पालना उचित नहीं होगा कि यहाँ गढ़वाल में ये सभी जातियाँ निवास करती थीं। अशोक के अभिलेखों में अपने विशाल साम्राज्य में रहने वाली अनेक जातियों तथा प्रजातियों का उल्लेख किया गया है। पाण्डुकेश्वर अभिलेखों में बंगाल के पालवंशी राजाओं के ताम्र-पत्रों की शैली की स्पष्ट छाया है। अतः एटकिन्सन का यह मत सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है कि सीमान्त नामों से हम परम्परा तथा तथ्यों के आधार पर कह सकते हैं कि खस, किरात राजकिरात, शक, नाग और हूण जातियों का सम्बन्ध पर्वतों से है[२]।

इस स्थल पर जौन और यौन पदों का अभिप्राय स्पष्ट करना समुचित होगा। देहरादून-टिहरी में यमुना के पश्चिमी प्रदेश को जौनसार और जौनपुर कहा गया है। हिमालय के सन्दर्भ में इसको प्राचीन ईरानी यौन-यौना से सम्बन्धित नहीं करना चाहिये। अलबरुनी ने जौन शब्द का सम्बन्ध यौन (यवन) से जोड़ा है[३]। परन्तु वेदों में यमुना घाटी को यामुन नाम दिया गया है[४]। यामुन पद से ही जमुना और जौन (सार) पदों की उत्पत्ति हुई है।

हूणों का उल्लेख इन अभिलेखों में परम्परा के रूप में आया है। कहा जाता है कि पंजाब में खत्री जाति के कुछ अंश में हूण भाग है। हूण तोरमाण मिहिरकुल के हूण सरदार थे तथा उनके अधिकार में हिमालय का भी एक बड़ा भाग था। सतलज नदी की उपत्यका में अवस्थित तिब्बत का एक भाग आज भी हूण देश कहलाता है। गढ़वाल के उत्तरी सीमान्त पर तिब्बत अवस्थित है।

पुलिन्द निस्सन्देह रूप से पर्वतीय कबीला था। पर्जीटर का कथन है कि पुलिन्दों की पश्चिमी शाखा हिमालय शाखा थी और इसका सम्बन्ध किरातों तथा टंगणों से भी था।

(घ) अभिलेखों में व्यक्ति-नाम—

संस्कृत अभिलेखों में हमको उस युग के राजाओं, राजकर्मचारियों, ब्राह्मणों तथा अन्य साधारण कोटि के भी व्यक्तियों का उनके नामों सहित परिचय मिलता है।

---

१. उत्तराखण्ड का इतिहास भाग २, पृ० ४२०
२. एटकिन्सन : हिमालयन डिस्ट्रिक्स पृ० ६६२
३. अलबरूनी : इण्डिया पृ० ३०२
४. अथर्ववेद ४·६·१०

व्यक्तियों के नामों के साथ उनके उप-पद तथा जाति के नाम का भी संकेत है। इससे उस काल में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था की भी सूचना मिलती है। परन्तु इस प्रकार के अध्ययन में यह सावधानी भी रखनी आवश्यक होगी कि यहाँ अनेक बार स्मृति-धर्मशास्त्रों के विधान का उल्लंघन हुआ है। सम्भवतः इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि विभिन्न धर्मशास्त्र इस सम्बन्ध में एकमत नहीं हैं। अतः इस सम्बन्ध में विवेचना करते हुए 'विष्णुपुराण'[1] 'यमस्मृति'[2] आदि ग्रन्थों के भी आधार को लेना समुचित होगा। मनु, बोधायन, पाराशर आदि ने भी व्यवस्थायें दी हैं। इसके अनुसार नामकरण में इस प्रकार से व्यवस्था होनी चाहिये—

ब्राह्मण के नाम के अन्त में शर्मन् लगाना चाहिये।
क्षत्रिय के नाम के अन्त में वर्मन् लगाना चाहिये।
वैश्य के नाम के अन्त में गुप्त लगाना चाहिये।
शूद्र के नाम के अन्त में भृत्य या दास लगाना चाहिये।

'याज्ञवल्क्य स्मृति' और उसकी मिताक्षरा टीका में विधान है कि व्यक्तियों के नाम और पुत्रों के नाम कुलदेवता के नाम से सम्बन्धित होने चाहियें। परन्तु गढ़वाल में इन परम्पराओं का पूरा पालन नहीं हुआ। जिस प्रकार महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश में नामों के अन्तिम भाग को रखने में परिवर्तन हुआ और स्थान के नाम को महत्त्व दिया गया, इसी प्रकार गढ़वाल में भी स्थान के नाम का इतना अधिक प्रभाव रहा कि निवास-स्थानों और ग्रामों के नामों से कुलों, जातियों और उपजातियों के नाम प्रचलित हुए। गढ़वाल में नौटियाल, बड़थ्वाल, घिल्ड्याल, नैथानी, मैंठाणी, डंगवाल, थपलियाल आदि जातियों के नाम ग्रामों के आधार पर ही प्रचलित हुए थे।

अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लाखामण्डल के दासवंशीय नरेश (छागलेश अभिलेख) जौनसार भाभर के स्थानीय निवासी थे और वे शिव के उपासक थे। ये अज (छागलमेष) का पालन अधिक संख्या में करते थे। परन्तु ईश्वरा-प्रशस्ति अभिलेख में वर्णित सिंहपुर राजवंश सूर्यवंशी क्षत्रिय था। पर्वताकर राज्य के नरेश चन्द्रवंशी थे। इसी प्रकार पलेठी और सिरोही के राजवंश वर्मन् होने से चन्द्रवंशी क्षत्रिय सिद्ध होते हैं। बाड़ाहाट और गोपेश्वर के अभिलेखों में जिन नागवंशी राजाओं का परिचय मिलता है, वे मूलतः गढ़वाल के ही निवासी

---

१. शर्मवद् ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रसंयुतम्।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः॥ विष्णुपुराण ३·१९·१

२. शर्म देवश्च विप्रस्य वर्म त्राता च भूभुजः।
भूतिर्दत्तश्च वैश्यस्य दासं शूद्रस्य कारयेत्॥ यम-स्मृति।

थे। एक समय अलकनन्दा घाटी में नागों की बस्तियाँ तथा राज्य थे[1]। ये शिव के उपासक थे, अतः इनका सम्बन्ध भारशिव नागों से होने की कल्पना की जा सकती है। जायसवाल ने प्रयाग-प्रशस्ति के नागदत्त को स्रुघ्न का नाग-नरेश माना है[2]।

गोपेश्वर के निकट ही नागों की राजधानी नागपुर थी, इस बात के प्रमाण मिलते हैं। यहाँ यत्र-तत्र बिखरी शिलायें हैं, मृद्भाण्डों के टुकड़े हैं और गुप्तकालीन इष्टिकाओं के अवशेष हैं। निकटवर्ती क्षेत्रों में कार्तिकेय मन्दिर, रुद्रनाथ, तुंगनाथ और गोपेश्वर के मन्दिर हैं। इनसे उन नागों की धार्मिक आस्था के प्रमाण मिलते हैं। पुरातत्त्वविदों द्वारा उत्खनन से यहाँ प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हो सकती है।

गढ़वाल के अनेक स्थानों के नामों से हमको नाग जाति के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। यहाँ नागपुर और उर्गम नाम की पट्टियाँ इस ओर संकेत करती हैं।

कत्यूरी ताम्र-पत्रों से हमको तीन शाखाओं के नरेशों के नामों और उनके शौर्य का परिचय मिलता है। एटकिन्सन और राहुल सांकृत्यायन ने वसन्तन और मसन्तन को एक मान कर अनुश्रुतियों में विख्यात कत्यूरी वंश के संस्थापक वासुदेव से उसकी एकता प्रतिपादित की है। यद्यपि नाम के अन्त में देव पद ब्राह्मण के साथ लगाना चाहिये, तथापि कत्यूरी शासकों के नामों के अन्त में भी देव पद आता है[3]।

गोपेश्वर अभिलेख में कहा गया है कि अशोकचल्ल या अनेकमल्ल ने अपनी सर्ववाहिनी सेना द्वारा केदारभूमि को विजय किया था। बालेश्वर अभिलेख के अनुसार क्राचल्लदेव राजा पराक्रम में भयानक था। वह भवानीपति के समान सर्व-गुण सम्पन्न था, परम सौगत था और जिनिकुल-कमल-दिवाकर था।

स्त्रियों के नामों में सज्यनरा, नाशू, लया और सामा निश्चित रूप से देशज नाम हैं। अन्त में देवी पद लगा कर उनको विशिष्टता प्रदान की गई है। ईश्वरा, जयावती और सिन्धुवती नाम सार्थक हैं। ये नाम इस परम्परा में हैं कि स्त्रियों के नामों के अर्थ कुत्सित नहीं होने चाहियें। इनके अन्त में दीर्घ स्वर होना चाहिये और पुकारने में आशीर्वादात्मक अर्थ की अभिव्यक्ति होनी चाहिये।

अभिलेखों में राजवंशों से भिन्न नाम भी हैं। इन नामों पर विचार करने से विदित होता है कि वे ईश्वर, आदित्य, विष्णु, स्कन्द, शिव, दुर्गा, कमला, वायु, चन्द्र, सूर्य, गङ्गा, श्री, वराह आदि देवताओं के नामों पर तो आधारित हैं, परन्तु इनमें

---

१. एटकिन्सन : हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स पृ० ३७५।

२. जायसवाल : अन्धकारयुगीन भारत पृ० ६१।

३. के. पी. नौटियाल : आर्किओलोजी आफ कुमायूँ पृ० २५८।

वर्तमान काल के सुपरिचित देवताओं के नामों– राम, हनुमान्, कृष्ण आदि का संकेत नहीं है। उस युग में शिव का गुहेश्वर नाम अधिक प्रचलित था। ब्राह्मण के नाम में प्रायः या तो अन्त में भट्ट लगाया जाता था अथवा इसका उपसर्ग के रूप में प्रयोग किया जाता था। इस समय के अभिलेखों में कायस्थ का उल्लेख भी स्पष्ट रूप से हुआ है।

अन्य व्यक्तिवाचक नामों में संस्कृत और प्राकृत प्रत्ययों की संख्या पर्याप्त है। इनमें 'ट' और 'ण' प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। तंग नामान्त भी हैं, परन्तु इनका वर्तमान समय में प्रचलन नहीं है। सांकलिया के अनुसार सिंह, ला, ना, णा आदि प्रत्ययों में प्राकृत प्रभाव है। व्यक्तियों के वे नाम, जिनके अन्त में दां या मां है, डा० कर्त्रे के अनुसार, उन पर शक, गुर्जर या मध्य एशिया से आने वाली जातियों का प्रभाव है।

एक और बात ध्यान देने की यह है कि प्राचीन काल के जिन महाप्रतापी राजाओं के नामों का अभिलेखों में उल्लेख किया गया है, वे हैं– पुरूरवा, पृथु, सगर, दिलीप, मान्धाता, भगीरथ, बलि, चन्द्रगुप्त, वेताल का राजा (विक्रमादित्य)। परन्तु भीष्म, राम, युधिष्ठिर आदि राजाओं का उल्लेख, जो वर्तमान समय में हिन्दुओं में अधिक लोकप्रिय हैं, कम ही है। इनका उल्लेख केवल क्राचल्लदेव के अभिलेख (१२२३ ई०) में ही हुआ है।

७. संस्कृत अभिलेख : स्थान-परिचय

प्रस्तुत प्रबन्ध में जिन अभिलेखों का वर्णन किया गया है, वे जिन स्थानों से प्राप्त हुए हैं, उनका संक्षिप्त परिचय देना उचित होगा। उनका विवरण क्रमशः निम्न है—

(१) कालसी—

देहरादून से चकराता जाने वाले मोटर मार्ग पर, जहाँ यह मार्ग यमुना नदी को पार करता है, कालसी अवस्थित है। कालसी से नीचे की ओर यमुना के तट पर ही, यमुना-टौंस संगम से कुछ ऊपर अशोक का अभिलेख है। यह व्यास और हरिपुर ग्राम के निकट एक विशाल शिला पर टंकित है। यह शिला ८'×१०'×१०' आकार की है। शिला के पूर्वी और दक्षिणी पार्श्वों पर अभिलेख खुदा हुआ है। पूर्वी पार्श्व के अभिलेख में ३६ तथा दक्षिणी पार्श्व के अभिलेख में २३ पंक्तियाँ हैं। बहुत समय तक यह अभिलेख इतिहासविदों की दृष्टि से बचा रहा। स्थानीय निवासी इसके महत्त्व से अनभिज्ञ थे। वे इसको छत्रशिला (चित्रशिला) कहते रहे। सर्वप्रथम १८६० ई० में इसको मि० फारेस्ट ने देखा था। इस अभिलेख से अनुमान किया जा सकता है कि अशोक का साम्राज्य (मौर्य साम्राज्य) इस क्षेत्र में भी विस्तृत रहा था।

यह स्थल बौद्ध धर्म के प्रचार (धर्मचक्र प्रवर्तन) का भी केन्द्र रहा होगा। यहाँ विशाल बौद्ध विहार भी रहा होगा।

(२) **कालीमठ**—

रुद्रप्रयाग से केदारनाथ के मार्ग में प्रसिद्ध तीर्थ गुप्तकाशी से आठ किमी० दूरी पर सरस्वती गङ्गा के दायें किनारे पर स्थित एक प्रसिद्ध तीर्थ कालीमठ है। यहाँ लक्ष्मी मन्दिर में रुद्रसूनु का शिलालेख लगा हुआ है। इसके ठीक ऊपर का पर्वत-शिखर, कलिकाता शैल के नाम से विख्यात है। यहाँ एक विशाल शिला कालशिला नाम से प्रसिद्ध है। कालीमठ में हरगौरी, सरस्वती और लक्ष्मी देवी के एक-एक मन्दिर हैं। इसके साथ ही खम्बों के ऊपर खड़ी छत वाले एक चबूतरे के गढ़े के रूप में काली देवी विद्यमान हैं। राहुल जी का मत है कि प्रथम शताब्दी ई० में हूणों द्वारा काला शब्द का प्रयोग रंगवाची के रूप में हुआ था। तथापि पर्वतीय अंचलों में कालशिला, कालीगङ्गा, कालसी, काल-शैल आदि शब्द समानार्थक रूप में अन्य प्रकार से प्रयुक्त प्रतीत होते हैं।

कालीमठ मूल रूप से पाशुपतों (नकुलीशों) का गढ़ था। प्रतीत होता है कि मूल मन्दिर सरस्वती गङ्गा के बायें तट पर अवस्थित रहा होगा। राहुल सांकृत्यायन का कथन है कि यहाँ की हरगौरी की मूर्ति कलात्मक दृष्टि से भारतवर्ष में सर्वश्रेष्ठ है[1]। यह मूर्ति ४० इंच ऊँची तथा २४ इंच चौड़ी है तथा एक ही शिला से बनाई गई है।

कालीमठ से ऊपर तीन किमी० दूर कविल्ठा ग्राम है। किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि यह स्थान कालिदास की जन्मभूमि है।

(३) **गोपेश्वर**—

ऋषिकेश से बदरीनाथ मोटर मार्ग पर अलकनन्दा के तट पर चमोली नगर ऋषिकेश से २१० किमी० है। चमोली जिला भी है। चमोली जिले का मुख्यालय गोपेश्वर है। यह चमोली से मोटर मार्ग द्वारा १० किमी० है। पैदल मार्ग सीधा गोपेश्वर को चढ़ जाता है और यह ४ किमी० है। गोपेश्वर की ऊँचाई ५००० फीट है।

गोपेश्वर का शिवमन्दिर अपनी प्राचीनता और भव्यता के लिये उत्तराखण्ड में दूसरा स्थान रखता है। इस मन्दिर के प्रांगण में लोहे का एक विशाल त्रिशूल है। इस पर कुछ अभिलेख हैं, जो वहुत अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ऐतिहासिक और पुरातत्त्व की दृष्टि से इनको वहुत महत्त्व दिया गया है। इन अभिलेखों में दो अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। एक अभिलेख में नागवंशी राजाओं—स्कन्दनाग, विभुनाग, अंशुनाग और पशुपति-नाग का उल्लेख है। दूसरे अभिलेख में अशोकचल्ल या अनेकमल्ल का वर्णन है। इस राजा ने अपनी सर्ववाहिनी द्वारा सारी केदारभूमि को जीत लिया था। वह नेपाली था। उसने इस पुण्य स्थान पर स्तम्भ-लांछन के नीचे स्वविक्रमजित्

---

१. हिमालय परिचय (१) पृ० ४४१।

जगत् के प्रभुओं का सम्मेलन किया था। इस प्रकार उसने इस विजय-स्तम्भ को पुनः स्थापित करके कीर्ति को प्राप्त किया था।

गोपेश्वर मन्दिर के भीतरी भाग में बूटधारी सूर्य की कई मूर्तियां हैं।

(४) चांदपुरगढ़ी—

ऋषिकेश-बदरीनाथ मोटर-मार्ग पर ऋषिकेश से १७१ किमी दूर कर्णप्रयाग है। यहां अलकनन्दा और पिण्डरगङ्गा का सङ्गम है। पिण्डरङ्गा के किनारे मोटर मार्ग अलमोड़ा की ओर गया है। कर्णप्रयाग से कुछ ही दूर चल कर मार्ग घूम कर नदी के तट को छोड़ देता है। यहां से लगभग १० किमी दूर चांदपुरगढ़ी के अवशेष हैं। कभी यह स्थान इस प्रदेश की राजधानी रहा था। यहां से तीन किमी आगे आदिबदरी है।

(५) जगतग्राम—

कालसी से १.५ किमी दक्षिण की ओर, अशोक के शिलालेख के सामने यमुना के दूसरे पार्श्व में बायें तट पर प्राचीन समय के अश्वमेध यज्ञ की चिति के अवशेष मिले हैं। इनसे विदित होता है कि यहां वार्षगण्य गोत्र के, युगशैल के अधिपति राजा शीलवर्मन् ने चौथा अश्वमेध यज्ञ किया था। इस स्थान का नाम अनेक लेखकों ने जगतग्राम दिया है। परन्तु डा० यशवन्तसिंह कठोच का कहना है कि यहां के ग्राम का नाम बाड़वाला है।

(६) तालेश्वर—

अलमोड़ा के निकट तालेश्वर नामक स्थान से प्राप्त दो ताम्रपत्र क्रमशः द्विजवर्मन् और विष्णुवर्मन् के हैं। इस समय यह स्थान यद्यपि गढ़वाल मण्डल में नहीं है, तथापि प्राचीन समय में यह क्षेत्र गढ़वाल प्रदेश का ही भाग था। यह पर्वताकर राज्य के अन्तर्गत था। बदरिकाश्रम आदि के स्थल पर्वताकर राज्य की सीमाओं के ही अन्तर्गत थे। तालेश्वर से प्राप्त अभिलेखों को इस पुस्तक में सम्मिलित किया गया है।

इन अभिलेखों से हमको पर्वताकर और ब्रह्मपुर राज्यों का पता चलता है, जो केन्द्रीय राज्य थे। छठी शताब्दी ई० में वराहमिहिर ने 'बृहत्संहिता' में ब्रह्मपुर के पौरवों का उल्लेख किया है। एटकिन्सन के अनुसार ब्रह्मपुर जनपद ही प्राचीन गढ़वाल है। उसने इस सम्बन्ध में 'मार्कण्डेय पुराण' का उद्धरण दिया है। यमुना के तट पर स्थित वनराष्ट्र, खसदेश और सुवर्ण भूमि से यह घिरा हुआ था[1]।

सातवीं शताब्दी ई० में चीनी यात्री ह्वेन्तसांग यहां आया था। उसने अपने यात्रा-विवरणों में शूद्र राज्य के केन्द्र मतिपुर के निकट एक संघाराम में एक विद्वान् गुणप्रभ का उल्लेख किया, जो पर्वत (पर्वतक राज्य) से आया था। इस चीनी यात्री

१. एटकिन्सनः हिमालयन गजेटियर भाग २ पृ० ३६२

ने ब्रह्मपुर का भी विवरण दिया था। इसने इसको पो-लो-हि-मो-पु-ली लिखा[1]। कनिंघम ने इसकी पहचान मतिपुर के उत्तर के गढ़वाल से की है[2]। फुरर ने भी ब्रह्मपुर की पहचान दक्षिण गढ़वाल से की है[3]। डा० डबराल का कथन है कि ब्रह्मपुर जनपद का विस्तार गङ्गा नदी से करनाली-कालीगङ्गा तक था। गूज के अनुसार इस राज्य का विस्तार कुमायूं से लेकर चम्बा तक था[4]।

'मुद्राराक्षस' नाटक में पर्वतेश्वर राजा का उल्लेख है। परन्तु उसने यह संकेत नहीं दिया कि वह किस प्रदेश का राजा था। सम्भवतः उसका राज्य सारे हिमालय में विस्तृत रहा होगा। उसके अधीनस्थ पांच पर्वतीय राजा थे। इनमें एक कश्मीर का राजा भी था। अतः उसके राज्य में वर्तमान गढ़वाल की स्थिति की कल्पना की जा सकती है। यह कहा जा सकता है कि पौरवों का इष्टदेव वीरणेश्वर था। इसकी पहचान राठ प्रदेश के बिनसर तीर्थ से की जा सकती है[5]। स्मरण रखना चाहिये कि एक तालेश्वर राठ क्षेत्र में भी है। अभिलेखों में आये हुये स्थानों के नामों से स्पष्ट है कि ब्रह्मपुर को अलकनन्दा उपत्यका में कहीं होना चाहिये।

(७) **देवप्रयाग**—

देवप्रयाग की स्थिति ऋषिकेश-बदरीनाथ मार्ग पर ऋषिकेश से ७० किमी ऊपर भागीरथी-अलकनन्दा सङ्गम पर है। यह तीर्थ प्राचीन समय से ही प्रसिद्ध रहा है। राजनीतिक शक्ति का भी यह केन्द्र रहा होगा। यहां चार कोनों पर चार शिवमन्दिर हैं तथा मध्य में आदि विश्वेश्वर का मन्दिर है। देवप्रयाग का रघुनाथ-मन्दिर बहुत महत्त्व रखता है। कहा जाता है कि यहां सतयुग में भगवान् विष्णु ने देवशर्मा ब्राह्मण को दर्शन दिये थे। त्रेतायुग में भगवान् राम यहां आये थे।

देवप्रयाग के रघुनाथ मन्दिर के पीछे की ओर ऊँचे पर्वत की शिलायें सीधी दीवार के रूप में खडी हैं। इन्हीं में शङ्कराचार्य और वराह गुहायें हैं। इन शिलाओं पर १९ यात्रियों के नाम अंकित हैं।

(८) **द्रोणीघाट**—

हरिद्वार से २२ किमी० उत्तर में और ऋषिकेश से ३ किमी० दक्षिण में गङ्गा के तट पर वीरभद्रेश्वर मन्दिर है। यहीं गङ्गा पर बाँध बना कर विद्युत उत्पादन (चीला प्रोजेक्ट) के लिये नहर निकाली गई है। वीरभद्रेश्वर मन्दिर के

---

१. शमनहुइली तथा एस. बील: दी लाइफ आफ ह्वेन्त्सांग पृ० ७१
२. पूर्वोक्त पर कनिंघम की टिप्पणी : दी पो-लो-हि-मो-पु ली ऐण्ड ब्रह्मपुर कन्ट्री इज अनमिस्टेकेब्ली गढ़वाल, ह्विच लाइज नौर्थ आफ मतिपुर।
३. फुरर: मानूमेन्टल एन्टिकिटिज आफ नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज भाग २
४. गूज : जनरल आफ यू० पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी १९५३, जिल्द १ पृ० ८२
५. शिवप्रसाद नैथानी: गढ़वाल संभाग का इतिहास और सांस्कृतिक भूगोल तथा नृवंशीय अध्ययन (अप्रकाशित शोधप्रबन्ध—१९७९।

दक्षिण की ओर खुदाई करने पर प्राचीन भवनों के खण्डहरों के अवशेष मिले हैं। इन्हीं में एक शिला पर एक अभिलेख है—"भद्रमित्रस्य द्रोणीघाटे"।

(९) नालाचट्टी (गुप्तकाशी)—

केदारनाथ मोटर मार्ग पर गुप्तकाशी से १·५ किमी० आगे नाला नामक चट्टी आती है। यहाँ ललितादेवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इस मन्दिर के समीप अनेक छोटे-छोटे मन्दिर बने हुये हैं। बायीं ओर के एक छोटे मन्दिर में मणदेव का शिलालेख है। यह शाके ११६८ (१२४६ ई०) का है। यहाँ एक छोटा सा चैत्य भी है। राहुल सांकृत्यायन ने इसको गढ़वाल-कुमायूँ में प्राप्त एकमात्र बौद्ध चैत्य माना है।

(१०) पलेठी—

देवप्रयाग से टिहरी की ओर जाने वाले मार्ग पर हिंडोलाखान के समीप देवप्रयाग से १८ किमी० की दूरी पर भागीरथी के बायें तट पर पलेठी नामक स्थान है। यह टिहरी जिले की खास पट्टी के अन्तर्गत आता है। केदारखण्ड पुराण में इसी स्थान को भास्कर क्षेत्र कहा गया है। यहाँ सूर्य का एक मन्दिर है। इसमें बूटधारी सूर्य की मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस स्थान को वर्तमान समय में गजपलेठी कहा जाता है। पलेठी सम्भवतः पल्लिहट्ट का अपभ्रंश रहा है, अतः ऐतिहासिक दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ एक शिवमन्दिर भी है।

पलेठी से प्राप्त अभिलेख में आदित्यवर्धन और उसके दौहित्र करकवर्धन के नामों का उल्लेख मिलता है। इस अभिलेख में परम भट्टारक महाराजाधिराज कल्याणवर्मन् का भी उल्लेख आया है। कैप्टिन शूरवीरसिंह पंवार का कथन है कि समुद्रगुप्त से सत्ता के युद्ध में असफल होकर चौथी शताब्दी ई० के मध्य में कल्याणवर्मन् ने यहाँ आकर अपने राज्य की स्थापना की थी[1]। इस प्रकार यहाँ वर्मन् वंश का राज्य स्थापित हुआ था। यह राज्य-शासन सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यहाँ बना रहा।

(११) पाण्डुकेश्वर—

पाण्डुकेश्वर की स्थिति ऋषिकेश-बदरीनाथ मार्ग पर ऋषिकेश से २७२ किमी० और बदरीनाथ से २८ किमी० दूरी पर है। यह ६००० फीट की ऊँचाई पर अवस्थित है। धार्मिक और ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। यहाँ पञ्चबदरी में से एक योगबदरी का मन्दिर है। दूसरा मन्दिर वासुदेव का है। कत्यूरी ताम्रपत्रों में वर्णित मूर्तियों की स्थापना यहीं हुई होगी।

पाण्डुकेश्वर में कई प्राचीन ताम्रपत्र मिले हैं। ये कत्यूरी नरेशों के हैं। पहले इन ताम्रपत्रों को यहाँ के पण्डे-पुजारी पाण्डवों की पाटी कह कर दिखाया करते थे

---

१. कैप्टेन शूरवीरसिंह पंवार : उत्तराखण्ड भारती में लेख, वर्ष १६७८, पृ० १६–२१।

और भोले तीर्थयात्रियों को ठगते थे। परन्तु जब इनका अध्ययन किया गया और ये ऐतिहासिक महत्त्व के प्रतिपादित हुये तो ब्रिटिश सरकार ने इनको अपने अधिकार में कर लिया। इन ताम्रपत्रों की संख्या चार थी। इनमें से एक ताम्रपत्र गायब हो गया था। शेष तीनों ताम्रपत्रों की प्रतिलिपियाँ बदरीनाथ मन्दिर में रखी हैं।

डा० यशवन्तसिंह कठोच ने पाण्डुकेश्वर के इन चार ताम्रपत्रों के अतिरिक्त ललितशूरदेव के एक अन्य ताम्रपत्र का उल्लेख किया है, जो कण्डारा से प्राप्त कहा गया है। डा० कठोच का कथन है कि यह ललितशूरदेव का तीसरा ताम्रपत्र अभिलेख है[1]। परन्तु कैप्टिन शूरवीरसिंह और डा० शिवप्रसाद नैथानी का कहना है कि कण्डारा से प्राप्त ललितशूरदेव का ताम्रपत्र वही है, जो पाण्डुकेश्वर से गायब हुआ था। यह अलग से नहीं है।

पाण्डुकेश्वर के मन्दिर अपनी वास्तुकला के लिये विख्यात रहे हैं। यहाँ कुबेर का थात (स्थान) भी है। पहले बदरीनाथ का भण्डारघर भी यहीं रहता था। आज भी बदरीनाथ की धातु वाली उत्सव मूर्ति (उद्धवमूर्ति) पाण्डुकेश्वर के मन्दिर में लाकर रखी जाती है। इसकी नित्य पूजा की जाती है।

(१२) बाड़ाहाट (उत्तरकाशी)—

बाड़ाहाट (उत्तरकाशी) की स्थिति ऋषिकेश-गङ्गोत्तरी मोटर मार्ग पर है। यह ऋषिकेश से १४६ किमी० दूर है और इसकी ऊँचाई ११५८ मीटर है। यह प्राचीन काल से ही प्रमुख प्रशासनिक केन्द्र रहा है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार इसका प्राचीन नाम बाड़ाहाट ही है। यहाँ का शिवमन्दिर प्रसिद्ध है। यह विश्वनाथ-मन्दिर कहलाता है। इसके प्राङ्गण में, जो त्रिशूल स्थापित है, उसकी ऊँचाई २६ फीट है। ऊपर इसका व्यास १ फीट १५ इन्च तथा नीचे ८ फीट ६ इन्च है। यह नीचे तो पीतल का बना है, परन्तु ऊपर के भाग में लोहे का है। यह सम्भव है कि किसी समय पीतल के स्थान पर उस भाग पर लोहा लगाया गया हो। अभिलेख नीचे के पीतल के भाग में है। इन अभिलेखों में गणेश्वर और गुह नामक राजाओं का उल्लेख है। लिपि, भाषा और काल-समता के आधार पर इसको गोपेश्वर के त्रिशूल अभिलेख का समकालीन माना जा सकता है। इसको नागवंशी राजओं का माना गया है।

यहाँ एक दूसरा अभिलेख उस राजा का है, जिसका नाम विदित नहीं हो सका। इसमें "यस्य तत् कर्म यच्छृ गोच्छृत दीप्तं" कहा गया है। इसमें यह भी लिखा गया है—"तिलकं यावदंकेऽपि धत्ते तावत् कीर्तिः सुकीर्तिः दोरक्षामयी तस्यास्तु राज्ञः"। तिलक जब तक धारण करता है, तब तक उस राजा की कीर्ति और सुकीर्ति रक्षित होवे।

यहाँ एक तीसरा अभिलेख अशोकचल्ल राजा का है। यह १२ वीं शताब्दी में लिखा गया था। कुछ अन्य भी छोटे-छोटे अभिलेख यहाँ उत्कीर्ण मिलते हैं।

---

१. मध्य हिमालय का पुरातत्त्व पृ० ६६।

(१३) मोरध्वज—

नजीबाबाद-कोटद्वार मार्ग पर कोटद्वार से लगभग दो मील दूर दक्षिण में मोरध्वज के प्राचीन खण्डहर विद्यमान हैं। कभी प्राचीन समय में यह अति समृद्ध नगर रहा होगा। पुराने गढ़ के अवशेष यहाँ हैं। ह्वेन्त्सांग ने अपने यात्रा-विवरणों में इसकी समृद्धि का वर्णन किया है। यह बौद्ध धर्म के प्रचार का भी महान् केन्द्र रहा था। यहाँ से प्राप्त मृण्मुद्रा के अभिलेख से विदित होता है कि यहाँ बौद्ध धर्म के हेतुवाद का विशेष प्रभाव था।

(१४) लाखामण्डल—

देहरादून जिले की चकरौता तहसील में खानकोदर पट्टी के वर्तमान मड़ा ग्राम का ही प्राचीन नाम लाखामण्डल है। यह स्थान यमुना के दायें तट पर ४६५० फीट ऊँचाई पर स्थित है। यह चकरौता से ३० किमी० और कालसी से ८० किमी० की दूरी पर है। लाखामण्डल जाने के लिये सुगम मार्ग है— देहरादून से मसूरी और मसूरी से यमुना ब्रिज। पुल पार करके वहाँ से १·५ किमी० दूर लाखामण्डल है। गाँव के उत्तर में पर्वत में विस्तृत गुहा है। इसकी ओट में लाक्षागृह है। गुहा के अन्दर एक सुरंग गई है। कहा जाता है कि पाण्डव इसी सुरंग के मार्ग से बच कर निकले थे।

(१५) सिरोली—

सिरोली की स्थिति गोपेश्वर से अनसूयादेवी जाने वाले पैदल मार्ग पर है। यह मण्डल चट्टी से १·५ किमी० और गोपेश्वर से १६ किमी० दूरी पर है। यह पैदल मार्ग पर है। दूसरा मोटर मार्ग गोपेश्वर-मण्डल-ऊखीमठ का है।

सिरोली का अभिलेख मार्ग के बाईं ओर एक चट्टान पर उत्कीर्ण है। यह ५५×४० सेंटीमीटर में है तथा इसकी सात पंक्तियाँ हैं। इसको छठी शताब्दी ई० का माना गया है। इसमें महाराज सर्ववर्मन् का वर्णन उत्कीर्ण है। इतिहास की दृष्टि से यह बहुत महत्त्वपूर्ण है[1]। इसको नरवर्मन् ने जलाशय-संग्रह के लिये (पानीयससमग्रह) बनवा कर उत्कीर्ण अभिलेख कराया था।

—:०:—

१. घई, जी० एस० : इट इज दी अर्लीएस्ट इन्स्क्रिप्शन मेन्शनिंग ए रूलिंग किंग इन दी उत्तराखण्ड रीजन—एपिग्रापिका इण्डिका वो० ३८, भाग २, पृ० ५६–५७

तृतीय खण्ड–प्राचीन अभिलेख

अशोक का कालसी अभिलेख

लिपि—ब्राह्मी

भाषा—पाली

समय—ई० पू० तीसरी शताब्दी

प्राप्ति-स्थान—कालसी के समीप

कालसी अभिलेख शिला की पूर्वी और दक्षिणी सतहों पर है। मूल अभिलेख—

पूर्वी सतह पर—

पहला अभिलेख

(१) इयं धमलिपि देवानं पियेना पियदसिना लेखिता। हिदा नो किछि जिवे आलभितु पजाहितविये।

(२) नो पि चा सभाजे कठविये। बहुका हि दोसा समाजसा देवानंपिये पियदसी लाजा दखति। अथ पि चा एकतिया समाजा साधुमता देवानं-पियसा पियदसिसा लाजिने

(३) पुले महानसि देवानं पियसा पियदसिसा लाजिने अनुदिवसं बहुनि पात-साहसानि अलभियिसु सुपठाये। से इदानि यदा इयं धमंलिपि लेखिता तदा तिनि येवापानानि अलभियंति।

(४) दुवे मजूला एके मिगे। से पि चू मिगे नो धुवे। एतानि पि चु तिनि पानानि नो अलाभयिसंति।

दूसरा अभिलेख

(४) सवता विजितसि देवानं पियसा पियदसिसा लाजिने ये अंता अथा चोडा पडिया सातियपुतो केतलपुतो तंबवनि

(५) अंतियोगे नाम योनलाजा ये चा अंने तसा अंतियोगसा सामंता लाजानो सवता देवानंपियसा पियदसिसा लाजिने दुवे चिकिसका कटा मनुसचि-किसा चा पसुचिकिसा चा ओसधीनि मनुसोपगानि चा पसोपगानि चा अतता नथि

(६) सवता हालापि ता चा लोपापिता च। एवमेवा मुलानि चा फलानि चा अतथा नथि सवपा हालापिता चा लोपापिता च। मगेसु लुखानि लोपितानि उदुपानानि चा खानापितानि पटिभोगाये पसुमुनिसानं।

तीसरा अभिलेख

(६) देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा

(७) दुवाडसवसाभिसितेन मे इयं आनपयिते। सवता विजितसि मम युता लजूके पादेसिके पंचसु पंचसु वसेसु अनुसंयानं निखमंतु एताये वा अठाये इमाय धंमनुसथिया यथा अंनाये पि कंमाये। साधु

(८) मातपितिसु सुसुसा मितसंयुतनातिक्यानं चा बंभनसमनानं चा साधु दाने पानानं अनालंभे साधु अपवियाता अपभडंता साधु। पलिसा पि चा युतानि गननसि अनपयिसंति हेतुवता चा वियंजनते चा।

चौथा अभिलेख

(९) अतिकंतं अंतलं बहुनि वससतानि बधिते वा पानालंभे विहिसा चा भुतानं नातिना असंपटियति समनबंभनानं असंपटियति। ये अजा देवानंपियसा पियदसिने लाजिने धंमचलेनना भेलिघोसे अहो धंमघोसे विमनदसपा

(१०) हथिनि अगिकंधानि अंनानि चा दिव्यानि लुपानि दसयितु जनस। आदिसा बहुहि वसतेहि नाहुतपुलुवे नादिसे अजा बढिते देवानंपियसा पियदसिने लाजिने धंमनुसथिये अनालंभे पानानं अविहिसा भूतानं नातिनं

(११) संपटप तबंभनसमनानं संपटति माता-पितिसु सुससा। एसे चा अंने चा बहुविधे धंमचलने बधिते। बधियिसति चेवा देवानंपिये पियदसि लाज इमं धंमचलनं। पुता च कं नताले वा पनातिक्या चा देवानं पियदसिने लाजिने

(१२) पवढयिसंति चेव धंमचलनं इमं आवकयं धंमसि सीलसि चा चिठितु धंमं अनुसासिसंति। एसे हि सेठे कंमं अं धंमानुसासनं। धंमचलने पि वा नो होति असिलसा। से इमसा अथसा वधि अहिनि चा साधु। एताये अथाये इयं लिखिते।

(१३) इमसा अथसा विधि युजंतु हिनि च मा आलोचयिसु। दुवाडसवशाभिसितेना देवानंपियेना पियदसिना लाजिना लेखिता।

पाँचवाँ अभिलेख

(१३) देवानं पिये पियदसि लाजा आहा। कयाने दुकले। ए आदिकले कयानसा से दुकलं कलेति। से ममया बहु कयाने कटे। ता ममा चा नताले चा

(१४) पलं चा तेहि ये अपति मे अवाकपं तया अनुवटिसंति से सुकटं कछंति। ए चु हेता देसं पि हापयिसति से दुकटं कछति। पापे हि नामा सुप-

दालये । से अतिकंतं अंतलं नो हुतपुलुव धंममहामता कटा । ते दसव-साभिसितेना समया धंममहामाता कटा सवपासंडेसु वियापटा

(१५) धंमाधिथानाये च धंमबढिया हिदसुखाये वा धंमयुतसा येनकंबोजगंधालानं ए वा पि अंने अपलंता । भटमयेसु बंभनिभेसु अनथेसु बुधेसु हिदसुखाये धंमयुताये अपलिबोधाये वियपटाते । बंधनबधसा पटिविधानाये अपलि-बोधाये मोखाये चा एयं अनुबधा पजाव ति वा

(१६) कटाभिकाले ति वा महालके ति वा वियापटाते । हिदा बाहिलेसु वा नगलेसु सवेसु आलोधनेसु भातिनं च ने भगिनिना ए वा पि अंने नातिक्ये सवता वियापटा । ए इयं धंमनिसिते ति वा दानसुयुते ति वा सवता विजितसि ममा धंमयुतसि वियपटाते धंममहामता एताये अठाये

(१७) इयं धंमलिपि लेखिता चिलतिथिक्या होतु तथा मे पजा अनुववतु ।

छठा अभिलेख

(१७) देवानं पिये पियदसि लाजा हेवं आहा । अतिकतं अंतलं नो हुतपुलुवे सवं कलं अठकंमे वा पटिवेदना वा से ममया हेवं कटे । सवं कालं अदमानसा मे

(१८) आलोधनसि गमागालसि वचसि विनितसि उयानसि सवता पटिवेदका अठं जनसा...वेवेदु मे । सवता चा जनसा अठं कछामि हकं । यंपि चा किछि मुखते आनपयामि हकं दापकं वा सावकं वा ये वा पुना महामतेहि

(१९) अतियायिके आलोपिते होति यायेठाये विवादे निरुति वा संतं पलिसाये अनंतलियेनापटि......वियेे मे सवता सवं कालं । हेवं आनपयिते ममया । नथि हि मे दोसे उठानसा अठसंतिलनाये चा । कटवियुते हि मे सव-लोक हिते । तसा चा पुना एसे मुले उठाने

(२०) अठसंतिलनाये चा । कटवियमुते हि मे सवलोकहितेना यं च किछि पलकमानि हकं किति भुतानं अननियं येहं हिद च कानि सुखायामि पलत चा स्वगं आलाधयितु । से एतायेठाये इयं धंमलिपि लेखिता चिलठितिक्या होतु तथा च मे पुतदाले पलकमातु सवलोकहिताये ।

(२१) दुकूले च इयं अनता अगेना पलकमेना ।

सातवाँ अभिलेख

(२१) देवानंपिये पियदसि लाजा सवता इछदि सवपासंड वसेवु । सवे हि ते समय भावसुधि चा इछंति । जने चु उचावचाछंदे उचावुचलागे । ते सवं एकदेस पि कछंति । विपुले पि चु दाने असा नथि

(२२) सयमे भावसुधि किटनाता दिढभतिता चा निचे वाढं

आठवाँ अभिलेख

(२२) अनिकंतं अंतलं देवानंपिया विहालयातं नाम निखमिसु। हिदा मिगविया अंनानि चा हेडिसाना अभिलासानि हुसु। देवानंपिये पियदसि लाजा दसवसाभिसितेसंतं निखमिथा संबोधि

(२३) तेनता धर्मयात्रा। हेता इयं होति समनवंभनानं दसने चा दाने च बुधानं दसने च हिलनं पटिविधाने चा जानपदसा दसने धंमनुसथि चा धंमपलिपुछा चा ततोपया। एसे भुये लाति होति देवानंपियसा पियदसिसा लाजिने भागे अंने।

नवाँ अभिलेख

(२४) देवानंपिये पियदसि लाजा आहा। जने उचावचं मंगलं कलेति आबाधसि अवाहसि विवाहसि पजोपदाने पवाससि एताये अंनाये चा यदिसाये जने बहु मंगलं कलेति। हेतु च अबकननियो बहु चा बहुविधं चा खुदा चा निलथिया चा मंगलं कलंति।

(२५) सकटविचेव खो मंगले। अपपले चु खो एसे। इयं चु खो महाफले चे धंममगले। हेता इयं दासभटकसि सम्यावटिपति गुलुना अपचिति पानानं संयमे समनवंभनानं दाने एसे अंने चाहेडिसे। धंममगले नामा। से वतविये पितिना पि पुतेन पि भातिना पि सुवामिकेन पि मितसंथुतेना अव पटिवेसियेना पि।

(२६) इयं साधु इयं कटविये मगले आव तसा अथसा निबुतिया इमं कछामि ति। एहि इतले मगले संसयिक्ये से। सियाव तं अठं निवटेया सिया पुनानो। हिदलोकिके चेव से। इयं पुना धंममगले अकालिक्ये। हंचे पि तं अठंनो निटेति हिद अठं पलत अनंतं पुना पवसति। हंचे पुन तं अठं निवतेति हिदा ततो उभयेस

(२७) लधे होति हिद चा से अठं पलत चा अनंतं पुना पवसति तेना धुममगलेना।

दसवाँ अभिलेख

(२७) देवानंपिये पियदषा लजा यषो वा कितिवा नो महथावा मनति अनता यं पि यसा वा किति वा इछति तदत्वाये अयतिये चा जने धंकसुसुषा सुसुषातु मेति धंमवतं चा अनुविधियंति ति। धतकाये देवानंपिये पियदसि

(२८) लाजा यषो वा किति वा इछ। अं वा किछिलकमिति देवानं पिये पियदषि लजा त पव पालंतिक्याये वा किति सकले अपपलाषवे षियाति

ति एषे चु पलिसवे ए अपुने। दुकले चु खो एषे खुदकेन व वगेना उषुटेन
वा अनत अगेना पलकमेना पवं पलितिदितु। हेत चु खो
(२६) उषटेन वा दुकले।

ग्यारहवाँ अभिलेख

(२६) देवानंपिये पियदषि लाजा हेवंहा। नथि हेडिषे दाने अदिष धमंदाने।
धमंषविभागे। धमंषबंधे। तत एषे दाषभटकषि। षम्यापटिषति मात-
पितिषु पुषुषा। मितषं थुतनातिक्यानं समनाबंभनाना दाने
(३०) पानानंसमालभे। एषे वतविये पितिना पि पुतेन पि भातिना पि षवा-
मिकयेन पि मितशंथुताना अवा पटिवेषियेना इयं षाधु इयं कटविये।
शे तथा कलंत हिदलोकिक्ये च कं आलधे होति पलत चा अनत पुना
पशवति तेना धंमदानेना

बारहवाँ अभिलेख

(३०) देवानंपिये पियदसि
(३१) लाजा षावापाषंडानि पवजितानि गहथानि व पुजेति दानेन विवधये च
पुजाये। नो चु तथा दाने वा पुजा वा देवानंपिये मनति अथा कित
शालावढि ना बहुविधा। तश चु इनं मुले अ वचगुति किति ति अतपशड
वा पुजा या पलपाशंडगलहा नो शया
(३२) अपकलनशि लहका वा शिया तगिनशिपकलनशि। पुजेतविय चु पल-
पाशडा तेन तेन अकालन। हेव कलत अतपाशडा वढं वढियति पलपाशड
पि वा अपकलेति। येहि केछ अतपाशड पुनाति
(३३) पलपाषड वा गलहति। षवे अतपाषंड भतिया वा किति। अतिपाषंड
दिपयेम षे च पुना तथा कलंतं। बाढतले उपहंति अतपाषंडषि। षमवाये
वु षाधु किति। अंनमनषा धंमं। पुनेषु वा षुषुषेय चाति। हेव हि
देवानं पियषा इछा किंति
(३४) सवपाषंड। बहुपुता वा कयानागा च हुवेयुति। ए च तत तत पषंना
ते हि वतविये। देवानंपिये नो तथा दानं वा पूजावा मनति। अथ किति
षालावढि शिया षवपाषंडति। वहुका चा एताठाये वियापटा धंममहा-
माता इथि धियखमहामाता वचभुमिवया अने वा निवयाया
(३५) इयं च एतिषा फले। यं अतपाषंडवढि चा होति धंमष चा दिपना।

तेरहवाँ अभिलेख

(३५) अठवषा भितितषा देवानंपियष पियदषिने लाजिने कलिग्या विजिता।
दियढमिते पानषतषहशे ये तफा अपवुढे शतषहषमिते तत हते बहुता-
वतके वा मटे। ततो पछा अधुना लधप कलिग्येषु तिवे धंमवाये

(३६) धमकामता धंमानुपथि चा देवानंपियषा । णे अथि अनुषये देवानंपियषा विजिनितु कलिग्यानि । अविजितं हि विजिनमने । एतता वध वा मतने वा अपवहे वा जनषा । षे बाढ वेदनियमुते गुलुमुते चा देवानंपियषा । इयं पि चु ततो गलुमतले देवानंपियषा

(३७) य तता वषति बामना व षमना अने वा पाषंड गिहिथा वा येषु विहिता एष अगभुति षुषुषा मातापितषुषुषा गुलुषुषा मितषंथुत षहायनातिकेशु दाषभटकषि षम्यापटिपति दिढभतित तेषं । तता होषति उपधाते वा वधं वा अभिलतानं वा । विनिखमने

(३८) येषं वापि षुविहिनानं षिनेहे अविपहिने एतानं मितशंथुतषहायनातिक्य-विषयनं पापुनात तता षे पि तानमेत्रा उपधाते होति । पटिभागे चा एष षवमनुषानं गुलुमते चा देवानंपियषा । नथि चा षे जनपदे यता-नथि इमे निकाया आनता योनेषु

(३९) वंह्मने चा षमने चा नथि । चा कुत्रापि जनपदषि यता नथि मनुषान एकतलषि पि पापडषि नोनाम पषादे । षे अवतके जने तदा कलिंगेषु लधेषु हते चा मटे चा अपत्रुढे चा ततो षते भागे वा षहषभागे वा अज गुलुमते वा देवानंपियषा

दक्षिणी सतह पर—

(१).........

(२).........

(३) ....येयु इछ ....

(४) षवभु.........षयम षमचलियं मदव ति । इयं वु मु.........

(५) देवानं पियेषा ये धंमविजये । षे च पुना लधे देवानं पि.........च

(६) षवेषु च अतेषु अषषु षि योजनषतेषु अत अंतियोगे नाम योन ला (जा) पलं चातेना

(७) अतियोगेना चतालि । लजाने तुलमये नाम अंतकिने नाम मका ना-

(८) म अलिक्यषुदले नाम निचं चोडषंडिया अवं तंषपंनिया हेवमेवा । हेव-मेवा

(९) हिदा लाजविशवषि योनकंबोजेषु नाभकनाभपंतिषु भाजपितिनिक्येषु

(१०) अधपालदेषु षवता देवानंपियषा धंमानुषथि अनुवंतंति । यत पि दुता

(११) देवानंपियषा नो यंति ते पि सुतु देवानं पिनंय धंमवुतं विधनं

(१२) धंमानुसथि धंमं अनुविधियं अ अनुविधियिसंअ चा । ये से लधे

(१३) एतकेना होति सवता विजये पितिलसे से । गधा सा होति पिति पिति धंमविजय

(१४) षि । लहुका वु खो सा पिति । पालंतिक्यमेवे महफला मनंति देवानंपिये

(१५) एताये चा अटाये इयं धंमलिपि लिखिता किति पुता पपोता में असु
(१६) नवं विजय म विजयतविय मनिषु षयकषि नो विजयषि खंति चाल। ह-
१७) दंडता चा लोचेतु तमेव चा विजयं मनतु ये धंमविजये। षे हिदलोकिक्य-पलल
(१८) किये। ष वा च क निलति होतु उयामलति। षा हि हियलोकिक्क पल-लोकिक्या।

चौदहवां अभिलेख

(१९) इयं धंमलिपि देवानं पियेना पियदसिना लजिना लिखा पिता अपि ये वा सुखि—
(२०) तेना अथि माझमेना अधि वियटेना। नो हि सवता सवे घटिते। महा-लके हि वि—
(२१) जिते बहु च लिखिते लेखापेशामि चेव निक्यं। अथि वा हेतापुन पुना लपि—
(२२) ते तष तषा अथवा मधुलियाये येन जने तथा पटिपजेया। षे षाया अत किछि अ
(२३) समति लिखिते दिषा वा षंखये कालंन वा अलोचयितु लिपिक लपलाधेन वा।

अभिलेख का हिन्दी अनुवाद—पूर्वोसतह

पहला अभिलेख

(१) यह धर्मलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी अशोक ने लिखवाये। इस स्थान पर किसी जीव की बलि न दी जावे। किसी प्राणी का वध न किया जावे।

(२) यहां इस प्रयोजन से समाज-उत्सव न हों। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार के सामाजिक उत्सवों में बहुत से दोष देखे हैं। कुछ ऐसे भी सामाजिक उत्सव हैं, जिनको देवताओं के प्रियदर्शी राजा ने अच्छा समझा है।

(३) देवताओं के प्रियदर्शी राजा अशोक की पाकशाला में पहले अनेकों हजारों प्राणी मारे जाते थे। परन्तु जबसे इस धर्मलेख को लिखवाया गया है, तबसे ये तीन ही प्राणी मारे जाते हैं—

(४) दो मोर और एक मृग। परन्तु इस मृग का भी वध निश्चित नहीं है। इन तीन प्राणियों का वध भी अब नहीं किया जायेगा।

दूसरा अभिलेख

(४) देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने जिन राज्यों को जीता है, उनमें

सर्वत्र तथा उसके राज्य की सीमाओं पर जो चोल, पाण्ड्य, सातियपुत्र, केरलपुत्र और ताम्रपर्णी तक और

(५) यवन राजा अन्तिओक के राज्य में जो राजा हैं तथा उसके बाद अन्तिओक के समीप राज्यों में सामन्त राजा हैं, उन सब देशों में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है– मनुष्यों की चिकित्सा का और पशुओं की चिकित्सा का। और मनुष्यों की चिकित्सा की उपयोगी तथा पशुओं की चिकित्सा की उपयोगी जो ओषधियां वहां नहीं मिलतीं

(६) उनको सब जगह वहां भिजवाया है और उगवाया है। इसी प्रकार जो मूल और फल वहां नहीं थे, उनको सब जगह वहां भिजवाया है और लगवाया है। मार्गों पर मनुष्यों और पशुओं के उत्तम उपभोग के लिये वृक्षों को लगवाया है और कुओं को खुदवाया है।

तीसरा अभिलेख

(६) देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है—

(७) अपने राज्याभिषेक के १२ वें वर्ष में मेरी यह आज्ञा है। मेरे द्वारा विजय किये गये सब स्थानों पर राजुक और प्रादेशिक (सामन्त राजा और अन्य प्रादेशिक कर्मचारी) प्रत्येक पांचवें वर्ष में राज्य में धर्म के प्रचार के लिये तथा दूसरे प्रजाहित के कार्यों के लिये जाते रहें। यह अच्छा है कि

(८) माता-पिता की सेवा करो। मित्रों, परिचितों और सम्बन्धियों को तथा ब्राह्मणों और श्रमणों को दान देना और पान देना अच्छा है। पशुओं का वध न करना अच्छा है। मितव्यय और अल्प संग्रह करना अच्छा है। परिषद् (अमात्य-परिषद्) भी इस प्रकार के आदेश कर्मचारियों को दे। वे नियमों के अनुसार, न्याय के अनुसार अपने कर्त्तव्यों का पालन करें।

चौथा अभिलेख

(९) अचिन्तनीय बहुत समय बीत गया है। सैंकड़ों वर्षों से मदिरा-पान, जीवों की बलि देना, प्राणियों की हिंसा, सम्बन्धियों के प्रति दुर्व्यवहार, श्रमणों और ब्राह्मणों के प्रति अनादर के भाव बढ़ते गये हैं। अतः आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने, जो धर्म का आचरण करने वाला है, भेरियों के घोष (युद्धघोष) के स्थान पर धर्म की घोषणा में मन लगाया है।

(१०) इससे प्रजाजनों को दिव्य हाथियों, अग्निस्कन्धों (प्रकाशपुञ्जों) और रथों के तथा अन्य दिव्य पदार्थों के दर्शन होने लगे हैं। इस प्रकार के कार्य बहुत वर्षों से पहले कभी नहीं हुये थे। इस प्रकार से आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्म के उपदेशों से पशुओं की हिंसा समाप्त हो गई है, जीवों के प्रति हिंसा समाप्त हो गई है।

(११) ब्राह्मणों और श्रमणों के प्रति सत्कार का भाव बढ़ रहा है। माता-पिता के प्रति सत्कार का भाव बढ़ रहा है। इस प्रकार के तथा अन्य अनेक प्रकार के धर्माचरणों का प्रचार बढ़ रहा है। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा इस धर्मप्रचार को बढ़ाते रहेंगे। इसके बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती और पड़नाती भी

(१२) इस धर्माचरण को सृष्टि के प्रलय पर्यन्त बढ़ाते रहेंगे। वे धर्म और शील का पालन करते हुये धर्म का उपदेश करते रहेंगे। धर्म के अनुशासन का यह कार्य सबसे श्रेष्ठ है। शील से रहित व्यक्ति धर्म का पालन नहीं कर सकता। इसकी रक्षा करना और वृद्धि करना अच्छा कार्य है। इसी कारण से इस लेख को लिखवाया गया है।

(१३) इसके बाद भी मेरे उत्तराधिकारी इस धर्म के प्रचार को बढ़ाते रहें और वे इसको हीन होता हुआ न देखें। राज्याभिषेक के १२ वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस लेख को लिखवाया है।

पांचवां अभिलेख

(१३) देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा कहते हैं—भलाई का कार्य करना कठिन है। जो व्यक्ति भलाई का कार्य प्रारम्भ करता है, वह कठिन कार्य करता है। मैंने बहुत सारे भलाई के कार्य किये हैं। इसके बाद भी मेरे पुत्र और नाती और

(१४) उनके बाद इस वंश के उत्तराधिकारी यदि सृष्टि के प्रलय काल तक इस धर्म का अनुसरण करते रहेंगे तो पुण्य के भागी होंगे। यदि वे इसको अंशमात्र भी हीन करेंगे तो पाप के भागी होंगे। पाप को तो निश्चय ही जड़ से नष्ट कर देना चाहिये। पहले समय में धर्ममहामात्र नाम के अधिकारी नहीं होते थे। तो मैंने अपने राज्य के १३ वें वर्ष में धर्ममहामात्रों को नियुक्त किया है। सभी मतों को मानने वालों के मध्य में

(१५) वे धर्म की रक्षा करने के लिये और धर्म की वृद्धि करने के लिये, धर्माचरण करने वालों के हित तथा सुख के लिये नियुक्त किये गये हैं।

यवनों कंबोजों तथा गान्धार निवासियों तथा अन्य भी प्रदेशों के लोगों के मध्य, जो अपरान्त के निवासी हैं, उनको नियुक्त किया गया है। उनको छोटे बड़े कर्मचारियों, श्रेष्ठ पुरुषों, अनाथों और वृद्धों के हित के लिये और सुख देने के लिये तथा धार्मिक व्यक्तियों की रक्षा के लिये नियुक्त किया गया है। इनका कर्त्तव्य है कि ये लोगों को इस लोक के बन्धनों से छुटकारा दिलायें, मोक्ष प्राप्त करायें। इन्हीं कार्यों के लिये तथा राजकीय अनुदानों की देखरेख के लिये उनको नियुक्त किया गया है।

(१६) विपत्ति में पड़े हुए दुःखियों तथा वृद्धों को वे कष्टों से मुक्त करावें। वे चाहे यहाँ राजधानी में रहते हों, मेरे अन्तःपुर में रहते हों, मेरे भाई हों या बहनें हों, या अन्य सम्बन्धी हों, उन सबके लिये सर्वत्र उनको नियुक्त किया गया है। मेरे विजित राज्य में वे धर्ममहामात्र सब स्थानों पर उन लोगों से सम्पर्क करते रहें, जो धर्म के अनुशासन का पालन करते हैं, दानदाता हैं और धार्मिक हैं। इसी प्रयोजन के लिये

(१७) इस धर्मलिपि को लिखवाया गया है कि यह चिरस्थायी रहे और मेरी प्रजा इसका अनुसरण करे।

छठा अभिलेख

(१७) देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा इस प्रकार कहते हैं। बहुत समय व्यतीत हो गया है। पहले किसी समय, किसी कार्य में संलग्न रहते हुए राजा को विवरण देने की सुविधा या समय नहीं था। इस कारण मैंने ऐसा किया है। सभी समयों में, चाहे मैं भोजनशाला में होऊँ

(१८) चाहे अन्तःपुर में होऊँ चाहे एकान्त में मन्त्रणागृह में होऊँ, चाहे अश्व पर सवार होऊँ या उद्यान में होऊँ, सब स्थानों पर सूचना देने वाले सेवक प्रजाजनों सम्बन्धी कष्टों की सूचना मुझे देवें। मैं सभी प्रजाजनों का कार्य सब समयों में करता हूँ। मैं मौखिक रूप में जिस भी दान देने की या राजाज्ञा की घोषणा करता हूँ, अथवा पुनः मेरे महामात्र लोग

(१९) घोषित करते हैं, उसके सम्बन्ध में लोक में या परिषद् में कोई विवाद या विरोध उपस्थित होता हो तो उसकी सूचना मुझको किसी भी समय सब स्थानों पर दी जावे। यह मेरी आज्ञा है। सबका कल्याण करना मेरा कर्तव्य है। पुनः इन सब कार्यों का मूल मन्त्र यह है कि सब इसके लिये प्रयत्न करें

(२०) और कार्य को पूरा किया जावे। सबकी भलाई करने से अच्छा अन्य कार्य नहीं है। और मैं जो भी थोड़ा सा प्रयत्न करता हूँ, वह प्राणियों के ऋण से उऋण होने के लिये करता हूँ, जिससे कि वे इस लोक में सुख को प्राप्त करें और परलोक जाकर स्वर्ग को प्राप्त करें। इसी प्रयोजन से इस धर्मलिपि को लिखवाया गया है। जिससे कि यह चिर-काल तक स्थायी रहे और मेरे पुत्र, स्त्री, पौत्र और प्रपौत्र सब लोक का कल्याण करने के लिये इसका पालन करते रहें।

(२१) पूरा प्रयास किये विना इस कार्य को सफल नहीं किया जा सकता।

सातवाँ अभिलेख

(२१) देवताओं के लिये प्रिय प्रियदर्शी राजा यह चाहते हैं कि किसी भी मत के अनुयायी इच्छानुसार सुविधा से रहें। वे सभी समयों में सबके भावों को शुद्ध रखना चाहते हैं। मनुष्यों की रुचियाँ और इच्छायें भिन्न-भिन्न होती हैं। उनमें से कुछ पूर्ण रूप से अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हैं और कुछ अल्प अंश में कर्तव्य को निभाते हैं। दान देने के लिये जिनके पास प्रचुर धन नहीं है।

(२२) वे भी यदि संयम से जीवन बितायें, भावों को शुद्ध रखें, कृतज्ञ रहें और दृढ़ भक्ति रखें तो उनका भी कल्याण हो सकता है।

आठवाँ अभिलेख

(२२) बहुत सा समय व्यतीत हो गया है। देवताओं के प्रिय विहार यात्राओं पर जाते थे। वे इनमें शिकार करते थे और अन्य प्रकार से आमोद-प्रमोद करते थे। परन्तु देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक के दस वर्ष पश्चात् संबोधि (ज्ञान के लिये) यात्रा की।

(२३) इसलिये यह धर्मयात्रा की गई। इसका हेतु है कि इसमें श्रमणों और ब्राह्मणों के दर्शन होते हैं तथा उनको दान दिया जाता है। जनपद-वासियों का दर्शन होता है, उनको धर्म के अनुशासन का उपदेश दिया जाता है और उनके धर्म सम्बन्धी क्रियाकलापों को पूछने का अवसर मिलता है। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी इन सब बातों में, आनन्दमयी धर्म यात्राओं को करने में अपना सौभाग्य समझते हैं।

(२४) देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा कहते हैं। मनुष्य ऊँचे-नीचे अनेक प्रकार के मंगल कार्य करता है। रोग होने पर, निमन्त्रण मिलने पर, विवाह में, सन्तान उत्पन्न होने पर, प्रवास में जाने पर और इसी प्रकार के

अन्य अवसरों पर अनेक मंगल कार्य करता है। इन हेतुओं से मातायें बहुत से अनेक प्रकार तुच्छ और निष्प्रयोजन ही मंगल कार्य करती हैं।

(२५) मंगलकारी कार्य तो निश्चय से करने चाहियें। परन्तु वे निश्चय से अल्प फलदायक होते हैं। परन्तु ये धर्म सम्बन्धी मंगल कार्य निश्चय से महान् फल देने वाले होते हैं। इसका हेतु यह है कि इन धर्म सम्बन्धी मंगल कार्यों में दासों और नौकरों के साथ उचित व्यवहार होता है, गुरुजनों का सत्कार होता है, प्राणियों के प्रति संयम का ऐसे व्यवहार होता है, श्रमणों और ब्राह्मणों को दान दिया जाता है और ही अन्य कार्य किये जाते हैं। ये सब कार्य धर्मसम्बन्धी कार्य हैं। पिता, पुत्र, भाई,स्वामी, मित्र और परिचितों को यही उपदेश देना चाहिये कि–

(२६) यह कार्य बहुत अच्छा है। यह श्रेष्ठ मंगल कार्य है। यह जीवन भर करना चाहिये। इसको मैं अवश्य करूँगा। इससे भिन्न अन्य प्रकार के मंगल कार्य संशय से भरे होते हैं। इनसे कार्य की सिद्धि हो या न हो, ये इस लोक के कल्याण के लिये ही होते हैं। पुनः ये धर्म सम्बन्धी मंगल कार्य तो सभी समयों के लिये हितकारी हैं। यदि इनसे इस लोक में सिद्धि न भी प्राप्त हो तो वे पुनः परलोक में अनन्त फल को सिद्ध करने वाले होते हैं। यदि इनसे इस लोक में भी सिद्धि प्राप्त होती है, तो दोनों लोकों (इहलोक और परलोक) में

(२७) इससे कार्य की सिद्धि होती है। अर्थात् इस धर्म मंगल से इस लोक में कार्य की सिद्धि होती है और परलोक में अनन्त फल प्राप्त होते हैं।

दसवाँ अभिलेख

(२७) देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश को अथवा कीर्ति को बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। वे यश अथवा कीर्ति की केवल मात्र इतनी ही इच्छा करते हैं कि लोग उनके धर्म के पालन के उपदेशों को सुनें और उसका सेवन करें तथा उस धर्म का अनुसरण करें। इसी हेतु से देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी

(२८) राजा यश की अथवा कीर्ति की कामना करते हैं। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा जो कुछ भी प्रयत्न या कार्य करते हैं, वह सब परलोक के लिये ही करते हैं; जिससे कि सब प्रजाजनों की दुर्गति से रक्षा हो सके। यह दुर्गति होना ही सबसे बड़ा पाप है। विना किसी प्रयत्न

को करने और विना किसी त्याग को करने के, यह सारा कार्य बहुत अधिक कठिन होता है। इस कारण निश्चय ही

(२६) समृद्ध जनों के लिये यह बहुत कठिन होता है।

ग्यारहवाँ अभिलेख

(२६) देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा इस प्रकार कहते हैं। धर्म के दान (धर्मोपदेश) से बड़ा अन्य कोई दान नहीं है। धर्म के परिचय से बड़ा अन्य परिचय नहीं है। धर्म के सम्बन्ध से बड़ा अन्य सम्बन्ध नहीं है। अतः इन दासों और सेवकों से उचित व्यवहार करना चाहिये। माता-पिता की सेवा करनी चाहिये। मित्रों, परिचितों, सम्बन्धियों, श्रमणों और ब्राह्मणों को दान देना चाहिये।

(३०) प्राणियों की हिंसा नहीं करनी चाहिये। यही करना श्रेष्ठ है। इस प्रकार ही करना चाहिये। इस प्रकार का उपदेश पिता को, पुत्र को, भाई को, स्वामी को, मित्र को, परिचित को और पड़ौसी को देना चाहिये। यह करना ही श्रेष्ठ है। इस प्रकार का कार्य ही इस लोक में कल्याणकारी है। इस प्रकार के धर्मदान करने से मनुष्य पुनः परलोक में अनन्त पुण्यों को प्राप्त करता है।

बारहवाँ अभिलेख

(३०) देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी

(३१) राजा सभी मतों के अनुयायियों का, परिव्राजकों का, गृहस्थों का विविध प्रकार की पूजाओं से और दान से सत्कार करते हैं। परन्तु देवताओं के प्रिय यह मानते हैं कि दान और सत्कार की अपेक्षा सब मतों के अनुयायियों की आत्मिक उन्नति का महत्त्व अधिक है। यह आत्मिक उन्नति अनेक प्रकार की है। परन्तु इस उन्नति का मूल वाणी का संयम है। इससे विना कारण ही अपने मत की स्तुति और दूसरे के मत की निन्दा नहीं होती।

(३२) अपने मत की स्तुति आदि को दूसरे अवसरों पर किया जा सकता है। परन्तु इन अवसरों पर भी दूसरे मतावलम्बियों का आदर करना चाहिये। इस प्रकार करने से मनुष्य अपने मत की उन्नति करता है। और साथ में दूसरे के मत का भी उपकार करता है। इसके विपरीत कार्य करने से अपने ही मत को हानि पहुँचती है

(३३) और दूसरे के मत की भी हानि होती है। यदि कोई मनुष्य अपने मत के प्रति श्रद्धा और विश्वास रखने के कारण अपने मत की उन्नति

करने की इच्छा से अपने मतावलम्बियों का तो आदर करता है, परन्तु दूसरे मतावलम्बियों को हानि पहुँचाता है, तो इस प्रकार का कार्य करने से वह अपने ही मतों को घोर हानि पहुँचाता है। अत: सबके एकत्रित होने पर सबके प्रति समुचित व्यवहार करना चाहिये। इससे मनुष्य अन्य मनुष्यों के धर्म को सुन सकता है और उनको जान कर सेवन कर सकता है। देवताओं के प्रिय की इस प्रकार की इच्छा है

(३४) कि सब मतावलम्बी बहुश्रुत हों और उनका जीवन पवित्र हो। अत: सब मतों के अनुयायियों को यह बात बतानी चाहिये कि देवताओं के प्रिय राजा सब मतालम्बियों की आत्मिक उन्नति के सदृश और उनके प्रति उदार दृष्टिकोण रखने के अतिरिक्त अन्य किसी दान या पूजा को नहीं मानते। इस प्रयोजन के लिये सब स्थानों पर सबके लिये अनेक धर्म महामात्र, स्त्री अध्यक्ष महामात्र, व्रजभूमिक और अन्य अनेक अधिकारी नियुक्त गिये गये हैं।

(३५) इन सबका उद्देश्य है कि सबके अपने मत की वृद्धि हो और सब धर्मों की उन्नति हो।

तेरहवाँ अभिलेख

(३५) राज्याभिषेक के आठवें वर्ष देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी ने कलिंग देश को विजय किया। इस युद्ध में १५०००० लोग कैद कर लिये गये और १००००० लोग मारे गये और बहुत से लोग नष्ट हो गये। इसके पश्चात् अब जीते हुए कलिंग देश में

(३६) देवताओं के प्रिय राजा धर्म का पालन करने, धर्म का कार्य करने और धर्म का उपदेश देने के लिये संलग्न हैं। देवताओं के प्रिय राजा को कलिंग देश को विजय करने का पश्चात्ताप है। एक अविजित राज्य को जीतने पर मनुष्यों का इतना वध, विनाश और बन्धन होता है। यह अत्यधिक पीड़ादायक है। अत: देवताओं के प्रिय इसको अत्यधिक दु:ख और सन्ताप को देने वाला समझते हैं। देवताओं के प्रिय के लिये इससे भी अधिक पीड़ादायक बात है

(३७) कि वहाँ उस विजित देश में ब्राह्मण, श्रमण और अनेक मतावलम्बी गृहस्थ रहते हैं। इन पर अपने वयोवृद्धों की सेवा का, माता-पिता की सेवा का और गुरुजनों की सेवा का भार रहता है। वे मित्रों, परिचितों, सहायकों, सम्बन्धियों, दासों और सेवकों के प्रति सद्व्यवहार करते हैं। उनका यह कार्य दृढ़ भक्ति से होता है। उनका युद्ध में

विनाश होता है, वध होता है या उनको क्षति पहुँचती है। वे अपने प्रिय लोगों से पृथक् हो जाते हैं।

(३८) सामान्य जीवन व्यतीत करने वाले सज्जन पुरुषों के स्नेही, मित्र, परिचित, सहायक और सम्बन्धी कष्ट पाते हैं। उन सज्जन पुरुषों को यह कष्ट भी क्लेशित करता है। उन सज्जन पुरुषों को भाग्यवश यह सत्र जो कष्ट पहुँचता है, इससे देवताओं के प्रिय को बहुत अधिक सन्ताप हुआ है। यवन देशों के अतिरिक्त कोई ऐसा जनपद नहीं है, जहाँ

(३९) ब्राह्मण और श्रमण निवास न करते हों। इन जनपदों में कहीं भी कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ विविध मतों के अनुयायी न रहते हों तथा धर्म के प्रति अनुराग न रखते हों। अतः कलिंग के युद्धों में जितने लोग मारे गये हैं, नष्ट हो गये हैं या कैद कर लिये गये हैं, उनका सौवाँ भाग या हजारवाँ भाग भी देवताओं के प्रिय के लिये असह्य है।

दक्षिणी सतह पर—

(१) ....

(२) ....

(३) ....

(४) सभी जीवों के लिये .... संयम, समान व्यवहार, निःस्वार्थ भावना और दया की कामना करते हैं। किन्तु यह ....

(५) देवतओं के प्रिय के द्वारा धर्म विजय की जा रही है। देवताओं के प्रिय के द्वारा यह पुण्य किया जा रहा है।

(६) वह सीमावर्ती सब राज्यों में और उसके बाद ६०० योजन पर्यन्त विजय प्राप्त की गई है, जहाँ अन्तिओक नाम का यवन राजा है।

(७) अन्तिओक के राज्य से आगे भी, जहाँ चार अन्य शासक हैं—तुलमय, अंतकिन, मका (मग) और

(८) अलिक्यषुदल (अलिकसुन्दर)। इसी प्रकार से नीचे के राज्यों में—चोल, पाण्ड्य और ताम्रपर्णी तक यह धर्मविजय है। इसी प्रकार से

(९) अन्य राजाओं के शासनों के अन्तर्गत यवन, कम्बोज, नाभक, नाभपंति, भोज, पितिनक देशों में,

(१०) आन्ध्र पुलिन्द देशों में सब स्थानों पर देवताओं के प्रिय के धर्म की शिक्षाओं का पालन किया जाता है। और जहाँ भी दूत

(११) देवताओं के प्रिय के नहीं जाते हैं, वहाँ के लोग भी देवताओं के प्रिय के धर्म के प्रवचनों को, नियमों को

(१२) धर्म के अनुशासनों को और धर्म की आज्ञाओं को सुनते हैं। वे धर्म का पालन करते हैं। इस प्रकार

(१३) इस उपाय से सर्वत्र धर्मविजय होती है। उससे परस्पर प्रेम उत्पन्न होता है। धर्मविजय द्वारा मुझको वह प्रेम प्राप्त हुआ है।

(१४) देखने में वह प्रेम साधारण प्रतीत हो सकता है। परन्तु देवताओं के प्रिय यह मानते हैं कि यह प्रेम परलोक में महान् फल देने वाला है।

(१५) इस कारण यहाँ यह धर्मलिपि लिखवाई गई है कि मेरे पुत्र और प्रपौत्र

(१६) किन्हीं नवीन विजयों को जीतने का उद्योग न करें। उनको यदि नवीन विजय की कामना हो, तो भी उसको वे क्षमा कर दें।

(१७) अथवा वे लघु दण्ड दें। वे उस धर्मविजय को ही अपनी विजय समझें। यही विजय इस लोक में और परलोक में कल्याण करने वाली है।

(१८) यह धर्म का आचरण ही शासन की यथार्थ नीति है। यह इस लोक में और परलोक में कल्याण करने वाली है।

चौदहवाँ अभिलेख

(१९) इस धर्मलिपि को देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है। यह कहीं तो संक्षिप्त है,

(२०) कहीं मध्यम है और कहीं विस्तार से है। क्योंकि सब स्थानों पर सब धर्मलिपियों की एक-सी आवश्यकता नहीं है। महान् देश में

(२१) मैंने बहुत सी भूमि को जीता है, बहुत से लेख लिखवाये हैं और भविष्य में भी लिखवाऊँगा। इसी कारण बहुत सी बातें पुनः-पुनः कही गई हैं,

(२२) क्योंकि वे इस प्रकार से विषय में मधुर हैं कि लोग जीवन में उनका प्रयोग करें। और जो कहीं कोई बात

(२३) अधूरी लिखी गई है, तो उसमें स्थानविशेष के कारण लिपिकार का अपराध या असावधानी समझी जावे।

टिप्पणी—

अशोक के इस शिलालेख का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि

से बहुत महत्त्व है। यह कालसी के समीप मिला है। यह यमुना-टौंस सङ्गम से कुछ ऊपर कालसी से १.५ किमी० नीचे विशाल क्वाट्र्ज पाषाण पर टंकित है। अभिलेख की चट्टान १० फीट लम्बी, १० फीट ऊँची और ८ फीट चौड़ी है। पूर्वी पार्श्व को चिकना किया गया है तथा ५'×५.५' आकार में लेख खुदा हुआ है। इसमें ३६ पंक्तियाँ हैं। १० वीं पंक्ति के बाद नीचे के अक्षर कुछ बड़े होते गये हैं। दाहिनी पार्श्व के अभिलेख के ऊपर हाथी का चित्र अंकित है। इसके पैरों के मध्य में गजातमा पद अंकित है। इस पार्श्व में २३ पंक्तियाँ टंकित की गई हैं।

अभिलेख की ठीक पहचान होने से पहले इनको स्थानीय जन छत्रशिला (शुद्ध रूप चित्रशिला) कहते रहे थे। विशाल शिला के समीप अनेक कटे हुये पाषाण शिलायें तथा स्तम्भ बिखरे पड़े है। ये सब बौद्ध शैली के हैं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि यहाँ पहले कोई मन्दिर या विशिष्ट स्थान रहा होगा। एक स्तम्भ लगभग ६ फीट परिधि का तथा १० फीट ऊँचा है।

अशोक के इस अभिलेख को सबसे पहले १८६० ई० में मि० फारेस्ट ने देखा था। उस समय इस अभिलेख पर काई आदि जमा थी और यह अपाठ्य सा था। साफ करने पर यह संगमरमर के समान शुभ्र निकल आया। इसकी लिखावट में कहीं-कहीं अक्षर टूट से गये हैं। इसका कारण यह है कि जहाँ दरारे हैं या खुरदरा हैं, उस स्थान को छोड़ दिया गया था।

अशोक के इस अभिलेख को पहले एप्रिग्रापिका इण्डिका[1] और कार्पस इन्स्क्रिप्शिनम इण्डिकेरम[2] में प्रकाशित कराया गया। बाद में यह अनेक संग्रहों में प्रकाशित हुआ।

अभिलेख के लेखन से स्पष्ट है कि इसको अशोक के सिंहासनारूढ़ होने के १० वें और १२ वें वर्षों में लिखवाया गया था। अतः इसका समय २६६-२५७ ई० पू० है। इस अभिलेख मे अनुमान लगाया जा सकता है कि मौर्य साम्राज्य का विस्तार हिमालय के पर्वतीय प्रदेशों तक था। यह स्थान इस प्रदेश का प्रशासनिक केन्द्र भी रहा होगा। धर्मचक्र प्रवर्तन (बौद्ध धर्म का प्रचार) के लिये अशोक ने इसको बनाया होगा। यहाँ बौद्ध विहार भी रहा होगा। उसी के अनुरूप उस सम्राट् ने यहाँ इस अभिलेख को उत्कीर्ण कराया था।

---

१. एपिग्राफिका इण्डिका...खण्ड २, (१६०६ ई०) पृ० २४
२. कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम जि० । पृ० २७-४७

भद्रमित्र का मृण्मुद्रा अभिलेख

लिपि—ब्राह्मी

भाषा—संस्कृत

समय—विक्रम पूर्व द्वितीय शताब्दी

प्राप्ति स्थान—देहरादून जिले के अन्तर्गत ऋषिकेश के वीरभद्रेश्वर मन्दिर के समीप

मूल अभिलेख—

भद्रमित्रस्य द्रोणीघाटे

हिन्दी अनुवाद—

दून की घाटी में भद्रमित्र की सीमान्त प्रहरी चौकी

टिप्पणी—

इस अभिलेख का उल्लेख जयचन्द्र विद्यालंकार ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन पंजाब और उसका पास-पड़ौस' में किया है। ऋषिकेश से तीन किमी दक्षिण में गंगा के तट पर प्राचीन वीरभद्रेश्वर मन्दिर है। यहाँ भगवान् शिव का मन्दिर है। इसके समीप ही खुदाई करने पर प्राचीन भवनों के अवशेष मिले हैं। उक्त अभिलेख यहाँ मृण्मुद्रा के रूप में खुदाइयों में मिला हैं, जो ब्राह्मी तिपि में अंकित है। इस अभिलेख से विदित होता है कि किसी समय यहाँ सीमान्त चौकी थी। यहाँ से उत्तराखण्ड में प्रवेश करने का मार्ग था। उस युग में इस प्रदेश के राजा का नाम भद्रमित्र था, जिसने इस सीमान्त चौकी को स्थापित किया था। यह भी हो सकता है कि किसी राजा ने, जिसका नाम विदित नहीं है, भद्रमित्र नाम के नायक को इस सीमान्त चौकी पर नियुक्त किया था। खुदाई में जिस स्थान पर यह अभिलेख प्राप्त हुआ है, वहाँ अन्य भी पुरातत्त्व के लिये महत्त्वपूर्ण अवशेष प्राप्त हुये है। इनसे विदित होता है कि यह स्थान शिवपूजा का केन्द्र था।

—:o:—

शीलवर्मन् का इष्टिकालेख

लिपि—ब्राह्मी

भाषा—संस्कृत

समय—तीसरी शताब्दी ई०

प्राप्ति स्थान—अशोक के कालसी शिलालेख के सामने यमुना के बायें तट पर जगतग्राम

मूल अभिलेख—

सिद्धम् ओं

भाग—१

युगेश्वरस्याश्वमेधे युगशैलमहीपतेः ।
इष्टका वार्षगण्यस्य नृपतेश्शीलवर्मणः ।।

भाग—२

नृपतेर्वार्षिगण्यस्य पोणषष्ठस्य धीमतः ।
चतुर्थस्याश्वमेधस्य चिन्त्योऽयं शीलवर्मणः ।।

हिन्दी अनुवाद—

युगों के स्वामी, युगशैल पर्वतीय प्रदेश के राजा तथा वार्षगण्य गोत्र के शीलवर्मन् नाम के राजा के अश्वमेध यज्ञ की यह इष्टका स्थापित की गई है।

वार्षगण्य गोत्र के, पोण नामक राजा से छठी पीढ़ी के. बुद्धिमान् शीलवर्मन् राजा के चतुर्थ अश्वमेघ यज्ञ के अवसर पर यह चैत्य बनवाया गया है।

टिप्पणी—

शीलवर्मन् का यह अभिलेख मौर्य सम्राट् अशोक के कालसी अभिलेख के ठीक सामने यमुना के बायें तट पर जगतग्राम नामक स्थान पर प्राप्त हुआ है। यशवन्तसिंह कठोच का कथन है कि इस स्थान का नाम जगत ग्राम नहीं है, अपितु बाड़ावाला है।[1] इस अभिलेख को विक्रमादित्य की तीसरी शताब्दी का माना गया है। यहाँ शीलवर्मन् ने अश्वमेघ यज्ञ करने के लिये गरुडाकार वेदी (चैत्य) बनवाई थी। उसकी ईंटे यहाँ चारों ओर बिखरी पड़ी हैं।

---

१. मध्य हिमालय का पुरातत्त्व पृ० ६२

शीलवर्मन् के इस अभिलेख से विदित होता है कि यहाँ तीसरी शताब्दी वि० में शीलवर्मन् नाम का राजा हुआ था। उसका गोत्र वार्षगण्य था। उसके छठे पूर्वज का नाम पोण था। वह युग और युगशैल प्रदेश का राजा था। उसने कम से कम चार अश्वमेघ यज्ञ किये थे। इनमें कम से कम चौथा यज्ञ इसी स्थान पर किया गया था।

'महाभारत' के अनुसार वार्षगण्य एक प्राचीन कवि थे।[1] सांख्य-योग तथा वेदान्त दर्शन के ग्रन्थकारों ने उसका नाम आदर से लिया है। उनको वसुबन्धु का गुरु भी कहा गया है।[2] शीलवर्मन् उनके वंशज रहे होंगे। अभिलेख की लिपि के आधार पर इसका समय तीसरी शताब्दी विक्रमी निर्धारित किया गया है। छठी शताब्दी ई० के अन्तिम भाग में अंकित लाखागण्डल के शिवमन्दिर के ईश्वरा के अभिलेख में १२ राजाओं के नाम उद्धृत हैं।

शीलवर्मन् की छठी पीढ़ी का पूर्व पुरुष पोण था। कुछ इतिहासकारों ने अभिलेख में पोणषष्ठस्य के स्थान पर पनर्षष्ठस्य अथवा पूर्णषष्ठस्य पढ़ा है। परन्तु अधिक शुद्ध पाठ पोणषष्ठस्य ही माना गया है। डा० शिवप्रसाद डबराल का कथन है कि समुद्रगुप्त से पहले शासन करने वाले उत्तराखण्ड के छः राजाओं के नाम विदित हुये हैं। ये हैं—छत्रेश्वर, भानु, रावण, शिवभवानी, पोण और शीलवर्मन्। प्रमाणों के अभाव में इनके पूर्वापर सम्बन्ध का निर्णय करना कठिन ही है।[3]

शीलवर्मन् के इष्टिकालेख से विदित होता है कि उसके राज्य का नाम युग या युगशैलमही रहा था। इसमें युगशैलमही पद देश का सूचक है और युग नाम राजधानी का हो सकता है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि यह राज्य अम्बाला जिले की सरस्वती नदी से लेकर पूर्व में यमुना के परे तक फैला होगा।[4] युगशैलमही का यह भी अर्थ हो सकता है कि यह राज्य दो पर्वतों से घिरी हुई भूमि में रहा होगा। हम इसको ऊँचे हिमाच्छादित पर्वतों से लेकर शिवालक पर्वत-श्रेणी तक विस्तृत मान सकते हैं।

इस इष्टिकालेख को तीसरी शताब्दी विक्रमी के पूर्वार्द्ध का माना गया है। अश्वमेध यज्ञ कराने वाले शीलवर्मन् को पराक्रमी विजयी राजा होना चाहिये। कुछ समय बाद ही समुद्रगुप्त प्रतापी राजा हुआ। अतः यह उससे पहले ही हुआ होगा।

---

१. महाभारत—शान्तिपर्व ३१८. ५६

२. वासुदेव उपाध्याय : गुप्त साम्राज्य का इतिहास पृ० ११५-११६

३. उत्तराखण्ड का इतिहास भाग : ३, पृ० २७३

४. पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ७३

शीलवर्मन् ने गरुड़ाकार वेदी (चिति) बनाई थी। यहाँ की ईंटें कारीगरी से बनाई गई हैं। इससे सिद्ध है कि उस युग में प्रजाजन समृद्ध थे और शान्ति से रहते थे। इसी कारण शीलवर्मन् प्रचुर जन और धन के बल की अपेक्षा रखने वाले अश्वमेध यज्ञ को करने में सफल हो सका होगा। यहाँ की रचनाओं से उस युग के कला-कौशल के भी प्रनाण मिलते हैं। गरुडाकृति वेदी से प्रमाणित होता है कि यहाँ वैष्णव सम्प्रदाय का महत्त्व रहा होगा। भगवान् विष्णु और उनके वाहन गरुड की उपासना प्रचलित होने का अनुमान किया जा सकता है।

शीलवर्मन् के इन इष्टिकालेखों का वहुत अधिक ऐतिहासिक महत्त्व है तथा पुरातत्त्वविदों ने इस पर पर्याप्त ध्यान दिया है। अनेक ग्रन्थकारों ने इसको लिखा है तथा यह पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है।[1]

—:o:—

---

१. एन्शिएन्ट इण्डिया जि० ६, पृ० १४०-१४१
कीलहार्न : इंडियन एन्टीक्वेरी, जि० २५, पृ० १७८
इण्डियन आर्केओलोजी, १६५, ३-५१-ए
डी० सी० सरकार : सलेक्ट इण्डियन इन्स्क्रिप्शन्स जि० १, पृ० ६६
टी० एस० रामचन्द्रन : जे० ओ० आर०, XXI, पृ० १-३१, XXII, पृ० १००

देवप्रयाग का यात्री नाम अभिलेख

लिपि—ब्राह्मी

भाषा—संस्कृत

समय—दूसरी से पांचवीं शताब्दी ई०

प्राप्ति-स्थान—देवप्रयाग के रघुनाथ मन्दिर के पीछे के पाषाणों पर

मूल अभिलेख—

(१) मानपर्वतः
(२) मातृदत्तः
(३) मात्रि (तृ) चेटस्य
(४) ईश्वरदासः
(५) हिरण्य
(३) कटुकत्तः (भ)
(७) यज्ञ
(८) श्री गुहवर्मः
(६) ग्रहवम (र्म) आदित्यव (र्म्म)
(१०) आदित्य
(११) गुहीश्वरदत्तः
(१२) (श्रीमद्गु) हेश्वरदत्त
(१३) श्रीरुद्रवर्म (म) णः
(१४) स्कन्धदत्तः
(१५) स्कन्ददत्तः
(१६) रुद्रवृद्धिः
(१७) (अ) धिष्ठाणः
(१८) चतुर्व्य ( ) हः
(११) भद्रबलः

हिन्दी अनुवाद—

प्रस्तुत अभिलेख में केवल यात्रियों के नाम ही हैं, अतः अनुवाद का प्रश्न नही है।

टिप्पणी—

ऋषिकेश-बदरीनाथ मार्ग पर ऋषिकेश से ७० किमी ऊपर की ओर देवप्रयाग की स्थिति भागीरथी-अलकनन्दा सङ्गम पर है। यह ३०° १०° अक्षांश और ७८° ३७" देशान्तर पर अवस्थित है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई १५५० फीट है। यह तीन ओर से पर्वतों से घिरा है। देवप्रयाग का रघुनाथ मन्दिर बहुत प्राचीन है तथा इसका अधिक धार्मिक एवं पौराणिक महत्त्व है। इसके दर्शन के बहुत अधिक माहात्म्य कहे गये हैं।

रघुनाथ मन्दिर के पीछे खड़ी चट्टानें हैं तथा गुहायें भी हैं। इनमें वराहगुहा और शङ्कराचार्य गुहा अधिक प्रसिद्ध हैं। इन चट्टानों पर लगभग ४० नामलेख हैं। ये

तीन लिपियों— ब्राह्मी, अलंकृत ब्राह्मी, और देवनागरी लिपि में हैं। इनमें १६ नामों को अधिक महत्त्व दिया गया है तथा इनका ऐतिहासिक और पुरातात्त्विक महत्त्व है। इन अभिलेखों का समय ईसा की दूसरी से पांचवीं शताब्दी का समझा जाता है और ये विभिन्न समयों के हो सकते हैं। यात्री यहाँ जब देवप्रयाग में आते होंगे तो अपने नाम को अंकित कर देते होंगे। इस प्रकार प्रत्येक अभिलेख अलग-अलग समय का हो सकता है।

देवप्रयाग के इन यात्री नाम अभिलेख को सबसे पहले श्री बी० सी० छाबड़ा ने पढ़ा था और ये एफिग्राफिका इण्डिका में प्रकाशित हुये।[1] इसके बाद कुछ अन्य विद्वानों ने भी इन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया। ये सब तीर्थ-यात्रियों के नाम अभिलिखित हैं, जो विभिन्न समयों में यात्रियों ने अंकित किये थे। अतः इनको धार्मिक अभिलेख भी कहा जाता है। बी० सी० छाबड़ा कथन है कि ये सब नाम यात्रियों के ही नहीं हैं, अपितु स्थानों के भी हैं। उदाहरण के रूप में मान-पर्वत है।

बदरीनाथ के ऊपर माणा ग्राम है। वहाँ के पर्वत का नाम मानपर्वत है। है। तीर्थयात्री ने वहाँ तक आना था, अतः उसने वहाँ मानपर्वत अंकित कर दिया। यह भी हो सकता है कि देवप्रयाग के इस पर्वत को भी मानपर्वत कहा जाता रहा होगा। परन्तु यह बात कुछ जमती नहीं है। प्राचीन साहित्य में कुछ ऐसे व्यक्तिवाचक नाम उपलब्ध होते हैं, जिनके आगे पर्वत लगा है। जैसे तुङ्गपर्वत। अतः मानपर्वत भी किसी तीर्थयात्री का नाम रहा होगा।

यात्री नामावली में एक नाम चतुर्व्यूह है। यह पद बिष्णु का पर्यायवाची है। चतुर्व्यूह पद में विष्णु के चार नाम सम्मिलित हैं—वसुदेव सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। इसी प्रकार से अधिष्ठाण भी विष्णु का ही एक नाम है। यज्ञ पद भी विष्णु के पर्यायों में है। विष्णु के प्रति भक्ति के कारण यात्रियों ने ये नाम रखे होंगे।

कुछ नामों के आगे षष्ठी विभक्ति का सूचक स्य प्रत्यय लगा हुआ है। जैसे— मातृचेटस्य। प्राचीन समय में अनेक व्यक्ति हस्ताक्षरों में षष्ठी विभक्ति लगाते थे। जैसे महाराजश्रीदुष्यन्तस्य। हर्ष के बाँसखेड़ा ताम्रशासन में उनके नाम के आगे स्य लगा है–– "स्व हस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य"।

मातृचेट नाम प्राचीन साहित्य में परिचित सा है। बौद्ध कवि अश्वघोष को मातृचेट कहा गया है। परन्तु मातृचेट नाम भी अनेक व्यक्तियों के हो सकते

---

१. बी० सी० छाबड़ा : एपिग्राफिका इण्डिका खण्ड ३० (१९५३–५४) पृ० २४३–२४८

है। अश्वघोष कभी उत्तराखण्ड की यात्रा पर गया हो, इस बात का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

कुछ नाम दो बार आये हैं। स्कन्ददत्त दो बार है। ग्रहवर्मा और गुहवर्मा दो बार हैं। दोनों नामों को एक भी पढ़ा जा सकता है। परन्तु आवश्यक नही है कि यह एक ही व्यक्ति के नाम हैं। अनेक व्यक्तियों का एकसा नाम भी हो सकता है।

प्रायः यह परम्परा देखी जाती है कि व्यक्ति जब भी किसी प्रमुख स्थान पर, विशेष रूप से धार्मिक स्थान पर जाता है तो अपना कोई चिह्न वहां छोड़ जाना चाहता है। नाम से बढ़ कर स्मृति और क्या हो सकती है। तीर्थस्थानों पर, पत्थरों पर, दीवारों पर, फर्शों पर या किसी अन्य स्थान पर ये नाम अंकित देखे जा सकते हैं। प्राचीन समय में इन तीर्थयात्रियों ने बदरीनाथ धाम की यात्रा के समय मध्य में अवस्थित देवप्रयाग नाम के महत्त्वपूर्ण तीर्थ में अपने नाम अंकित कर दिये हैं, तो यह स्वाभाविक ही है।

इस अभिलेख से यह प्रमाणित हो जाता है। कि ईसवी सदी की प्रारम्भिक शताब्दियों में भी उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा लोकप्रिय थी। मार्ग की कठिनाइयों और कष्टों की परवाह न करते हुये ये धार्मिक आस्था वाले दृढ़व्रती तीर्थयात्री आत्मा की शान्ति के लिये परमेश्वर की खोज में हिमालय के दुर्गम प्रदेशों में अवश्य जाते थे।

—:o:—

लाखामण्डल का छागलेश अभिलेख

लिपि	—	ब्राह्मी
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	पाँचवीं शताब्दी ई०
प्राप्तिस्थान	—	लाखामण्डल

मूल अभिलेख—

पंक्ति १—सिद्धम् ।। नत्वा नरेन्द्रतनया (म्) परि (हा) स क·········˘······
(पशुप) तेर्—अतिचारुरूपा (म्) (१*) – – ˘ – – क (त्वा) –

पंक्ति २—गुण-विस्तर-संप्र (सं) गाद=देवे (न्द्र)···˘˘ ···˘˘ (च) क्षुर्=
अमिं (न) (१*) (आ) सीत्=पुरा नरपति (र्-जन)—

पंक्ति ३—(य) दास-नामा तस्य=आत्मजश=च नृपति (:) ˘˘–˘ – (१*)
तस्माद्=गु (ह) ˘ (श) इति क्षितिपो ब (भ्) भूव

पंक्ति ४—तस्माद्=अ (भू) द्=अचल इत्य्=अवनिपतिश्=च ।। (२*)
(जज्ञ) ˘ –˘ – – – – तेह प्र ˘ –˘ – – – – –

पंक्ति ५—(गि) श्=छागलेशदास (१*) रुद्रेशदास इति तनयश्=च जज्ञे
तस्माच्=च (रुद्र) नृपतेश्=(केतुः ।।) (३*)

पंक्ति ६—देव्याम्=अजेश्वरनृपाद्=गुणवाम् (वान्) गुणा (याम्) – –˘– –
हुतभुजाम्=अधिपाज्=जयन्तः (१*) – –˘– – –˘˘˘

पंक्ति ७—प्र ˘˘˘ – – – ˘˘ – । – ˘˘˘ (पूर्ण)–चन्द्रः ।। (४*) यो=सौ
प्रभु (:)·········

हिन्दी अनुवाद—

सिद्धम् ।। पशुपति शिव का परिहास करने वाली, अत्यन्त सुन्दर रूप वाली, पर्वतपुत्री पार्वती को नमस्कार करके देवेन्द्र के समान पराक्रमी राजाओं के गुणों का विस्तार से मैं कथन कर रहा हूँ । जयदास नाम का राजा पहले समय में हुआ था । उसका पुत्र एक·········राजा हुआ । उसका पुत्र गुहेश नाम का राजा हुआ । उसका पुत्र अचल नाम का राजा हुआ । उसका पुत्र······················ । उसका पुत्र छागलेशदास हुआ और छागलेशदास का पुत्र रुद्रेशदास हुआ । उस रुद्रेशदास का पुत्र छागलकेतु नाम का राजा हुआ । इस अजेश्वर राजा छागलकेतु की गुणा (गुणवती) नामक रानी में एक पुत्र इस प्रकार हुआ, जैसे कि देवताओं के राजा का पुत्र जयन्त

हुआ था। वह छागलकेतु राजा प्रजावत्सल था, पूर्णचन्द्र के समान सुन्दर था और सबका प्रभु था।

टिप्पणी—

देहरादून जिले की चकरौता तहसील में चकरौता से २५ मील पूर्व में यमुना और मोरद गाड के सङ्गम पर लाखामण्डल नाम का प्राचीन स्थान है। यहाँ अनेक प्राचीन मन्दिरों के अवशेष और मूर्तियाँ मिली हैं। प्रतीत होता है कि इनमें बहुत तोड़-फोड़ भी की गई है। कहा जाता है कि रुहेला आक्रान्ताओं ने गढ़वाल के अनेक मन्दिरों और मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट किया। इसी आक्रमण में यहाँ भी तोड़-फोड़ हुई होगी।

लाखामण्डल में एक टूटे शिवतन्दिर में एक विशाल शिला पर यह अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह शिला २२"×१७·५" आकार की है। इस पर ११"×१३" स्थान पर यह लेख उत्कीर्ण है। मूल रूप में इस लेख में २० पंक्तियाँ थीं। परन्तु इनमें से अधिकांश मिट गई हैं। इनमें भी पहली ६ पंक्तियाँ कुछ अधिक स्पष्ट हैं। ये कुछ पढ़ी जा सकती हैं। सातवीं पंक्ति के भी कुछ अक्षर पढ़े जा सकते हैं। उसके बाद की पंक्तियाँ बिलकुल अपाठ्य हैं। छः पंक्तियों में भी बहुत सा अंश अपाठ्य हो गया है।

अभिलेख की लिपि ब्राह्मी और भाषा संस्कृत है। इसमें वसन्ततिलका छन्दों का प्रयोग हुआ है। इस अभिलेख से विदित होता है कि इस प्रशस्ति का लिखवाने वाला राजा छागलकेतु (छागलेशकेतु) इस पर्वतीय प्रदेश पर पाँचवीं शताब्दी ई० में राज्य करता था।

लाखामण्डल के इस अभिलेख के सम्बन्ध में श्री बी० सी० छावड़ा ने लिखा है कि[1] दिसम्बर १९४३ ई० में प्रान्तीय राजकीय म्यूजियम के प्रबन्धक वासुदेवशरण अग्रवाल ने उनको लाखामण्डल अभिलेख की एक प्रतिकृति दी थी। वे वहाँ गये थे और वहाँ से इस अभिलेख की प्रतिकृति तैयार करा कर लाये थे। इससे ५० वर्ष पहले डॉ० बूलर ने ईश्वरा के अभिलेख की प्रतिकृति लाखामण्डल से प्राप्त की थी। उसने लिखा था कि वहाँ एक और भी अभिलेख है। सम्भवतः वह वही छागलेश अभिलेख होगा।

जैसे कि पहले लिखा जा चुका है कि यह अभिलेख ११"×१३" आकार का है और इसमें २० पंक्तियाँ हैं। पहली पंक्ति में सिद्धम् पद बाहर निकला हुआ है। केवल छः पंक्तियाँ और सातवीं पंक्ति के कुछ अंश पढ़े जा सकते हैं। इनमें भी अनेक

१. जनरल आफ यू० पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी, जुलाई १९४४ में श्री बी० सी० छाबड़ा का लेख पृ० ८९–९०।

अक्षर अपाठ्य हैं। शेष पंक्तियाँ बिल्कुल अपाठ्य हैं। यदि किसी प्रकार मिटे अक्षरों को उभारा जा सके, तो इस क्षेत्र के प्राचीन इतिहास की बहुत कुछ जानकारी मिल सकती है। इसके साथ ही पढ़े जा सकने वाले अक्षरों के मध्य अपाठ्य अक्षरों को निर्धारित करने में भी कल्पना शक्ति का सहारा लिया सकता है।

अभिलेख से प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री यद्यपि स्पष्ट नहीं है, तथापि इससे कुछ अज्ञात शासकों के नाम अवश्य जाने जा सकते हैं। इस अभिलेख में पहले दो श्लोकों में पार्वती और पशुपति की वन्दना है तथा आगे के श्लोक राजाओं की वंशावलि पर प्रकाश डालते हैं। शिवप्रसाद डबराल ने इनको इस प्रकार उद्धृत किया है[1]—

संख्या	नाम	उपाधि
१	जयदास	नरपति
२	?	नृपति
३	गुहेश	क्षिपति
४	अचल	अवनिपति
५	?	?
६	छागलेशदास	?
७	रुद्रेशदास	नृपतेश्
८	छागलेश (केतु)	अजेश्वर, नृप

जयदास के पुत्र का नाम अपाठ्य है। अचल और छागलेशदास के मध्य में भी कोई राजा अवश्य हुआ है, परन्तु उसका नाम पढ़ा नहीं जा सका है। छागलेशकेतु में छागलेश पद भी अपाठ्य हो गया है। केवल अनुमान से ही इसको जाना जा सकता है। छागलेशकेतु की रानी के लिये गुणायाम् पद है। सम्भवतः उसका पूरा नाम गुणवती रहा होगा। उसके पुत्र का नाम भी अपाठ्य हो गया है। उसकी उपमा इन्द्र-पुत्र जयन्त से दी गई है।

प्रतीत होता है कि आगे की पंक्तियों में कवि ने छागलेशकेतु के गुणों और कार्यों की प्रशस्ति लिखी होगी। परन्तु वे सब पंक्तियाँ अपाठ्य हो चुकी हैं।

प्रशस्ति में उल्लिखित राजाओं की यथार्थ पहचान नहीं हो सकी है। इस वंश का संस्थापक जयदास रहा होगा तथा छागलेशकेतु इसकी आठवीं पीढ़ी में हुआ होगा। पाँचवीं शताब्दी ई० का अभिलेख होने से यह राजा गुप्त वंश के ह्रास के

---

१. उत्तराखण्ड का इतिहास भाग ३।

काल में हुआ था। गुप्तों की शक्ति क्षीण हो जाने पर यह उस प्रदेश का स्वतन्त्र शासक हो गया था।

इस छागलेश अभिलेख से उस समय के प्रशासन, शिक्षा तथा धर्म के सम्बन्ध में कुछ जानकारी मिल सकती है। उस समय राज्य में शान्ति और समृद्धि रही होगी। कवियों को राज्य का आश्रय प्राप्त होता था। संस्कृत का पठन-पाठन वृद्धि पर था तथा संस्कृत में काव्य की रचना की जाती थी। राजकीय भाषा भी संस्कृत रही होगी। शिव-पार्वती का पूजन बहुत अधिक था। लाखामण्डल में शिव के प्रमुख देवता होने पर भी अन्य देवताओं का पूजन भी किया जाता था। वहाँ अन्य देवताओं की भी मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। वास्तुकला का अद्भुत विकास हुआ था। मन्दिरों और मूर्तियों की रचना में रमणीय कला के दर्शन होते हैं। अन्य भी रचनायें उस युग की वास्तुकला को अभिव्यक्त करती हैं। मन्दिर से यमुना तक सुरङ्ग का निर्माण हुआ।

किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि दुर्योधन ने पाण्डवों को यहीं लाखामण्डल भेजा था। उसने लाख का महल बनवा कर उनको जला देने का प्रयास किया था। पाण्डव इस सुरङ्ग के मार्ग से निकल गये। समीप ही चकरौता नगर है। यह उस समय एकचक्रा नगरी थी, जहाँ पाण्डवों ने आश्रय लिया।

—:०:—

सिरोली का सर्ववर्मन् का अभिलेख

लिपि	—	ब्राह्मी
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	छठी शताब्दी ई०
प्राप्तिस्थान	—	मण्डल (गोपेश्वर) से अनसूयादेवी मार्ग पर १.५ किमी दूर

मूल अभिलेख[1]—

१. महाराजाधिराज-श्री पर–
२. मेश्वर सर्ववर्मन-पाद-अनुध्यात–
३. श्रीमहालय-वृद्धेश्वर-देव–
४. कुल-कर्षक-क्षत्रिय-न–
५. र वर्मन-माता-पित्रोरात्मन–
६. श्च पुण्य अप्यानय स्थिता-पा–
7. पनिय-ससंग्रह कृता ।।

हिन्दी अनुवाद—

महाराजाधिराज श्री परमेश्वर सर्ववर्मन के चरणों का ध्यान रखने वाले श्री महालय वृद्धेश्वर देवकुल कर्षक कुल के क्षत्रिय नरवर्मन ने माता-पिता तथा अपने पुण्यों की वृद्धि के लिये जल का संग्रह किया । अर्थात् जलाशय बनवाया ।

टिप्पणी—

सिरोली का अभिलेख गोपेश्वर से १६ किलोमीटर दूर है। गोपेश्वर से १४.५ किमी० दूर मण्डल चट्टी है । यहाँ से अनसूयादेवी का मार्ग जाता है । इस पैदल मार्ग से १.५ किमी० चलने पर सिरोली ग्राम है और वहाँ से १ किमी० दूर अनसूयादेवी है ।

सिरोली अभिलेख मार्ग के बाँयी ओर एक चट्टान पर उत्कीर्ण है । अभिलेख ५५ × ४० सेंटीमीटर आकार में उत्कीर्ण है । इसके अक्षर लगभग ३ सेंटीमीटर मोटाई के हैं । इसमें ७ पंक्तियाँ हैं । इस लेख से विदित होता है कि महाराजाधिराज श्री परमेश्वर सर्ववर्मन के सेवक नरवर्मन ने यह जलाशय अपने माता-पिता की स्मृति में बनवाया था । नरवर्मन ने वृद्धेश्वर नामक देवकुल (मन्दिर) का भी निर्माण कराया था ।

---

१. एपिग्रापिका इण्डिका वो० ३८, भाग २, संख्या ११, अप्रैल १९६९, पृ० ५७–५८ ।

इस अभिलेख को छठी शताब्दी ई० का माना गया है। यह समय सम्राट् हर्षवर्धन से कुछ पहले का है। स्थानीय जन इस अभिलेख को ब्रबराला नाम से कहते हैं।

सिरोली अभिलेख की सूचना सबसे पहले १९६६–६७ ई० में इण्डियन आर्केओलोजी के "रिव्यू आर्केओलोजी" में छपी थी। इसके बाद एपिग्रापिका इण्डिका वो० ३८ भाग २ अप्रैल १९६९ में पृ० ५७–५८ पर यह प्रकाशित हुआ। इस अभिलेख को श्री जी० एस० गाई ने मैसूर से लिखा था[1]।

डा० गाई ने लिखा है कि मौखरी नरेश सर्ववर्मन ५७६–५८० ई० में हुआ था। उसका पुत्र अवन्तिवर्मन था। उसका दूसरा पुत्र नरवर्मन रहा होगा।

इस अभिलेख से गढ़वाल के प्राचीन इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है और अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का पता लगता है। सर्ववर्मन का उल्लेख कांगड़ा जिले में सतलज नदी के किनारे नृमुण्ड (एक देवकुल ग्राम) में प्राप्त ताम्रपत्र में हुआ है। यद्यपि आर० सी० मजूमदार और कुछ अन्य विद्वान् इस सर्ववर्मन को मोखरी वंश का नहीं मानते, तथापि शिवप्रसाद नैथानी का कथन है कि नृमुण्ड का सर्ववर्मन और सिरोली अभिलेख में वर्णित सर्ववर्मन एक ही हैं। तथा वह मौखरी वंश का है। विजय यात्रा करते हुये यह सर्ववर्मन कांगड़ा में सतलज नदी के किनारे भी पहुँचा था। वह गढ़वाल में गोपेश्वर और अनसूया देवी भी गया था। सतलज के तट से वह महासू-शिमला-बशेहर होकर टौंस और यमुना को पार करके अलकनन्दा की घाटी में आया होगा।

ईशानवर्मन ने हूणों पर विजय प्राप्त करके महाराजाधिराज उपाधि प्राप्त की थी। उसका पुत्र विजय यात्राओं में सेनापति के रूप में पिता के साथ रहा होगा। नृमुण्ड के अभिलेख में सर्ववर्मन को महाराज तथा सिरोली के अभिलेख में महाराजाधिराज कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि नृमुण्ड का अभिलेख पहले का है तथा वहाँ से सर्ववर्मन गढ़वाल की ओर गया होगा।

इतिहास बताता है कि सर्ववर्मन ने मगध के गुप्त नरेश दामोदरगुप्त को युद्ध में मार कर अपने पिता की पराजय का बदला लिया था। गुप्त नरशों ने इस पराजय को स्वीकार करके अभिलेखों में सर्ववर्मन को हूण-विजेता कहा है[2]। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र में भी हूण प्रविष्ट हुये थे। वे यहाँ शक्तिशालो हो गये थे। सर्ववर्मन ने उनको हराने के लिये उत्तराखण्ड की ओर अभियान किया। सम्भवतः वह ऊखीमठ होकर गोपेश्वर की ओर जा रहा होगा। मार्ग में उसने मण्डल चट्टी के

१. प्राच्य विद्या अकादमी द्वारा आयोजित २८·३·८७ तिथि में सेमीनार में डा० शिवप्रसाद नैथानी द्वारा पढ़े गये लेख के आधार पर
२. मजूमदार : दी क्लासिकल एज पृ० ७८–८०

समीप वृद्धेश्वर देवकुल (मन्दिरों का समूह) बनवा कर भक्त तीर्थयात्रियों के लिये जल संग्रह का प्रबन्ध किया था। सर्ववर्मन के साथ नरवर्मन भी रहा होगा। यह उसका पुत्र हो सकता है, सेनापति हो सकता है या यहाँ का विषयपति हो सकता है।

उस समय अनसूयादेवी के समीप एक बड़ा मन्दिर वृद्धेश्वर बना होगा तथा उसके समीप गणेश, कार्तिकेय, दुर्गा आदि देवताओं के छोटे-छोटे मन्दिर बनवाये गये होंगे। उन मन्दिरों के लिये अनुदान भी दिये गये होंगे। आज अनसूया देवी में जो मन्दिर है, वह सौ वर्ष पुराना है। उसको अनसूयाप्रसाद बहुगुणा ने प्राचीन प्रस्तर-खण्डों से बनवाया है। ये प्रस्तर-खण्ड प्राचीन मन्दिर के ही रहे होंगे। इस मन्दिर में स्थापित अनेक मूर्तियाँ बहुत प्राचीन हैं। अनसूया देवी के मुख्य मन्दिर के समीप ही खेतों में द्विभुज गणेश की विशाल प्रतिमा मिली है। इसको स्थानीय जन वृद्ध गणेश कहते हैं। गढ़वाल में अनेक मन्दिरों के साथ वृद्ध शब्द जुड़ा हुआ है। जैसे—वृद्धजागेश्वर, वृद्धबदरी, वृद्धकेदार आदि। इसी प्रकार यह भी वृद्धेश्वर रहा होगा।

—:o:—

बाड़ाहाट का गुह का त्रिशूल अभिलेख

लिपि	—	उत्तरी ब्राह्मी (कुटिला)
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	छठी शताब्दी ई०
प्राप्तिस्थान	—	बाड़ाहाट (उत्तरकाशी)

मूल अभिलेख–[1]

१. ओं । आसीद्यः क्षितिपो गणेश्वर इति प्रख्यातकीतिर्नरैः
चक्रे येन भवस्य वेश्म हिमवच्छृंगोच्छ्रितं दीप्तिमत् ।
कृत्वाणुर्व्वनजाधिपस्वकृपणैः सामात्यभाग्यश्रियं
स्मृत्वा शक्रसुहृत्त्वमुत्सुकमनाः यातःसुमेर्वालयम् ॥

२. पुत्रस्तस्य महाभुजो विपुलदृक् पीनोन्नतोरःस्थलः
रूपत्यागनयैरनङ्गधनदव्यासानतीत्योद्गतः ।
नाम्ना श्रीगुह इत्युदारचरितः सद्धर्मधुर्यस्सतां
शक्तिं शत्रुमनोरथप्रमथनीं शम्भोश्चकाराग्रतः ॥

३. प्रातः प्रातर्मयूखैरुरुभिरविरलं शार्वरं ध्मान्तमन्ध-
न्नालुंचश्चन्द्रतारानिकरपरिकरोदारशारोदरत्वम् ।
स्वं बिम्बं चित्रबिम्वाम्बरतलतिलकं यावदर्को विधत्ते
तावत्कीर्तिः सुकीर्तिश्चिरमरिमथनस्यास्तु राज्ञः स्थिरेयम् ॥

हिन्दी अनुवाद—

ओ३म् । प्रसिद्ध कीर्ति वाला एक गणेश्वर नाम का राजा हुआ था। उसने अपने सेवकों से हिमालय के शिखरों के समान ऊँचा दीप्तिशाली शिवमन्दिर बनवाया। उदार भावों के वशीभूत होकर उसने मन्त्रियों सहित अपनी लक्ष्मी को

---

१. एस. ए. एस. बी. वो० ५ पृ० ३४७, ३८५, वो० ११, पृ० ४७७
राहुल सांकृत्यायनः हिमालय परिचय (१) पृ० ३४८
उत्तराखण्ड का इतिहास भाग १, पृ० ३६३

सम्बन्धियों को दे दिया। तदनन्तर इन्द्र के साथ मित्रता का स्मरण करके वह सुमेरु पर्वत को घर बना कर वहीं चला गया ॥१॥

उस गणेश्वर का पुत्र गुह हुआ। वह बड़ी भुजाओं वाला, विशाल नेत्रों वाला, मोटे और ऊँचे वक्षःस्थल वाला, रूप से कामदेव को, त्याग से कुबेर को और नीतिज्ञान से व्यास को तिरस्कृत करने वाला था। उदार चरित वाले तथा सज्जनों के मध्य उत्तम धर्म को धारण करने वाले उस राजा ने शत्रुओं का विनाश करने वाली शक्ति का शिवमन्दिर के आगे निर्माण कराया ॥२॥

जब तक सूर्य प्रत्येक प्रातः काल अपनी विशाल किरणों से रात्रि के अन्धकार का निरन्तर विनाश करता हुआ, सुन्दर चन्द्र तथा तारों के समूह के विशद विस्तार को नोचता हुआ, सुन्दर आकाश के तल पर अपने बिम्ब का तिलक लगाता रहेगा तब तक शत्रुओंका विनाश करने वाले उस राजा गुह की उत्तम कीर्ति स्थिर रहेगी ॥३॥

लेख के प्रारम्भ में ओं, पद प्रारम्भ का तथा अन्त में 'ठ' पद अन्त का सूचक है।

टिप्पणी—

बाड़ाहाट (उत्तरकाशी) की स्थिति ऋषिकेश-गङ्गोत्तरी मोटर मार्ग पर है। यह ऋषिकेश से १४६ किमी दूर है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई ३८४० फीट है। प्राचीन काल में यह स्थान राजनीतिक शक्ति, धार्मिक क्रियाकलाप और संस्कृति का केन्द्र रहा था। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार इसका प्राचीन नाम बाड़हाट ही है।[1] परन्तु पुराणकारों ने इसको उत्तरकाशी या सौम्यकाशी कहा। वर्तमान समय में भी उत्तरकाशी नाम ही अधिक प्रसिद्ध है। बाड़ाहाट इसका एक मोहल्ला कहा जाता है। 'केदारखण्ड पुराण' में इस नगरी को सौम्यकाशी कहा गया है और यह नगरी भागीरथी के किनारे बसी हुई है। इसके उत्तर में वरुणा और दक्षिण में असी नदियां हैं, जो भागीरथी में मिल जाती हैं। यह नगरी वारणावत पर्वत की तलहटी में विद्यमान है[2]।

---

१. हिमालय परिचय (१) पृ० ३४७

२. सौम्यकाशीति विख्याता गिरौ वै वारणावते।
असी च वरुणा चैव द्वे नद्यौ पुण्यगोचरे ॥
केदारखण्ड पुराण

उत्तरकाशी को काशी बनाने का पूरा प्रयास किया गया है। दो नदियों के नाम वरुणा और असी हैं। घाटों के नाम केदारघाट और मणिकर्णिकाघाट हैं। विश्वनाथ, कालभैरव, परशुराम, दत्तात्रेय या जड़भरत, लक्षेश्वर, भगवती दुर्गा आदि यहां के प्रसिद्ध मन्दिर हैं।

बाड़ाहाट (उत्तरकाशी) प्राचीन समय में समृद्ध और सुन्दर नगर रहा होगा। परन्तु मध्य काल में यह कुछ उपेक्षित सा हो गया। केवल तीर्थयात्रियों के लिये यह मध्य का एक पड़ाव हो गया था। गढ़वाल के अंग्रेजों के अधीन हो जाने पर पंवार राजाओं ने पहले तो बाड़ाहाट को अपनी राजधानी बनाया था, परन्तु बाद में वे टिहरी चले गये। १९६२ ई० में उत्तरप्रदेश सरकार ने इसको पृथक् जिला बना दिया तथा उत्तरकाशी नगरी इस जिले की मुख्यालय हुई। तबसे इस नगर की अधिक उन्नति हो रही है। बाड़ाहाट इसका एक मोहल्ला भर रह गया है।

उत्तरकाशी में प्रमुख मन्दिर विश्वनाथ का है। उसके सामने शक्ति मन्दिर है। इसके मध्य में एक त्रिशूल है। त्रिशूल की ऊँचाई २६ फीट है। इसकी परिधि नीचे ८$\frac{3}{4}$ फीट तथा ऊपर १$\frac{1}{4}$ फीट है। इसका नीचे का भाग पीतल का और ऊपर का भाग लोहे का है। इस पर गणेश्वर और गुह नामक राजाओं के नाम अंकित हैं। लिपि और भाषा के आधार पर इसको गोपेश्वर के त्रिशूल का समकालीन माना जा सकता है।

यहां एक अन्य भी अभिलेख है। यह पूरा नहीं है। यह किस राजा का है, यह भी विदित नहीं हो सका है। इसकी दो पंक्तियां इस प्रकार हैं—[1]

यस्य तत् कर्म तच्छृंगोच्छ्रतं दीप्तं
तिलकं यावदंकेऽपि धत्ते तावत् कीर्तिः सुकीर्तिः दोरक्षा–
मयी तस्यास्तु राज्ञः ।।

ऊपर वर्णित अभिलेख में गणेश्वर और गुह राजाओं के नाम अंकित है, । ये नागवंशी राजा थे। गोपेश्वर के त्रिशूल के एक अभिलेख के अनुसार उस त्रिशूल की स्थापना स्कन्दनाग, विभुनाग और अंशुनाग के वंशज गणपतिनाग ने की थी[2]। विद्वानों ने इस गणपतिनाग और गणेश्वर को एक बताया है। इस गणेश्वर ने बाड़ाहाट में विश्वनाथ मन्दिर बनवाया तथा उसके पुत्र ने इस मन्दिर के सामने शक्तिमन्दिर की स्थापना की। दोनों त्रिशूलों (गोपेश्वर और उत्तरकाशी) में अद्भुत समानता है तथा वे एक ही कारीगर के बनाये हुये लगते है। सम्भवतः अभिलेख को

१. गढ़वाल के संस्कृत अभिलेख पृ० २५

२. उत्तराखण्ड का इतिहास भाग ३ पृ० ३४९

भी एक ही कारीगर ने उत्कीर्ण किया होगा[1]। बाड़ाहाट और गोपेश्वर एक ही शासन के अन्तर्गत रहे होंगे। बाड़ाहाट से गोपेश्वर की आकाशीय दूरी केवल ६० मील है। पैदल मार्ग की दूरी भी केवल ८० मील है।

इस त्रिशूल लेख से विदित होता है कि गणेश्वर (गणपतिनाग) प्रख्यात-कीर्ति थे और वे क्षितिप थे। उनके राज्यकाल की घटनाओं का विवरण प्राप्त नहीं होता।

गणेश्वर का पुत्र गुह था। पिता की मृत्यु के बाद वह राजा हुआ। अभिलेख से विदित होता है कि वह महाबली, विशाल नेत्रों वाला, सुदृढ तथा उन्नत वक्षःस्थल का, कामदेव के समान सुन्दर, दानशील, नीतिज्ञ, शास्त्रों का ज्ञाता, धार्मिक और उदारचरित का था।

धार्मिक दृष्टि से गुह शैव था। उसके राज्य में शत्रुओं का उपद्रव हुआ होगा। इसीलिये उसने शक्ति को शत्रुओं के मनोरथ का विनाश करने वाली लिखा है। परन्तु वे शत्रु कौन थे, इसका पता नहीं लगता। डा० शिवप्रसाद डबराल ने इस सम्बन्ध में अनेक शत्रुओं की कल्पना की है। परन्तु उनकी दृष्टि कोई ऐतिहासिक आधार पर नहीं है[2]। अधिक सम्भव है कि ईशानवर्मन का पुत्र सर्ववर्मन वह शत्रु रहा हो। सर्ववर्मन ने कर्तृपुर पर अधिकार करके नरवर्मन को वहां का विषयपति बनाया होगा।

—:०:—

१. उत्तराखण्ड का इतिहास पृ० ३५०

२. वही भाग ३ पृ० ३५३

लाखामण्डल अभिलेख

(ईश्वरा की प्रशस्ति)

लिपि	—	ब्राह्मी
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	छठी सातवीं शताब्दी ई०
प्राप्तिस्थान	—	लाखामण्डल

मूल अभिलेख—

ओं ब्रह्म ।। सर्गस्थितिलयहेतोर्विश्वस्य ब्रह्मविष्णुरुद्राणाम्
मूर्तित्रयं प्रदधते संसारभिदे नमो विभवे ।।१।।
यदुवंशभुवां राज्ञां सैंहपुरं राज्यमायुगाद् दधताम् ।
श्रीसेनवर्म्मनामा राजर्षिः प्रक्रमेणासीत् ।।२।।
तनयस्तस्य श्रीमान्नृपतिरभूदार्यवर्मनामैव ।
आर्यव्रततां प्रथमं ख्यापितवांस्तदनु यश्चरितैः ।।३।।
श्रीदेववर्मनामा दत्त्वाभयविभवविजयध्वंसः ।
भीतार्थिकुलारिभ्यो बभूव तस्यात्मजो नृपतिः ।।४।।
सूनुरभूत् तस्य महान्भूपालः श्रीप्रदीप्तवर्मेति ।
दर्पान्ध-शत्रुपृतनापतङ्गपटलीप्रदीप्ताग्निः ।।५।।
श्री ईश्वरवर्मेति सुतस्तस्याभूत् भूपतिः प्रदानेन ।
ऐश्वर्यं यः कृतवान् भव इव निचयेन नार्थानाम् ।।६।।
श्रीवृद्धिवर्मसंज्ञस्तस्य बभूवात्मजः प्रवृद्धश्रीः ।
चन्द्र इव तापहारी नयनानां नन्दनो राजा ।।७।।
स्वभुजार्जित सौ (शौ) र्ययशोदानवतामुपरि दृष्टसामर्थ्यः ।
श्रीसिंहवर्मनामा तत्तनयो राजसिंहोऽभूत् ।।८।।
तस्य सुतोऽभूदाशापूरणकर्त्ता जनस्य तापच्छित् ।
श्रीजलनामा नृपतिः कलियुगदावाग्निजलवर्षः ।।९।।
श्रीयज्ञवर्मनामा तदङ्गजोऽभून्महीपतिर्येन ।
यज्ञाज्यधूमजलदैर्नियत्केका कृताः शिखिनः ।।१०।।

पुत्रस्तस्य बभूव श्रीमान्राजर्षिरचलवर्मेति ।
कृतयुगचरितेष्वचलो यश्च स्थैर्यादिगुणसाम्यात् ।।११।।

यः समरे घङ्कलाख्यामन्वर्थवतीं दधार रणरौद्रः
अपरापगणितसङ्गरकरिरदनाग्राङ्कितोरस्कः ।।१२।।

तस्य दिवाकरनामा श्रीमांस्तनयो बभूव नृपतीशः ।
यस्य दिवाकरताभूत्परतेजोभिभववर्षेण ।।१३।।

वारणविषाणसङ्कटसङ्गरबलचारिणः स्मृता यस्य ।
अकरोदरीनशस्त्रान्सपदि महाघङ्कलभटाख्या ।।१४।।

तस्य कनीयान्भ्राता श्री भास्कर इत्यभून्नृपतिपालः ।
रिपुघङ्कलाभिधानं यो वहदाजौ विजयमन्त्रम् ।।१५।।
स्वभुजार्जितपरराज्यद्रविणसदादानकर्मणः पाणेः ।
यस्यासीद् विमुखोऽसौ रिपुपृष्ठक्षणनसंस्थितिषु ।।१६।।

येनाभिरुह्य पद्भ्यां पतत्रिगम्यानि शैलदुर्गाणि ।
आक्रम्य युद्धशौण्डा हस्तिकरं दापिताः क्षितिपाः ।।१७।।

तस्य गुणार्जितदेवीशब्दा श्रीकपिलवर्धनसुताभूत् ।
राज्ञी प्राणेशा श्री जयावतीत्येकपत्नीव ।।१८।।

तस्यास्तनया साध्वी सावित्रीवेश्वरेति नाम्नासीत् ।
जालन्धरनृपसूनोर्जाया श्रीचन्द्रगुप्तस्य ।।१९।।

भर्तरि गतवति नाकं करिणः स्कन्धाद् भवास्पदमिदं सा ।
तत्पुण्यायाकारयदाचार्यानुगतमास्थानम् ।।२०।।
यावन्महीमहीधरजलनिधयो यावदिन्दुरवितारा: ।
तावदिदमस्तु कीर्तिस्थानं श्रीचन्द्रगुप्तस्य ।।२१।।
भट्टक्षेमशिवात्मजभट्टस्कन्दादवाप्तशुभजन्मा ।
भट्टवसुदेव एनां प्रशस्तिमकरोदयोध्येशः ।।२२।।
अश्मनीश्वरणागेन नागदत्तस्य सूनुना ।
आलेखि सूत्रधारेण रौदीतकनिवासिना ।।२३।।

हिन्दी अर्थ—

संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण भूत ब्रह्मा विष्णु और रुद्र इन तीन स्वरूपों को धारण करने वाले, संसार का भेदन करके मोक्ष प्रदान करने वाले उस परम सामर्थ्यशाली प्रभु को नमस्कार है ।।१।।

इस युग के आरम्भ से ही सेंहपुर नामक राज्य को धारण करने वाले यदुवँशी राजाओं में क्रमशः सेनवर्मा नाम का एक राजर्षि हुआ ।।२।।

उसका पुत्र श्रीमान् आर्यवर्मा नाम का राजा हुआ। वह अपने चरित्र के कारण श्रेष्ठ आचरण करने वालों के रूप में प्रसिद्ध हुआ ।।३।।

उसका पुत्र देववर्मा राजा हुआ, जो क्रमशः डरे हुओं को अभय प्रदान करने वाला, याचकों को ऐश्वर्य प्रदान करने वाला और शत्रुओं को जीत कर विनाश करने वाला था ।।४।।

उसका पुत्र श्री प्रदीप्तवर्मा नाम का महान् राजा हुआ। वह घमण्ड से अन्धे शत्रुओं की सेना रूपी पतँगों के समूह को जलती हुई अग्नि के समान जला देता था ।।५।।

उसका पुत्र श्री ईश्वरवर्मा नाम का राजा हुआ, जो शिव के समान अर्थी के द्वारा ऐश्वर्य का दान करता था ।।६।।

उसका पुत्र श्री वृद्धिवर्मा नाम का राजा हुआ। उसकी राज्य लक्ष्मी खूब बढी हुई थी और वह प्रजाओं के नेत्रों को आनन्दित करने वाला राजा चन्द्रमा के समान सन्ताप को हरने वाला था ।।७।।

उसका पुत्र श्री सिंहवर्मा नाम का राजा हुआ, जो राजाओं में सिंह के समान था। उसने अपनी सामर्थ्य का प्रदर्शन करके अपनी भुजाओं से अर्जित शौर्य के द्वारा सभी यशस्वी और दानी पुरुषों के ऊपर स्थान प्राप्त किया था ।।८।।

उसका पुत्र श्री जल नाम का राजा हुआ। वह मनुष्यों की आशाओं को पूरा करता था और सन्ताप को काटता था तथा कलियुग रूपी जंगल की अग्नि को जल की वर्षा के समान शान्त करता था ।।९।।

उसका पुत्र श्री यज्ञवर्मा नाम का हुआ। वह जब यज्ञ करता था तो हवन के घी के धुयें को मेघ समझ कर मयूर हर्षध्वनि करने लगते थे ।।१०।।

उसका पुत्र श्रीमान् अचलवर्मा नाम का राजर्षि हुआ। उसका आचरण सत्य-युग के समान था और वह स्थिरता आदि गुणों की समानता के कारण अचल (पर्वत) ही था ।।११।।

युद्ध क्षेत्र में अपने रौद्र रूप को धारण करने के कारण वह सार्थक घँघल नाम से भी प्रसिद्ध था। और शत्रुओं को रगड़ देने वाले युद्ध क्षेत्र में हाथियों के दाँतों और सूंड पर भी अपने वक्ष से भिड़ जाता था ।।१२।।

उसका पुत्र श्रीमान् राजाओं का भी राजा दिवाकरवर्मा हुआ। शत्रुओं के तेज को तिरस्कृत करने की विशेषता के कारण उसका दिवाकर कहलाना सार्थक ही था ।।१३।।

वह महाघंघल योद्धा नाम से भी प्रसिद्ध हुआ। जो हाथियों के दान्तों से भरे

युद्ध क्षेत्र में बलपूर्वक विचरण करके शत्रुओं को शीघ्र ही शस्त्ररहित कर देता था ॥ १४ ॥

उसका छोटा भाई श्री भास्कर नाम का राजा हुआ, जिसने युद्ध क्षेत्र में विजय मन्त्ररूप रिपुघंघल नाम को धारण किया ॥ १५ ॥

वह अपनी भुजाओं से शत्रुओं के राज्य और धन को जीत कर सदा दान किया करता था और उसके हाथ का खड्ग शत्रुओं की पीठ पर प्रहार करने में विभुख रहता था ॥ १६ ॥

उसने पक्षियों द्वारा ही गम्य पर्वतों पर बने दुर्गों पर पैदल जाकर आक्रमण किया और वहाँ के युद्ध करने में चतुर राजाओं को पराजित करके कर के रूप में हाथी प्राप्त किये ॥ १७ ॥

श्री कपिलवर्धन की पुत्री जयावली उसकी एकमात्र पत्नी, रानी, प्राणेश्वरी हुई, जिसने गुणों से देवी पद को प्राप्त किया था ॥ १८ ॥

उसकी पुत्री ईश्वरा नाम की हुई, जो जालन्धर के राजा के पुत्र श्री चन्द्रगुप्त की पत्नी बनी। वह सावित्री के समान पतिव्रता थी ॥ १९ ॥

हाथी के कन्धे से गिर कर पति के स्वर्गवास हो जाने पर उसने उनके प्रति पुण्य करने के लिये आचार्यों से अनुगत होकर इस स्थान पर शिव का मन्दिर बनवाया ॥ २० ॥

जब तक पृथिवी, पर्वत और समुद्र हैं, जब तक चन्द्रमा, सूर्य और तारे हैं, तब तक श्री चन्द्रगुप्त की कीर्ति का यह स्थान विद्यमान रहेगा ॥ २१ ॥

इस क्षेत्र में भट्टक्षेम शिव के पुत्र भट्टस्कन्द से शुभ जन्म को प्राप्त करने वाले अयोध्या के राजा भट्टवसुदेव ने इस प्रशस्ति को लिखवाया ॥ २२ ॥

रौदीतक के निवासी नागदत्त के पुत्र ईश्वरणाग नाम वाले सूत्रधार ने इस प्रस्तर पर प्रशस्ति को उत्कीर्ण किया ॥ २३ ॥

टिप्पणी—

लाखामण्डल का विवरण पहले दिया चा चुका है। यहाँ से छागलेशकेतु का अभिलेख प्राप्त हुआ था। वहाँ एक और भी अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह ईश्वरा का अभिलेख कहलाता है। इस समय यह अभिलेख वहीं के संग्रहालय में रखा हुआ है। यह अभिलेख काले रंग की बासाल्ट शिला पर है। इसका आकार ३४·५"×२१" है। यह लेख २३ पंक्तियों में है तथा इसमें २३ पद्य हैं।

ईश्वरा के अभिलेख की भाषा संस्कृत और लिपि कुटिल है। इसको उत्तरकालीन ब्राह्मी भी कहा जाता है। वर्तनी में अनियमिततायें हैं। इसमें ब और व में भेद नहीं किया गया है। लेख का सर्वप्रथम प्रकाशन एपिग्राफिका इण्डिका के वो० । में हुआ था[1]।

---

१. एपिग्राफिका इण्डिका वो० । पृ० १०–११

लेख का प्रारम्भ ओं ब्रह्म से हुआ है। इस अभिलेख के अनुसार ईश्वरा का विवाह जालन्धर के राजकुमार चन्द्रगुप्त के साथ हुआ था। हाथी से गिर जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। पति की सद्गति के हेतु ईश्वरा ने यहाँ भव-मन्दिर बनवाया।

इस अभिलेख में ईश्वरा के ससुराल के राजाओं का वर्णन नहीं है। पितृकुल के राजाओं के ही वर्णन हैं। ईश्वरा के पितृवंश के राजा यदुवंशी थे। इस वंश के १२ राजाओं का वर्णन किया गया है। इनमें अन्तिम राजा भास्करवर्मा है। उसकी पत्नी जयावती थी। इन दोनों की पुत्री ईश्वरा थी।

इस अभिलेख के पद्यों की रचना भट्टस्कन्द के पुत्र भट्टवासुदेव ने की थी। इसको यहाँ नागदत्त के पुत्र ईश्वरनाग ने टंकित किया।

अभिलेख पूर्ण रूप से सुरक्षित प्राप्त हुआ है। इतिहासविदों ने इसको प्रायः छठी-सातवीं शताब्दी ई० का माना है। किन्तु कुछ विद्वान् इसको आठवीं-नवीं शताब्दी ई० का भी प्रतिपादित करते हैं [1]।

जैसे कि पहले लिखा गया है, ईश्वरा की प्रशस्ति में उसकी ससुराल के, जालन्धर के राजाओं का वर्णन न होकर पिता के राजवंश, यादव वंश का वर्णन है। इस राजवंश के राजाओं के नाम निम्न क्रम से हैं—

संख्या	नरेश का नाम	विरुद	श्लोक संख्या
१	सेनवर्मन्	राजर्षि	२
२	आर्यवर्मन्	नृपति	३
३	देववर्मन्	नृपति	४
४	प्रदीप्तवर्मन्	भूपाल	५
५	ईश्वरवर्मन्	भूपति	६
६	वृद्धिवर्मन्	राजा	७
७	सिंहवर्मन्	राजसिंह	८
८	जल (वर्मन्)	नृपति	९
९	यज्ञवर्मन्	महीपति	१०
१०	अचलवर्मन्	राजर्षि, घंघल	११
११	दिवाकर (वर्मन्)	नृपतीश	१३
		महाघंघल, भट	
१२	भास्कर (वर्मन्)	नृपतिपाल	१५
		रिपुघंघल	

प्रशस्ति के अनुसार यह यदुवंश था और इसकी राजधानी सैंहपुर थी। सैंहपुर में इस वंश का राज्य युग (कलियुग) के प्रारम्भ से चला आ रहा था। यदु वंश का

१. उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग ३, पृ० ३५७

प्रारम्भ ययाति की रानी असुर राजकुमारी शर्मिष्ठा से उत्पन्न एक राजकुमार यदु से हुआ था।

अभिलेख से प्रतीत होता है कि जब ईश्वरा विधवा हो गई तो अपने पितृकुल में ही रहने लगी। पिता की सहायता से ही उसने लाखामण्डल में, पति की सद्गति के लिये यह मन्दिर बनवाया होगा। अतः सैंहपुर को लाखामण्डल के समीप ही होना चाहिये।

डा० शिवप्रसाद डबराल ने प्रतिपादित किया है[1] कि प्राचीन समय में स्रुघ्न राज्य का उल्लेख ईसा की दूसरी शताब्दी से प्राप्त होता है। ७ वीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग इधर आया था। उसके अनुसार स्रुघ्न राज्य का विस्तार पूर्व में गङ्गा से लेकर पश्चिम में गिरि नदी तक था। यह उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में अम्बाला और सहारनपुर जिलों तक विस्तृत था। इसकी राजधानी स्रुघ्न नगर यमुना के किनारे कालसी से २४ मील दक्षिण (वर्तमान सुघगाँव) रही थी। प्राचीन साहित्य में स्रुघ्न नगर के विशाल वैभव का विस्तृत वर्णन है। 'महाभाष्य'[2] और 'काशिका'[3] में भी इसका वैभव वर्णित है। ह्वेन्त्सांग ने भी यमुना के तटवर्ती स्रुघ्न नगर का वर्णन किया है। कुछ विद्वानों का कथन है कि कालसी से ८ मील दक्षिण और सुघगाँव से १६ मील उत्तर में सिहपुर गाँव है। यही प्राचीन सैंहपुर था, जो यदुवंशी राजाओं की राजधानी रहा था। इन राजाओं में एक राजा सिंहवर्मन् है[4]। उसने अपने नाम पर इस नगर को सैंहपुर नाम दिया होगा। प्राचीन समय का यह सैंहपुर ही वर्तमान काल का सिंहपुर है।

इस यदुवंश की परम्परा में प्रथम राजा सेनवर्मन् है[5]। जायसवाल के अनुसार इस यादव वंश का समय तीन सौ वर्ष का था है। इसका प्रारम्भ वि०सम्वत् ३०७ है[6]। ब्लूलर ने इस वंश के लिये २६५ वर्ष का समय निर्धारित किया है[7]। सम्भव है कि शीलवर्मन्, जिसके अश्वमेघ यज्ञ की इष्टिकायें कालसी के समीप प्राप्त हुई हैं, तथा सेनवर्मन् एक ही व्यक्ति हों। इनमें शीलवर्मन् को वार्षगण्य कहा गया है। इससे वृष्णि नरेश का संकेत मिलता है। वृष्णि तथा यदुवंश एक ही हैं। शीलवर्मन् के

---

१. उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग–३, पृ० ३५६–३६०

२. महाभाष्य ५. १. १६ पर ॥

३. अन्तरा तक्षशिलां पाटलिपुत्रस्य च स्रुघ्नस्य प्राकाराः। काशिका २. ३. ४ पर ॥

४. प्रशस्ति पद्य संख्या ८

५. प्रशस्ति पद्य संख्या–२

६ के० पी० जायसवाल : अन्धकारयुगीन भारत पृ० १२०

७. एपिग्रापिका इण्डिका वो० १८, पृ० १२

इष्टकालेख का समय तीसरी शताब्दी ई० माना गया है। अतः सेनवर्मन् का भी यही समय हो सकता है।

प्रशस्ति में इन यदुवंशी राजाओं के समय की किसी घटना का वर्णन नहीं है। राजाओं के विशेषणों से ही कुछ अनुमान किया जा सकता है। सेनवर्मन् राजर्षि था। उसका चरित्र त्याग और तपस्या का रहा होगा। दूसरा राजा आर्यवर्मन् था। उसका चरित्र श्रेष्ठ (आर्य) था। आर्यव्रतता के कारण वह चरित्र का श्रेष्ठ प्रसिद्ध हुआ। तीसरे राजा का वीरत्व गुण प्रसिद्ध है। वह भयभीतों को अभय, दरिद्रों को धन और वित्त देने वाला और शत्रुओं का विनाश करने वाला था। चौथा राजा अति पराक्रमी था। अभिमानी शत्रु उसके क्रोध की अग्नि में पतंगों के समान भस्म हो जाते थे। पाँचवाँ राजा ईश्वरवर्मन् दानशील था। भव (शिव) के समान ही वह ऐश्वर्य का वितरण करता था। छठा राजा वृद्धिवर्मन् अपार सम्पत्तिशाली था। वह चन्द्रमा के समान तापहारी था और नेत्रों को आनन्दित करता था।

सातवाँ राजा सिंहवर्मन् अति पराक्रमी (राजसिंह) था। वह यशस्वी और दानशील था। सम्भवतः उसने ही अपने नाम से सैंहपुर को बसा कर राजधानी बनाया था। आठवाँ राजा जलवर्मन् मनुष्यों की आशाओं को पूर्ण करने वाला था। वह कलियुग रूपी जंगल की अग्नि को जल के समान शान्त करने वाला था। नवाँ नरेश यज्ञवर्मन् था। वह यज्ञशील था। उसके यज्ञ की अग्नि के धुयें को मोर मेघ समझ कर नृत्य करते थे। दसवें, ग्यारहवें और बारहवें नरेशों के साथ जंघल (घंघला) विशेषण संलग्न है। जंघल पद शुद्ध संस्कृत नहीं है। तथापि इसका अर्थ है— 'विजय प्राप्त करने वाला।" इन राजाओं ने युद्धों में शत्रुओं पर विजयें प्राप्त की होंगी दसवाँ नरेश अचलवर्मन् स्थिरता गुण के कारण अचल ही था। ग्यारहवाँ नरेश दिवाकरवर्मन्, दिवाकर के समान शत्रुओं के तेज को तिरस्कृत करता था। उसी का छोटा भाई भास्करवर्मा बारहवाँ राजा हुआ। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के कारण वह रिपुजंघल कहलाया। प्रतीत होता है कि उसने समीपस्थ राज्यों को जीत कर अपने राज्य का विस्तार किया था। कपिलवर्धन की पुत्री लयावती (जयावती) उसकी प्रिय रानी हुई। उनकी ही सन्तति ईश्वरा थी।

ईश्वरा के लिये कहा गया है कि जालन्धर के राजकुमार चन्द्रगुप्त के साथ उसका विवाह हुआ था। जालन्धर का यह राजा कौन था, इसका संकेत इतिहास में स्पष्ट नही हैं।

प्रशस्ति के रचनाकार कवि का नाम भट्टवासुदेव लिखा गया है। इस कवि की अन्य कोई कृति प्राप्त नहीं है। उसको अयोध्या का नरेश भी कहा गया है। सम्भवतः वह अयोध्या का रहने वाला मात्र होगा। इस युग में अयोध्या के राजा का इस प्रकार का कोई नाम उपलब्ध नहीं है। उसके पिता का नाम भट्टक्षेम शिव था। भट्ट उपाधि से प्रतीत होता है कि यह ब्राह्मण था।

प्रशस्ति का अंकन नागदत्त के पुत्र ईश्वरणाग ने किया था। वह रौदीतक का निवासी था। व्हूलर ने रोहीतक (रोहतक) को ही रौदीतक माना है। परन्तु रौदीतक नाम अन्यत्र नहीं मिलता।

प्रशस्ति के पाषाण-पलक पर कुछ अन्य पद भी अंकित है। परन्तु उनका प्रशस्ति से कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। प्रस्तरशिला में उपर की ओर लिखा है— हट्टाधिश्वरेभ्य:। दाहिनी ओर लिखा है— नारतनयस्य। कोने में एक ओर लिखा है— (रा) जा साधुकेन[1]।

ईश्वरा की इस प्रशस्ति से प्रतीत होता है कि उच्च कुल की विधवा स्त्रियाँ शेष जीवन पवित्रता से व्यतीत करती थीं। विधवा होने पर पतिकुल में रहने की अपेक्षा पितृकुल में रहना अधिक सुविधाजनक समझा जाता था। पति की मृत्यु के बाद भी वे उसके कल्याण की चिन्ता करती थीं। वे उसको सदा स्मरण रखती थीं।

हिमालय के इस क्षेत्र में शैव मत का अधिक प्रचार था। परन्तु अन्य मत और देवताओं का पूजन प्रचलित न हो, ऐसा नहीं था। इस भाग में बौद्ध और जैन धर्मों का प्रचार प्रायः विलुप्त हो गया था। लाखामण्डल के इस मन्दिर में शिवलिङ्ग स्थापित है। यह दो फीट ऊँचा है तथा छः फीट ८½ इंच गोलाई का है। यहाँ नन्दी, मानवाकार शिव, उमा, दुर्गा, गौरी, और लकुलीश शिव की प्रतिमायें हैं। पीछे के अन्तराल में सप्त मातृका—ब्राह्मी, महेश्वरी, वैष्णवी, कौमारी, वराही, इन्द्राणी और चामुण्डा की मूर्तियाँ हैं।

—०—

१. एपिग्राफिका इण्डिका वो०। पृ० १२

द्विजवर्मन् [द्युतिवर्मन्] का तालेश्वर का ताम्र–अभिलेख

लिपि	—	उत्तरी ब्राह्मी (कुटिला)
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	छठीं शताब्दी विक्रमी सम्वत् के आरम्भिक वर्ष
प्राप्तिस्थान	—	तालेश्वर

मोहर (मूल) अभिलेख—

१—विष्णुवर्मा (प्रपो (पौ) त्रस्य पो (पौ) त्रस्य वृषवर्म्मण (:)

२—श्र्यग्निवर्स्मसुतस्येह शासन (ं) द्विजवर्म्मण (:)

३—······नुग्रहात्थाय साधु संरक्षणाय च

४—सोमवंशोद्भवो राजा जयत्यमितविक्रम (:)

मूल अभिलेख—

(१) स्वस्ति (।।) पुरन्दर्प्रतिमाद् ब्र (ब्र) ह्मपुरात् सकलजगन्मूलोर्व्वी–चक्र–महाभार–वहन–(गुण–नमन–फण–सहस्रानन्त)–मूर्तेर्भगवद्–व–(ी) र (णेश्वर–स्वामिन–श्चरण)

(२) कमलानुध्यातः सोमदिवाकरान्वयो गो ब्रा (ब्रा) ह्मण–हितैषी श्रीपुरूरवः प्रभृत्यविच्छिद्यमान–सौ (पौ) रव–राज–वङ्शोग्निरिव वैपक्ष–कक्षदहनो (भू)

(३) श्र्यग्निवर्म्मा (।) तस्य पुत्रस्तत्पाद–प्रसादादवाप्त–राज्य–महिमा द्युतिमदहितपक्षद्युतिहरो विवस्वानिव द्वितीयः परम–भट्टारक–महाराजाधिर (ा) ज–श्री

(४) द्युतिवर्म्मा कुशली पर्व्वताकर–राज्ये (ऽ) स्मद्–वंश्यान्महाराज–विशेषान्प्रतिमान्य–दण्डोपरिक–प्रमातार–प्रतिहार–कुमारामात्य–पीलुपत्यश्वपति–(—)

(५) जयनपति–गज्जपति–सूपकारपति–नगर (न) पति–विषयपति–भोगिक–भागिक–दाण्डवासिक–कटुक–प्रभृत्यनुजीवि–वर्ग सर्व्व–विषय–प्रधानादींश्च—

(६) प्रतिवासि–कुटुम्बि—(वि) नः कुशलं पृष्ट्वा समाज्ञापयति–विदितमिदमस्तु वो देवद्रोण्यधिकृत–महासत्रपति त्रातैकाकिस्वामिना नयविनय–श्रुत–वृत्त—

(७) सम्पन्नेन परिव्राड् ब्र (ब्र) ह्मचारि–गौग्गुलिक–परिषत्सहितेन राजदौवारिकाग्निस्वामि-कारङ्कि-वोट (कोट) ाधिकरणिकामात्य-भद्रविष्णु पुरस्सरेण

(८) देवनिकायेन विज्ञापितं सुरासुरजगद्वन्द्यानन्तमूर्ति-वीरणेश्वरस्मा (स्वा) मि-नाथपादानां व (ब) लि-चरुकसत्र-प्रवर्तन-दधि-क्षीर-घृत-

(९) स्नपन-गन्ध-धूप-प्रदीप-पुप्प (पुष्प) ार्चन-प्रकर-सम्मार्जनो-पलेपन-कृषि-कर्म्मानुष्ठान-खण्ड-स्फुटितावचटित-पतित-संस्कारार्थं परहितानुष्ठान

(१०) चरितव्रतैर्युष्मत्पूर्वजैर्म्महाराजभिरन्यैश्चावनिपतिभिस्तथानेक-धर्म्म-प्रसव-हेतुभूतैर्द्दतिदायकैः स्वश्रेयसे भूमि-पल्लिका-ग्राम-

(११) कर्म्मान्ति-विषयास्ताम्रपट्ट-पट-वृषतापपत्रैः (पत्रकैरभि०) अभि-लिख्या-ग्रहाराः प्रतिपादितकास्तानि च शासनादीप्तकेन दग्धानि

(१२) कालेन च गच्छता लुब्धाः (ब्धाः) कलिदोषग्रहा-विष्टाः केचिदसत्पुरुषा लेख्यैर्विनाक्षेपं कुर्युरिति तदर्हन्ति भट्टारक-पादाः शासना-

(१३) नुमतिदानेन यथा भुज्यकान-स्थान-परिणाम-नाम्नान्याभिलेखयितुमिति यतो मया देव-भक्त्या-पूर्व्व-राजर्षीणां यशो (ऽ) र्थ-

(१४) मात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये वृषताप-शासनमिदं दत्तम् (।।) यत्र पशुकुलावदार-कर्म्मान्ति-कोणकलिगङ्गाग्रामे गुणेश्वरा

(१५) वरदीपकः वक्रय (क्रय)-कर् -भूमि-भाग-सहितश्चोर-कटको जम्वु (म्बु)-शालिका-पटलयतर-पर्व्वतक-माविलान-कवीरक्रोष्टा-

(१६) गक्षीकरणग्रामो (मे) महासालो बुरासिका दन्तवनिकां ज्योराणायां चोरपानीयं भग्नानूपमोढ्ढामायां पुटवनकः

(१७) कर्क्कटस्थूणा-वंजाल्युत्तरगङ्गा कपिलगर्ता कोटरवञ्जः शिवमुषीव्या-पुरादाडिमिका शिंशपिका दक्षिण (ं) पा (र्) श्वे

(१८) शरथाविषय-स्ता-पल्ली-करवीरगर्ता कोल्लपुरी भेल्लमस्तकः कर्क्को-टायां खण्डाक-पल्लिका मम्मदत्तो राज्यकतोली

(१९) शृगालखोह्णिका भूतपल्लिका गोग्गपल्लिका वारुणाश्रमः प्रभीलापल्लिका देवदास-तोली नारायण-देवकुलक मा (ला)

(२०) खानकः श्रीभाचर्प्पटो (ऽ) नङ्गाल-गत्तोत्तर-वासो व्र (ब्र) ह्मपुरे कार्ति-केयपुरग्रामकस्समज्जाव्यस्ता च भूस्त्र्यम्बपुरे सुवर्णकारपल्लिका (द)

(२१) णुण्ण (दुण्ण) वृद्धपल्लिका चन्द्रपल्लिका वि (बि) ल्वके जयभटपल्लिका वचाकरणं ग्रामो दीपपुर्यां वृद्धतरीपल्लिका क्रोडशूर्प्यां वर्द्धकि-पल्लिकोष्ट्राल—

(२२) मकः (क्रोष्ट्रालमकः) कटकभृष्टी डिण्डिक-पल्लिका चतुश्शलो-रोहागल-पल्लिका शोरायां वाहिरण्यपल्लिका चन्दुलाकपल्लिका भट्टिपल्लिका–

(२३) कार्तिकेयपुरे अतिवलाकपल्लिका विशाखिलपल्लिका अरिष्टाश्रमः अव-लीनकः सकिन्नरायां कोट्टतले पल्लिवाटकस्तुङ्गुलकर्म्मान्तः

(२४) पितृगङ्गातटे शीर्षारण्यः कण्ठारपार्श्वः राजपुत्रकोद्बाल-कर्व्वटको–प (व) हुग्रामसहित उत्तरपथः पश्चिमद्रोण्यां उदुम्ब (व) रवासः

(२५) गोहट्टवाटकः पुष्पदन्तिका-वासन्ती-वनकः करवीरिका-खोह्णावनको मल्लवस्तुको मल्लिका-शिवक-कराभशालिका दण्डवासि वतो

(२६) गोलथालकः चेति-तद् युष्माभिरमीषां प्रक्षेप-प्रतिषेधौ न करणीयौ न चोपद्रवः कुटुम्बि (म्बि) नां कारुकाणां च कर्तव्यो (।।) यत्कुर्यात्स पंचमहापातक–(संयु)

(२७) क्तः स्यादिति । दूतकः सान्धिविग्रहिकः प्रमातारः सूर्यदत्तः लिखितं दिविरपति विष्णुदासे (न)

(२८) उत्कीर्णान्यक्षराणि सौवर्णिकानन्तेनेति ।

राज्य सं० ५ पौष दि० ३०

हिन्दी अनुवाद—

मोहर का—

१—विष्णुवर्मा के प्रपौत्र और वृषवर्मा के पौत्र

२—श्री अग्निवर्मा के पुत्र द्विजवर्मा का यह शासन है।

३—कृपा करने के लिये और सज्जनों की रक्षा करने के लिये।

४—अमित पराक्रम वाले सोमवंशी राजा द्विजवर्मा की जय हो।

मूल अभिलेख का—

(१) कल्याण हो। इन्द्र की नगरी अमरावती के समान ब्रह्मपुर में सम्पूर्ण संसार के मूलभूत पृथ्वी के चक्र के समान महान् भार को धारण करने वाले, फणयुक्त शेषनाग के ऊपर शयन करने वाले वीरणेश्वर स्वामी के चरण—

(२) कमलों का ध्यान करने वाले, सोम और सूर्य के वंश में उत्पन्न गौओं और ब्राह्मणों का हित करने वाले, श्री पुरूरवा आदि से अविच्छिन्न, पौरव राजवंश में उत्पन्न, अग्नि के समान शत्रुओं के भवनों को जला देने वाले

(३) श्री अग्निवर्मा नाम के राजा हुये थे। उनके पुत्र ने उनके चरणों की कृपा से राज्य की महिमा को प्राप्त किया था। तेजस्वी शत्रुओं की कान्ति का हरण करने वाले, मानों दूसरा सूर्य हो इस प्रकार के परम भट्टारक महाजाधिराज श्री

(४) द्युतिवर्मा अपने पर्वताकर राज्य में कुशल से हैं। तथा अपने वंश के प्राचीन विशिष्ट महाराजाओं के प्रति आदर अभिव्यक्त करके अपने दण्डोपरिक, प्रमातार, कुमारामात्य, पीलुपति, अश्वपति

(५) पाकशालाध्यक्ष, नगराध्यक्ष, जनपदाध्यक्ष, भोगिक, भागिक, दाण्डवासिक कटुक आदि सभी सेवक वर्ग की, देश के सभी प्रधान अधिकारियों की

(६) पड़ोसियों की और कुटुम्बियों की कुशल-मंगल पूछ कर आदेश देते हैं—आप सबको विदित ही है कि हमारे देवपूजाध्यक्ष, महासत्रपति, रक्षा करने वाले, नीति विद्या-विनय-सदाचार से

(७) सम्पन्न तथा देव-समूहों के गुणों से सम्पन्न श्रीमान् तात ने पारिव्राजकों ब्रह्मचारियों और गौग्गुलिकों की परिषत् को साथ लेकर राजद्वार के अङ्गरक्षकों, यज्ञशाला के कर्मचारियों, कारिन्दों और देवदासियों के अणिकरणिक भद्रविष्णु को साथ लेकर

(८) यह विज्ञप्ति निकाली है कि सम्पूर्ण, देवताओ, दानवों ओर संसार के के द्वारा वन्दनीय अनन्तमूर्ति बीरणेश्वर स्वामी महाराज के चरण—कमलो में बलि चरु और सत्र को प्रवर्तित रखने के लिये, दही, दूध, और घी से

(९) अभिषेक करने के लिये, गन्ध-धूप-दीपक-पुष्पों से अर्चना करने के लिये, सम्मार्जन और लेपन करने के लिये, मन्दिर की खेती का कार्य सम्भालने के लिये, टूटे फूटे-चिटखे-गिरे हुये भवनों की मरम्मत करने के लिये, परोपकार के व्रत का अनुष्ठान

(१०) करने का व्रत लेने वाले तुम्हारे पूर्वज महाराजाओं ने और अन्य राजाओं ने तथा धार्मिक कार्य करने वाले अन्य दानियों ने अपने कल्याण के लिये जो भूमि, पल्ली, ग्राम

(११) कारखाने तथा विषय आदि दान किये हैं और जिनको ताम्रपत्रों, वस्त्रों तथा मिश्र धातुओं के पत्रों पर लिख कर अग्रहारों का दान किया गया था, वे शासनादेश जलती हुई आग में जल गये हैं।

(१२) समय के बीतने के साथ-साथ कहीं कलि के दोष से ग्रस्त होकर कोई लोभी या दुष्ट मनुष्य लेखों के न होने के कारण, आक्षेप न करे इसलिये आदरणीय भट्टारक से निवेदन है कि वे दान के शासनादेश

(१३) पुनः बनाने की अनुमति प्रदान करें, जिससे कि उनमें दान दी गई भोग के योग्य भूमि के नाम, नाप आदि का अभिलेख किया जा सके। इसलिये मैंने अपनी देवताओं के प्रति भक्ति के कारण और प्राचीन राजर्षियों के यश की वृद्धि के लिये

(१४) और अपने पुण्यों की वृद्धि के लिये यह धातु के पट पर लिखित आदेश प्रदान किया है। जिससे कि कोणकलिका गंगा ग्राम में जो पशुओं के समूह के गोष्ठ हैं, कर्मशालायें हैं, खेती के करने योग्य भूमि है, उत्तम गुणों से युक्त

(१५) वरदीपक नाम का खेत है, खेती करने योग्य भूमि के भाग के सहित चोरकटक नाम का स्थान है, जामुन और साल के वृक्षों से घिरी हुई पर्वत-भूमियां हैं, करवीरक्रोष्टा

(१६) गक्षीकरण ग्राम में बड़े साल के वृक्ष, बुरांस और दन्तवनिकायें हैं, ज्योराणा ग्राम में चोरपानी नामक खेत है, भग्नानूपमोढ्ढमा नामक क्षेत्र में पुटवनक,

(१७) करकटस्थूणा, वंजालि, उत्तरगंगा, कपिलगर्ता, कोटरवंज, शिवमुषीच्यापुरी में अनारों और शीशमों से भरे प्रदेश हैं, उसके दायीं

(१८) ओर शरथा नामक प्रदेश है, उसके समीप पल्ली में करवीरगर्ता, कोल्लपुरी और भेलमस्तक नाम की पल्लियां है, करकोटा में खण्डाक नामक पल्ली है तथा मम्मदत्त, राज्यकतोली,

(१९) शृगालखोह्निका, भूतपल्लिका, गोग्गलपल्लिका, वारुणाश्रम, प्रभीला--पल्लिका, देवदासतोली, नारायण, देवकुलकमाला

(२०) खानक, श्रीभाचर्पट, तथा नगाल-गत्तोत्तरवास हैं, ब्रह्मपुर जनपद में कार्तिकेयपुर ग्राम में समज्जाव्यस्ता नामक खेत है, त्र्यम्बपुर में सुवर्णकारपल्लिका है,

(२१) और दुणवृद्धपल्लिका तथा चन्द्रपल्लिका नामक आबादी है, बिल्वक क्षेत्र में जयभटपल्लिका और वचाकरण ग्राम हैं, दीपपुरी में बहुत पुरानी पल्ली है, क्रोडपुरी में वर्धकिपल्लिका और

(२२) कोष्ट्रालमक, कटकभृष्टी, डिण्डिकपल्लिका, चतु:श्शाल और रोहागलपल्लिका हैं, शोरा में बाहिरग्यपल्लिका, चन्दुलाकपल्लिका और भट्टि-पल्लिका हैं

(२३) कार्तिकेयपुर में अतिबलाकपल्लिका, विशाखिलपल्लिका, अरिष्टाश्रम और अवलीनक हैं।, सकिन्नरा में कोट के नीचे पल्लिवाटक और तुंगुल कर्मान्त हैं

(२४) पितृगंगा के तट पर शीर्षारण्य, कण्ठारपार्श्व, राजपुत्रकोद्वाल, और कर्व्वटक ग्राम हैं, बहुत से ग्रामों सहित उत्तरपथ है, पश्चिम द्रोणी में उदुम्बरवास,

(२५) गोहट्टवाटक, पुष्पदन्तिका, वासन्ती, वनक, करवीटिका, खोह्णावनक, मल्लवस्तुक, मल्लिका, शिवक, कराभशालिका तथा वनवासिवत का

(२६) गोलथालक है। तो आप सबको विदित होना चाहिये कि इस विषय में किसी प्रकार की बाधा, निषेध, उपद्रव नहीं करें और इनके सेवकों से तथा कुटुम्बियों से भी जो उपद्रव करेंगे, उसको पंच महापातक

(२७) लगेंगे। इस शासन में दूतक, सान्धिविग्रहिक और प्रमातार सूर्यदत्त हैं। इसका लेखक दिविरपति विष्णुदास है।

(२८) इसके अक्षरों को सौवर्णिक अनन्त ने उत्कीर्ण किया है।

समय–राज्य सं० ५ पौष दि० ३०

विष्णुवर्मन् का तालेश्वर ताम्र–अभिलेख

लिपि	—	उत्तरी ब्राह्मी (कुटिला)
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	छठी शताब्दी विक्रमी सम्वत् का अन्तिम काल
प्राप्ति स्थान	—	तालेश्वर

मूल अभिलेख—

(१) स्वस्ति (।।) पुरोत्तमाद् ब्र (ब्र) ह्मपुरात् सकल–भुवन–भव–भङ्ग–विभागकारिणो (ऽ) नन्तमूर्तेरनाद्य–वेद्याचिन्त्याद्भुतो–द्भूत–प्रभूत–प्रभावातिशय–शयस्य–

(२) क्ष्मातल–विपुल–विकट–स्फटा–पटल–निकट–प्ररूढ–मणिगण–किरणा–रुणित–पाताल–तलस्य (--) धरणि–धरण–योग्य–धारणा–

(३) धार (रिणो) भुजगराजरूपस्स्यै (स्य) भगवद्वीरणेश्वरस्वामिन–श्चरण–कमलानुध्यातः सोमदिवाकर–प्राङ्शु–वङ्श–वेश्म–प्रदीपः सर्वप्रजानुग्र (?)

(४) हाभ्युदितप्रभावः परमट्टारक–महाराजाधिराज श्र्यशिन (ग्नि) (।) वर्मा तदा–त्मजस्तत्पाद–प्रसादादवाप्त–प्राज्य–राज्यः क्षपित–महापक्ष–विपक्ष–

(५) कक्ष–द्युतिर्म्महाराजाधिराज श्री द्युतिवर्म्मा (।।) तन्नयनो (तत्तनयो) नय–विनय–शौर्य–धैर्य–स्थैर्य–गाम्भीर्यौदार्य–गुण–गणा–धिष्ठित–मूर्तिश्चक्रधर (:)

(६) इव प्रजानामार्तिहरः परमपितृभक्तः परमभट्टारक–महाराजाधिराज श्री विष्णुवर्मा समुपचित–कुशल–ब (व) लवीर्यः पर्व्वताकर–

(७) राज्ये समुपत्स्यमानास्मद् वंशालंकारान् देवाकारान् राजलक्ष्मी f (र्व) वराजमान (लक्ष्मी विराजमान) मूर्तीन्महाराजविशेषान्प्रतिमान्य दण्डोपरिक–प्रमातार–

(८) प्रतिहार–कुमारामात्य-पीलुपत्यश्वपति-प्रभृत्यनुजीवि-वर्ग्गममात्यांश्च भोगिक–भागिक–कुलचारिक–प्रधानादि–कुटुम्वि (म्बि) नः

(९) समाज्ञापयति (।।) विदितमस्तु वस्त्रात–मारि–पतिशर्म्म गौग्गुलिक–परिषत्प्रमुखेन–देवनिकायेन सान्धिकरणेन विज्ञापिताः स्म–

(१०) सर्व्वस्थानेषु दत्ति–दायक–साधु–प्रतिपादित–प्राग् भुज्यमाना–विच्छिन्न–भोगीन–भुवा कालेन गच्छता केचिदसत्पुरुषाः कलि–दोष–

(११) लोभ–ग्रहाविष्टा आक्षेपं कुर्यु रित्यर्हन्ति भट्टारकपादाः पुण्ययशो (ऽ) भिवृद्धये तन्नाम-स्मारोपणानुस्मरण–स्थिरकरण–

(१२) मधिकृत्य ताम्रपट्टदानेन प्रसादं कर्त्तुमिति यतोस्माभिर्भक्ति–भावितहृदयै–रनुमोदना–शासनं भुवामर्थे महासत्रो–

(१३) पचयाय प्रतिपादितं यत (त्र) स्तम्भसङ्कटिकायां वज्रस्थलक्षेत्र–कुल्यवापं तत्पूर्व्वेण हुडुक्क–सूनाक्षेत्रं तत्समीपे मालवक–क्षेत्रं–

(१४) खारिवापं समधिकं सजङ्गलं साधुतुङ्गक–ग्रामतले–क्षेत्रमष्ट–द्रोणवापं पाटलिकारामे चम्पकतोली देवक्क्यकर्ण्णिकाश्च–

(१५) गोमतिसार्यां व्र (ब्र) ह्मेश्वर–देवकुलसमीपे–पट्टवायक–दत्तिर्म्मध्य-मारक–क्षेत्र–चतुर्द्दशद्रोण–वापं सेम्मल क्षेत्रं चतुर्द्दश द्रोणवापं

(१६) कपिलेश्वर–नामधेय–क्षेत्रकुल्यवापं लवणोदके नन्दिकेरक–क्षेत्र-षड्-द्रोणवापं भोगिक गेल्लणण्णाक (गेल्लण अण्णक) भ्रातृदत्ते क्षेत्रसूने द्वे

(१७) खारिवापं गम्भीरपल्लिकायां डडुवक-जङ्गल-कुल्यवापं देवक्यतोली-पञ्च द्रोणवापं मध्यमपुरक-परस्ताद्-रजकस्थक्षेत्र-षड्द्रोण-

(१८) वापं देवक्यानूपक्षेत्र-खारि-वाप-त्त्रयमधिकं वासोदकं जङ्गलम् तदुपरि खट्टलिका-तुलाकण्ठक-यक्ष-समीपे नरक क्षेत्रम्

(१९) भृष्टिका क्षेत्रमष्टद्रोणवापम् तत्प्रापि–क्षेत्र-कर्ण्णकम् नदीतटे भृष्टक-क्षेत्रम् पञ्चद्रोणवापं पूर्व्वेण वीजकरणी बड्क्षेत्राष्ट-द्रोण

(२०) वापम् पर्व्वतार-क्षेत्र-खारिवापम् सकुल्यम् तत्समीपे जङ्गल-खोल्लिका-खट्टलिकाक्षेत्रं सजङ्गलं नव-द्रोणवापम् देवक्यक्षेत्राष्ट-द्रोणवापम्

(२१) स्कम्भारतोली-निश्चिता-देव्या (व्य) धस्तात् केदारकुल्यवापम् देवक्ख लग्रामके केदार-द्वि-द्रोणवापिका शुण्ठीनावानूपे सेम्मक-क्षेत्रम्

(२२) मधुफल-मूलक-क्षेत्रम् खट्टलिका-क्षेत्रञ्च छिद्रगर्तायाम् नागिल-क्षेत्र-कुल्य-वापम् सजङ्गलम् अन्ध्रकर्ण्णकास्त्रयः जरोलक-केदा-

(२३) रम् सेम्महिका-क्षेत्रम् व्यासोष्ठिनी-जङ्गलम् तत्प्रापि डडुवकं पर्व्वते च भोगिक-वराहदत्त-प्रत्यया भूमयो व (ब) ह्व्यः कार्तिकेयपुरे

(२४) निम्बसार्यां व (ब) लाध्यक्ष लवचन्द्रसकाशाद् दिविरपति-धनदत्तेनो-पक्क्रीतम् समूल-समात्रकमर्द्ध पञ्चभिः सुवर्ण्णैः श्वेतो (ता) क्षेत्रपञ्चद्रोण—

(२५) वापम् दूर्वाषण्डके च अनेनैव दिविरपतिनोपक्क्रीतं कायस्थ-णण्णक-सकाशात्समूल-समात्रकमष्टाभिः सुवर्ण्णैः वेतस-

(२६) कुल्यवाप-नामधेयं सो (सौ) दक-जङ्गलमावसथ-स्याग्रतो देवकुलिकायाँ वामन-स्वामि-पादानां निवेदनक-निमित्तमेव-माज्ञापिते

(२७) क्रिष्णह्योमि (कृष्णाहयो हि) जायन्ते य आक्षेपं कुर्यात्स पञ्चमहापातक-संयुक्तः स्यादुक्तञ्च भगवता व्यासेन·········

विन्ध्याटविष्वतोयासु शुष्क-कोटर-वासिनः

(२८) दूतकः प्रमातार-वराहदत्तलिखितमिदं दिविरपति धनदत्तेन उवती (त्की) र्ण्णञ्च सौवर्ण्णिकानन्तकेन- रा० सं० २० मार्ग्ग० दि० ५ ॥

हिन्दी अनुवाद—

(१) कल्याण हो (।।) नगरों में श्रेष्ठ ब्रह्मपुर में परम भट्टारक श्री महाराजाधिराज अग्निवर्मा थे। वे सभी भुवनों की रचना का विभाग करने वाले शेषनाग के स्वरूप वाले, अनादि, अवेद्य, अचिन्त्य, अद्भुत और प्रभूत प्रभाव से सम्पन्न

(२) पृथिवी के तल भाग में स्थित विशाल तथा भयानक फणों के समूह के समीप जड़ी हुई मणियों की किरणों से पाताल के तल को अरुणिम कर देने वाले, पृथिवी को धारण करने में समर्थ आधार को धारण

(३) करने वाले सर्पराज के स्वरूप वाले भगवान् वीरणेश्वर स्वामी के चरण-कमलों का ध्यान करते थे। सोम और सूर्य के महान् कुलरूपी गृह के दीपक थे और सभी प्रजाजनों के प्रति अनुग्रह

(४) करने के कारण उनका प्रभाव बढ़ रहा था। परम भट्टारक,महाराजाधिराज उन अग्निवर्मा के पुत्र महाराज द्युतिवर्मा थे। इन्होंने अपने पिता के चरणों की कृपा से विस्तृत राज्य प्राप्त किया था और महान् शक्तिशाली शत्रुओं के

(५) नगरों की शोभा को नष्ट किया था। उन द्युतिवर्मा के पुत्र महाराजाधिराज विष्णुवर्मा थे। वे नीति-विनय-शौर्य-धैर्य-गाम्भीर्य-उदारता आदि गुणों के समूह से अधिष्ठित स्वरूप वाले हैं। भगवात् विष्णु के

(६) समान प्रजाओं की पीडा को हरने वाले हैं। पिता के परम भक्त हैं और जिनका कुशल, बल, तथा पराक्रम निरन्तर बढ़ रहा है। वे विष्णुवर्मा इसी पर्वताकर

(७) राज्य में उत्पन्न हुये अपने वंश के अलंकारभूत, देवतास्वरूप तथा राजलक्ष्मी से विभूषित प्राचीन विशिष्ट महाराजाओं की वन्दना करके अपने दण्डोपरिक, प्रमातार

(८) प्रतिहार, कुमारामात्य, पीलुपति, अश्वपति, आदि सेवक वर्ग को, अमात्यों, भोगिक, भागिक, कारिक, कुलचारिक, प्रधान आदियों को और कुटुम्बियों को

(९) आदेश देते हैं कि आप सबको यह विदित हो कि गौग्गुलिकों की परिषत् के प्रधान तात मारिपति शर्मा ने, देव मन्दिर के पुजारियों ने और सान्धिकरण नाम के अधिकारी ने हम से निवेदन किया है

(१०) हमको सभी स्थानों पर दान देते वाले दाताओं ने जो भूमि पहले उत्तम प्रकार से दान दी है और जिसका हम अविच्छिन्न रूप से चिरकाल से भोग कर रहे हैं, कहीं ऐसा न हो कि समय के बीतने के साथ कलियुग के दोष के कारण

(११) लालच रूपी ग्रह से आविष्ट होकर कुछ दुष्ट पुरुष आक्षेप न करें, अतः भट्टारक पाद अपने पुण्य और यश की वृद्धि के लिये उस भूमि के नाम को समारोपित करने, स्मरण रखने तथा स्थिर करने

(१२) के लिये उसके सम्बन्ध से ताम्रपट्ट प्रदान करने की कृपा करें। अतः भक्ति से भरे हृदय वाले हमने महान् सत्रों (यज्ञों) के कार्य की वृद्धि के लिये उन भूमियों के शासन का अनुमोदन करने के हेतु इस बात को

(१३) प्रतिपादित किया है कि स्तम्भसंकटिका में कुल्य प्रमाण का वज्रस्थल नाम का खेत, उसके समीप मालवक खेत

(१४) जो खारी प्रमाण से कुछ अधिक जंगल सहित है, साधुतुंगक ग्राम के नीचे आठ द्रोण परिमाण वाला क्षेत्राष्ट नाम वाला खेत, पाटलिका रामक में चम्पकतोली, देवकी और अर्कणिका खेत,

(१५) गोमतीसारी में ब्रह्मेश्वर मन्दिर के समीप पट्टवायक द्वारा दान दिया गया चौदह द्रोण प्रमाण का मध्यमारक खेत और चौदह द्रोण प्रमाण का सेम्मक खेत,

(१६) कुल्य माप का कपिलेश्वर नाम का खेत, लवणोदक ग्राम से छः द्रोण माप का नन्दिकेरक खेत, भोगिक अण्णक के भाई द्वारा दान दिये गये खारी माप वाले दो खेत

(१७) गम्भीर पल्लिका में कुल्य माप का डडुवक जंगल खेत, पाँच द्रोण माप का देवक्यतोली खेत, मध्यमपुर से परे छः द्रोण माप का रजकस्थल खेत,

(१८) तीन खारी माप से अधिक बड़ा देवक्यानूप खेत, वासोदक जंगल और उससे ऊपर खट्टलिकातुलाकण्ठ यक्ष मन्दिर के समीप नरक खेत

(१९) आठ द्रोण माप का भृष्टिका खेत, उसके समीप कर्णक खेत, नदी के तट पर पाँच द्रोण माप का भृष्टक खेत, उससे पूर्व की ओर पाँच द्रोण माप का बीज करणी खेत, आठ द्रोण माप का वड्र खेत,

(२०) एक कूल और एक खारी माप का पर्वतार खेत, उसके समीप जंगल-खोहि्णका-खट्टलिका खेत, जो जंगल सहित नौ द्रोण माप का है आठ द्रोण माप का देवक्य खेत,

(२१) स्कम्भारतोली और निश्चिता देवी के मन्दिर के नीचे सिंचाई युक्त एक कुल्य भूमि देवक्खल ग्राम में सिंचाई वाली दो द्रोण भूमि, शुण्ठीवानूप ग्राम में सेम्मक खेत

(२२) मधुफलमूलक खेत और खट्टलिका खेत, छिद्रगर्ता ग्राम में एक कुल्य माप का जंगल सहित नागिल खेत, अन्ध्रलकर्ण के तीन खेत—जरोलक, केदार

(२३) और सेम्महिका, व्यासोष्ठिनी जंगल, उसके आगे डडुवक पर्वत पर भोगिक वराहदत्त द्वारा दी गई बहुत सी भूमियाँ, कार्तिकेयपुर के अन्तर्गत

(२४) निम्बसारी में सेनापति लवचन्द्र के पास से $5\frac{1}{2}$ स्वर्ण मुद्राओं में दिविर पति धनदत्त द्वारा खरीदा गया पाँच द्रोण माप का श्वेता खेत,

(२५) दूर्वाषण्डक ग्राम में कायस्थ णण्णक के पास से आठ सुवर्ण मुद्राओं में इसी दिविरपति द्वारा खरीदा गया कुल्य माप वाला वेतस खेत

(२६) जो कि देवकुलिका में जल, जंगल और घरों सहित वामन स्वामी के मन्दिर के निमित्त दान दिया गया है। तो यह आदेश दिया जाता है कि

(२७) इस दान की भूमियों के सम्बन्ध में जो आक्षेप करेगा, वह पाँच महा-पातकों का भागी होगा और काले साँपों के रूप में जन्म लेगा। भगवान् व्यास ने भी यह कहा है—

जो इस प्रकार का पाप करता है उसको विन्ध्य वनों में जलरहित सूखे वृक्ष के कोटर में निवास करना पड़ता है।

(२८) इस लेख के ताम्र शासन में दूतक और प्रमातार वराहदत्त हैं! इसका लेखक दिविरपति धनदत्त है। इसको सौवर्णिक अनन्त ने उत्कीर्ण किया है।

रा० सं० २०, मार्ग० दि० ५

टिप्पणी—

द्विजवर्मन् और विष्णुवर्मन् के ये दोनों ताम्र-अभिलेख परस्पर सम्बद्ध हैं, अतः इनकी टिप्पणी एक साथ दे दी गई है।

अलमोड़ा जिले के तालेश्वर नामक स्थान पर दो अभिलेख ताम्रपत्र पर अंकित प्राप्त हुये थे। इनको सबसे पहले अलमोड़ा जिले के डिपुटी कश्निर मि० सी० ई० डी० ने पाया था। यहाँ एक दीवार खींचने के लिये नींव खोदी जा रही थी। भूमि में गहरे गड़े हुये ये अभिलेख इस स्थान पर मिले। इनको सबसे पहले वाई० आर० गुप्ते ने सम्पादित किया और ये 'एपिग्राफिका इण्डिका' में प्रकाशित हुये।[1]

द्विजवर्मन् के ताम्रपत्र की लम्बाई लगभग $1'\frac{3}{16}''$ तथा चौड़ाई $11\frac{3}{8}''$ से $1'\frac{13}{16}''$ है। विष्णुवर्मन् के ताम्रपत्र का आकार लगभग । $3\frac{3}{16}'' \times 11\frac{15}{16}''$ है। प्रत्येक ताम्रपत्र पर ऊपर अण्डाकार मोहर जड़ी गई है, जिसमें राजकीय परिचय है। इसके ऊपर वृषभ का चिह्न है। इसका सिर बायें कन्धे के ऊपर दायां घूमा हुआ है। इसके सामने एक चिह्न है, जो मछली या कछुआ सा प्रतीत होता है। नीचे गरुड़ का अंकन हैं। पीछे के चिह्न को समझा नहीं जा सका है। यह सारी मोहर फण उटाये हुये नाग द्वारा परिवेटिष्त है। प्रथम ताम्रपत्र का भार $11\frac{3}{4}$ पौण्ड और दूसरे का $10\frac{3}{4}$ पौण्ड है। अभिलेख के अक्षर गहरे और स्पष्ट हैं। लिखावट एक ही ओर है। प्रत्येक अभिलेख में २८ पंक्तियाँ हैं। मोहर (सील) की लिपि गुप्त युग की सी है, परन्तु ताम्रशासन की लिपि उत्तरवर्ती ब्राह्मी है। अभिलेखों की

---

१. एपिग्रापिका इण्डिका वो० १३. पृ० १०९–१२१

भाषा गद्यमय संस्कृत है। परन्तु इसमें स्थान-स्थान पर व्याकरण और वर्तनी की अशुद्धियाँ है।[1] प्रायः लम्बे समास हैं और सन्धि के नियमों की उपेक्षा की गई है।

दोनों ताम्रशासन धार्मिक कार्यों तथा मन्दिरों के लिये अनुदान के रूप में हैं। पहला ताम्रशासन द्विजवर्मन् (द्युतिवर्मन्) का है। ऊपर की मोहर में तो द्विजवर्मन् नाम है, परन्तु शासनादेश में द्युतिवर्मन् है। विष्णुवर्मन् ने अपने पिता के दान की संपुष्टि की है। परम भट्टारक महाराजाधिराज द्युतिवर्मन् ने बलि-चरु-सत्र को प्रवर्तित रखना, दूध-दही-घी से अभिषेक करना, गन्ध-धूप-पुष्प से अर्चना करना, सम्मार्जन, लेपन, खेती, टूट-फूट, मरम्मत, परोपकार के व्रत का अनुष्ठान करना आदि कार्यों के लिये यह दानपत्र लिखा था। परम भट्टारक महाराजाधिराज विष्णुवर्मा ने महान् यज्ञों को जारी रखने के लिये इस अनुदान को सम्पुष्ट किया।

गुप्ते महोदय का कथन है कि इन दानपत्रों की मोहर तथा स्वयं दानपत्र दोनों ही जाली हैं। इसके लिये उन्होंने अनेक युक्तियाँ दी हैं।[2] डा० शिवप्रसाद डबराल ने इन युक्तियों की समीक्षा की है और गुप्ते महोदय की अनेक युक्तियों का खण्डन भी किया है।[3] इस सम्बन्ध में डा० डी० सी० सरकार का कथन उन्होंने उद्धृत किया है—

तालेश्वर अभिलेखों के सम्पादक ने इनको जाली ठहराया है। परन्तु अपनी पुष्टि की स्थापना करने के लिये उन्होंने जो तर्क दिये हैं, वे इतने युक्ति-युक्त नहीं हैं कि उनके आधार पर इन शासनों को जाली ठहराया जा सके।[4]

तथापि गुप्ते महोदय का कथन है कि इन ताम्र अभिलेखों को जाली भी माना जावे तो ये उन राजाओं के समय से बहुत पुराने नहीं हैं। उनको छठी और सातवीं शताब्दी के मध्य का मानना होगा। इनसे गढ़वाल के सम्बन्ध में अनेक भौगोलिक और ऐतिहासिक तथ्यों का ज्ञान होता है। गढ़वाल के इतिहास के चतुर्थ-अष्टम शताब्दी ई० के समय का अन्य कोई रिकार्ड हमको प्राप्त नहीं है। अतः ये ताम्रशासन इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण होंगे।

तालेश्वर स्थान से प्राप्त इन अभिलेखों से विदित होता है कि पाँचवीं-छठी शताब्दी ई० में गढ़वाल के इस क्षेत्र में एक शक्तिशाली राज्य था। यह पर्वताकर राज्य के नाम से प्रसिद्ध था। इसकी राजधानी ब्रह्मपुर थी। इस राज्य के अन्तर्गत वर्तमान गढ़वाल तथा अलमोड़ा जिले का पश्चिमी भाग (बैजनाथ सहित) सम्मिलित

१. एपिग्राफिका इण्डिका वो० १३ पृ० १०९
२. एपिग्राफिका इण्डिका वो० १३, पृ० १२
३. उत्तराखण्ड का इतिहास भाग ३, पृ० ४११–४१२
४. एज आफ इम्पीरियल कन्नौज पृ० १३१

था। डा० शिवप्रसाद डबराल ने इस युग के इन राजाओं को पौरववंशी माना है। ये निश्चय ही कत्यूरी वंश के पूर्वकालीन थे। छठी शताब्दी ई० में वराहमिहिर ने 'बृहत्संहिता' में ब्रह्मपुर राज्य के पौरवों का उल्लेख किया है। एटकिन्सन के अनुसार यह ब्रह्मपुर राज्य गढ़वाल ही है।[१] कत्यूरी राजाओं की राजधानी कार्तिकेयपुर उनके समय में समृद्ध नगर रही होगी, परन्तु द्विजवर्मन् के राज्य में यह ग्राम मात्र ही उल्लिखित है।[२] सम्भवतः ये पौरव वंशी राजा हर्ष के पहले से बाद तक शासन करते रहे होंगे। इनके बाद यहाँ कत्यूरी राजाओं का शासन स्थापित हुआ।

गढ़वाल के इन राजाओं के सम्बन्ध में विद्वानों ने प्रचुर विचार किया है। शिवप्रसाद डबराल ने इन विद्वानों के कथनों को संक्षिप्त रूप से लिखा है।[३] गूज के अनुसार ये राजा शूलिकवंशी थे। मौखरी राजा ईशानवर्मन् से पराजित होकर उन्होंने उनके सामन्त के रूप में कुमायूँ से लेकर चम्बा (वर्तमान हिमाचल) तक राज्य का विस्तार किया था। चम्बा का भरमौर ही ब्रह्मपुर रहा होगा। परन्तु इस कल्पना को अयथार्थ प्रतिपादित किया गया है।

ताम्र अभिलेखों में वर्णित राजाओं तथा स्थान नामों पर भी कुछ विचार करना समुचित होगा। मोहर से प्राप्त नामों के आधार पर वंशावली इस प्रकार है—

१. विष्णुवर्मा
२. वृषवर्मा
३. अग्निवर्मा
४. द्विजवर्मा (द्युतिवर्मा)
५. विष्णुवर्मा (द्वितीय)

इस स्थान पर अभिलेखों में आये कुछ स्थानों के नामों पर भी विचार करना उचित होगा। गुप्ते महोदय ने अनेक स्थानों की पहचान की है।

(१) कार्तिकेयपुर—

यह वर्तमान बैजनाथ ग्राम के समीप गोमती नदी की घाटी में था। कत्यूरी राजाओं को यहाँ पुराने भवनों के अवशेष मिले थे। उनको लेकर उन्होंने नये भवनों, मन्दिरों, जलाशयों और बाजारों की रचना कराई। पुराने नगर का नाम करवीरपुर रहा होगा। द्विजवर्मन् के ताम्र अभिलेख की १८ वीं पंक्ति का करवीरगर्ता पद इसकी सूचना देता है।

(२) ब्रह्मपुर—

दोनों ताम्र शासनों में ब्रह्मपुर का राजधानी के रूप में उल्लेख है। कनिंघम ने

---

१. हिमालन गजेटियर वो० २. भाग २, पृ० ३६२
२. ब्रह्मपुरे कार्तिकेयपुरग्रामक, द्विजवर्मन् का ताम्र अभिलेख पंक्ति २०
३. उत्तराखण्ड का इतिहास भाग ३, पृ० ४१२–४१४

इसको लखनपुर या इसके समीपवर्ती बताया है तथा एम० विविएन डी सेन्ट मार्टिन ने गढवाल के श्रीनगर को ही ब्रह्मपुर कहा है।[1] वोगेल के अनुसार यह चम्बा राज्य का सिरमौर है। नेशनल ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ इण्डिया में इसे चम्बा राज्य की प्राचीन राजधानी कहा गया है।[2] परन्तु उसके बहुत दूर होने से इस कथन को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग ने ब्रह्मपुर का उल्लेख पो–लो–हि–मो–पु–लो नाम से किया है।[3] कनिंघम ने ब्रह्मपुर की पहचान गढ़वाल से की है।[4] फुरर ने दक्षिण गढ़वाल को ब्रह्मपुर माना है।[5] डा० डबराल के अनुसार ब्रह्मपुर जनपद का विस्तार गङ्गा नदी से करनाली-कालीगङ्गा तक था। गूज के अनुसार ब्रह्मपुर राज्य कुमायूँ से चम्बा तक विस्तृत था।[6] शिवप्रसाद नैथानी का कथन है कि अभिलेखों में आये नामों के आधार पर ब्रह्मपुर को अलकनन्दा उपत्यका में कहीं होना चाहिये।

नीचे कुछ अन्य स्थानों की पहचान संक्षेप से दी जाती है।

(३) कोल्लपुरी—

(अभिलेख १·१८) वर्तमान कोलपुरी ही यह कोल्लपुरी है।

(४) सुवर्णकारपल्लिका—

(अभिलेख १·२०) सम्भवतः वर्तमान सोनल ग्राम ही सुवर्णकारपल्लिका है।

(५) भट्टिपल्लिका—

(अभिलेख १·२२) वर्तमान भेती ग्राम ही भट्टिपल्लिका रहा होगा।

(६) साधुतुङ्गग्राम—

(अभिलेख २·१४) सम्भवतः यह तुङ्गेश्वर के समीप रहा होगा।

(७) ज्योराणा—

(अभिलेख १·१६) वर्तमान समय में ज्यूड़ा या जोइया ग्राम ही प्राचीन काल का ज्योराणा ग्राम है।

(८) भेल्लमस्तक—

(अभिलेख १·८) आधुनिक भेल ग्राम ही प्राचीन काल का भेल्लमस्तक रहा होगा।

(९) कपिलगर्ता—

(अभिलेख १·१६) सम्भवतः आधुनिक कपालेश्वर या इसके समीपवर्ती स्थान को प्राचीन समय में कपिलगर्ता कहा गया था।

---

१. एटकिन्सन : हिमालयन गजेटियर वो० II भाग I पृ० ४५३.
२. जगदीश एस० शर्मा : नेशनल ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ इण्डिया पृ० ४४
३. शमहुइली तथा एस० बील० : दी लाइफ आफ ह्वेन्त्सांग पृ० ७१
४. पूर्वो पर कनिंघम की टिप्पणी : दी पो–लो–हि–मो–पु–लो एण्ड ब्रह्मपुर कन्ट्री इज अनमिस्टेकेब्ली गढ़वाल ह्विच लाइज नॉर्थ ऑफ मतिपुर
५. फुरर : मानूमेन्टल एन्टिकिटीज आफ नार्थ प्रोविन्सेज भाग–२
६. गूज : जनरल आफ यू० पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी १९५३, वो I पृ० ८२

(१०) **कक्कोंटा**—

(अभिलेख १·१८) वर्तमान गरखेत ही प्राचीन समय का कक्कोंटा ग्राम है।

(११) **नन्दिकेरकक्षेत्र**—

(अभिलेख २·१६) वर्तमान नन्दिकेसरी ही प्राचीन समय में नन्दिकेरक क्षेत्र था।

(१२) **लवणोदक**—

(अभिलेख २·१८) वर्तमान लवणसारी ही प्राचीन समय का लवणोदक ग्राम है।

द्युतिवर्मन् के ताम्र अभिलेख में उसके प्रपितामाह का नाम विष्णुवर्मन् और पितामह का नाम वृषवर्मन् है। अन्य किसी सूत्र से इन राजाओं के नामों का पता नहीं चलता। सम्भवतः विष्णुवर्मन् हर्ष के राज्य-काल में ब्रह्मपुर जनपद का शासक रहा होगा। यह हर्ष का सामन्त ही रहा होगा। ह्वेन्त्साँग ने यहाँ के राजा का नाम नहीं लिखा है। उसके पुत्र वृषवर्मन् ने हर्ष की मृत्यु के बाद साम्राज्य की निर्बलता का लाभ उठा कर यहाँ पर्वतीय क्षेत्र में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की होगी। परन्तु उसने परम भट्टारक महाराजाधिराज जैसा स्वतन्त्र राजा का विरुद धारण नहीं किया।

वृषवर्मन् का पुत्र अग्निवर्मन् था। उसने नाम के पहले श्री लगाया गया है। यह पराक्रमी राजा था और उसने शत्रुओं का विनाश किया था। पिता की कृपा से उसके पुत्र द्युतिवर्मन् ने राज्य प्राप्त किया। अभिलेख की मोहर में द्युतिवर्मन् का नाम द्विजवर्मन् लिखा गया है। सम्भवतः उसके दो नाम रहे होंगे। उसने राज्य का विस्तार किया। उसके समय में राज्य का नाम पर्वताकर था। यह कुमायूँ के पश्चिम से लेकर वर्तमान सारे गढ़वाल में विस्तृत था। उसने परम भट्टारक और महाराजाधिराज विरुद धारण किया था। उसकी राजधानी ब्रह्मपुर थी। द्युतिवर्मन् का पुत्र विष्णुवर्मन् हुआ। यह भी प्रतापी राजा था। उसने भी परम भट्टारक और महाराजाधिराज विरुदों को धारण किया था।

गढ़वाल के प्राचीन ऐतिहासिक स्रोतों से इन राजाओं के अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं। नाहीं इनसे पूर्व या बाद के किसी राजा का नाम प्राप्त होता है।

—:०:—

कल्याणवर्मा का पलेठी-अभिलेख

लिपि—उत्तरी ब्राह्मी (कुटिला)

भाषा—संस्कृत

समय—सातवीं-आठवी शताब्दी ई०

प्राप्ति-स्थान—पलेठी (देवप्रयाग)

मूल अभिलेख—

(१) ओं नमः सवित्रे ।। योतान्द्रिय.........सहस्रददातु सिद्धिः

(२) म–प.......... मातमा.......... लाभः.......... हरन्तु हरयो रवे-र्दुरित

(३) माशु......... यः स्वकीर्त्या महौजाः । श्रीमानादि(त्य) वर्मा

(४) नरपति......... परमभट्टारक महाराजाधिराज– परमेश्वर– श्रीकल्याण-वर्मा, भत

(5) श्रियः......... यस्य......... प्रभवस्य विजित.........

(६) ययाति गिरिस्सुमेरोरिव मन्दरः

(७) प्र......... श्रीजयमनः श्रेयान् सुतो समभूत् । जित्वा म्लेच्छगणा...... स्वामिने ये ददौ राज्यं......... ।। यस्य प्रतापदहनेनक.........

(८) नीत्वा दिनं घनतमिस्र भयानकं सुप्रालेय शैल......... तस्य जज्ञे सुतो वीरः

(९) श्रीमान्......... देव्या......... प्रबभूव यस्य । आदित्यवर्द्धन इति प्रथितः......... ।। अभवत्तस्य दौहित्रश्श्रीमान् कक्कवर्द्धनः ।।

(१०) .... विवर्द्धनः ।।............ पितेव शाखा विधिवत्प्रजानां मातेव......... ।।

(११) .... श्श्रीमा......... येन श्रीनरहरिसिङ्हतामुपगतेनोन्मीलिता विद्विषः ।।

(१२) .... राज्ये यस्य प्रतापा......... ।।

(१३) यस्य क्क्रुधं......... श्रीमन्ताः शरदिन्दुकुन्दधवलाः ।।

(१४) .... । राजा कल्याणवर्मा यमिह नरपति मन्यमानातिमात्रं......

(१५) .... इव कलौ कृतात्मा नृपतिः......... । कृतोयं.........

(१६) समग्रं त्रिवर्ग......... समुपदधे मनः ।......... सन्यासीव विसृज्य

(१७) .... महात्मा यमनियमपरत्वान्मुक्तसङ्गाभिरामः ।......... मनुरिव विदितात्मा तीर्थसेवापरोभूत् ।।

(१८) सत्त्वादियुक्तं। भूत्यै वङ्शस्य शैलविषयपरिगतं भूमिपालेन भक्त्या तेनैतद्धानभानोः सुविहितविभवं कारितं प्रीतिभाजा। कुसुमपुर-भुक्तौ...... निवासी।

(१९) विषयकरण......... चन्द्रदत्तः।......... उत्कीर्ण्णा चेयं प्रशस्तिस्तेनेवेति ॥[1]

हिन्दी अनुवाद—

(१) ओं॥ सूर्य देवता को नमस्कार करते हैं। इन्द्रियों को अच्छे कामों में लगाने वाला......... हजारों सिद्धियों को प्रदान करे।

(२) म—परमात्मा......... लाभ हो......... सूर्य की किरणें पापों को नष्ट करें।

(३) शीघ्र ही......... जिस महान् तेजस्वी ने अपनी कीर्ति से। श्रीमान् आदित्यवर्मा।

(४) राजा......... परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री कल्याणवर्मा हुए।

(५) लक्ष्मी का......... जिसके......... प्रभाव से जीता गया.........

(६) सुमेरु पर्वत के समान, मन्दर के समान ययाति।

(७) प्र......... श्रीजयमन् का कल्याणकारी पुत्र हुआ॥ म्लेच्छ गणों को जीत कर......... जिन्होंने अपने स्वामी को राज्य दे दिया.........। जिसके प्रताप की अग्नि में अनेक.........।

(८) हिमाच्छादित पर्वत पर घने अन्धकार के समान दिन को बिता कर......... उसका वीर पुत्र उत्पन्न हुआ।

(९) श्रीमान्......... देवी से......... जिसका उत्पन्न हुआ। वह आदित्यवर्द्धन नाम से प्रसिद्ध हुआ.........॥ उसका नाती श्रीमान् कक्कवर्द्धन हुआ।

(१०) .... बढ़ाने वाला था॥......... उसमें पिता के समान राजनीति निपुणता थी और वह माता के समान प्रजा का विधिवत् पालन करता था।

(११) .... श्रीमान् हुए......... जिन्होंने श्री नरसिंहावतारधारी विष्णु के स्वरूप को प्राप्त करके शत्रुओं का उन्मूलन किया था।

(१२) .... जिसके राज्य में प्रताप.........

(१३) जिनके क्रोध को......... श्रीमान् शरत्कालीन चन्द्रमा और कुन्दपुष्पों के समान धवल कीर्तिशाली हुए।

(१४) ....॥ राजा कल्याणवर्मा हुए।......... जिस राजा को यहाँ प्रजाजन बहुत आदर देते थे।

---

१. यशवन्तसिंह कठोच : गोपेश्वर शोधपत्रिका—१ (१९८०)

(१५) .... के समान कलियुग में वह राजा बहुत पुण्यात्मा था। उसने इसकी रचना कराई.........।

(१६) तीन वर्ग (धर्म-अर्थ-काम) को समग्र रूप से......... मन को एकाग्र कर लगाया।......... संन्यासी के समान छोड़ कर

(१७) .... वह महात्मा यमों और नियमों का पालन करके आसक्ति को छोड़ कर अभिराम हुआ।......... मनु के समान आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके वह तीर्थों के सेवन में तत्पर हो गया।

(१८) सत्र (यज्ञ) आदि से युक्त। देवों के प्रति प्रेम से भरे हुए उस राजा ने अपने वंश के कल्याण के लिये पर्वतीय प्रदेश में स्थित इस सूर्य मन्दिर को बहुत विशाल समृद्ध रूप से भक्तिभाव से बनवाया।

कुसुमपुर भुक्ति (देश) में......... निवास करने वाला।

(१९) विषय को प्रस्तुत करने वाला......... चन्द्रदत्त।......... उसने ही इस प्रशस्ति को यहाँ उत्कीर्ण किया।

टिप्पणी—

देवप्रयाग से टिहरी जाने वाले मार्ग पर प्रायः १८ किमी० दूर हिंडोलाखाल से पलेठी को मार्ग जाता है। भागीरथी की धारा से ५ किमी० दूर एक गहरी घाटी में पट्टी खास (वनगढ़) के पलेठी ग्राम में एक प्राचीन सूर्य मन्दिर है। केदारखण्ड में इस स्थान को भास्कर क्षेत्र कहा गया है। इस मन्दिर में बूटधारी सूर्य की मूर्ति प्रतिष्ठित है। सूर्य मन्दिर के बाहर बालुका–पाषाण शिलाओं पर दो अभिलेख प्राप्त हुए हैं।

इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से पलेठी महत्त्वपूर्ण है। यह सम्भव है कि यह पद पल्लिहट्टि का अपभ्रंश हो। इसको गलपलेठी भी कहते हैं।

पलेठी से प्राप्त दोनों ही अभिलेख अपूर्ण और त्रुटित हैं। इनमें से एक अभिलेख के तो कुछ अंश ही त्रुटित हैं, तथा उसका काफी अंश पढ़ लिया गया है। इसको इस स्थान पर उद्धृत किया गया है। दूसरा अभिलेख बहुत अधिक घिस गया है तथा उसके कुछ ही अक्षर पढ़े जा सके हैं। इससे अधिक जानकारी प्राप्त करना सम्भव नहीं हो रहा। इन अभिलेखों का संक्षिप्त विवरण निम्न है—

(१) प्रथम अभिलेख एक विस्तृत शिलापट्ट पर है। इसका आकार ५३½"× २७½"× ३½" का है। यह शिलापट्ट सूर्य मन्दिर का अंश नहीं है। यशवन्तसिंह कठोच के अनुसार[1] इसका सम्पादन सर्वप्रथम श्री साधुराम ने किया और यह सिद्ध

१: मध्य हिमालय का पुरातत्त्व पृ० ९७

भारती पत्रिका में प्रकाशित हुआ[1]। तदनन्तर इसकी अनुकृति लेकर इण्डियन एपिग्राफी में यह प्रकाशित हुआ[2]। इसका पुनः प्रकाशन हिन्दी अनुवाद के साथ गोपेश्वर की शोधपत्रिका (१९८०) में हुआ। इसको यशवन्तसिंह कठोच ने लिखा था।

अभिलेख की लिपि उत्तरी ब्राह्मी (कुटिला) है तथा भाषा संस्कृत है। अक्षरों की ऊँचाई भी ०·५" के लगभग है। इस अभिलेख में स्रग्धरा, उपजाति, अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित और वसन्ततिलका छन्दों का प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं गद्यभाग भी है।

इस अभिलेख में अनेक राजाओं के नाम आये हैं। यह नामावलि इस प्रकार है—

संख्या	नाम राजा	विरुद	पंक्ति
१	आदित्यवर्मा	महौजाः	३
२	कल्याणवर्मा	नरपति, परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर	४
३	जयमनः	श्रेयान्	७
४	आदित्यवर्द्धन	वीर	६
५	कर्क्कवर्द्धन (आदित्यवर्धन का दौहित्र)	श्रीमान्, विवर्धन	६
६	कल्याणवर्मा	मुक्तसङ्गाभिराम, विदितात्मा, तीर्थसेवनपर	१४

अभिलेख से विदित होता है कि इस वंश का पहला राजा आदित्यवर्द्धन हुआ। इसी नाम का राजा पुनः पांचवीं पीढी में हुआ। कल्याणवर्मा भी दो हुये। एक तो दूसरी पीढी में और दूसरा छठी पीढी में। इस अन्तिम कल्याणवर्मा ने इस अभिलेख को लिखवाया होगा।

अभिलेख से विदित होता है कि इस कल्याणवर्मा की अभिरुचि देवताओं की उपासना और अध्यात्म की ओर अधिक थी। वह सूर्य का उपासक था। उसने यहाँ पर्वतीय प्रदेश में सूर्य का मन्दिर बनवाया था।

इस सूर्य मन्दिर के अभिलेख का रचयिता कवि चन्द्रदत्त था। उसने ही इसको उत्कीर्ण किया था। वह कुसुमपुर भुक्ति का निवासी था।

(२) दूसरा अभिलेख बहुत अधिक खण्डित है। १२—१३ शताब्दियों के वर्षा

१. सिद्धभारती. भाग २ (१९५० ई०) पृ० २७३
२. ए० रि० इ० एपि० १९६८–६९ क्रम संख्या ३२० और ३२१, पृ० ४ और ५७

आंधी आदि के प्रभावों से यह बहुत कुछ क्षत हो चुका है। इसको पढना कठिन ही है। यह भी एक विशाल शिला पर उत्कीर्ण है। इसका आकार ४७"×२२$\frac{1}{2}$"×३$\frac{1}{2}$" है। इसके बाये अंश पर २० और दायें अंश पर २१ पंक्तियां अंकित हैं। इस पर दो शब्द समझ में आते हैं—कल्याणवर्मन् और आदित्यवर्मन्। सम्भवतः इस अभिलेख में भी कल्याणवर्मा द्वारा मन्दिर को बनवाये जाने का उल्लेख होगा। यदि इस अभिलेख को पूरा पढ़ा जा सकता तो उस युग के गढ़वाल के इतिहास पर बहुत अधिक प्रकाश पड़ सकता था।

अभिलेखों में उत्कीर्ण राजाओं के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। सम्भवतः आदित्यवर्मन् इस वंश का संस्थापक रहा होगा। डा० शिवप्रसाद डबराल का अनुमान है कि[1] कि आदित्यवर्मन् (आदिवर्मन्) हर्ष के राज्यकाल में उत्तराखण्ड के दक्षिणी-पश्चिमी भाग का शासक रहा होगा। गुप्त वंश के राज्यकाल में इस स्थान ने प्रसिद्धि प्राप्त कर ली होगी। पलेठी अभिलेखों के नरेशों के काल में देवप्रयाग को एक अति महत्त्वपूर्ण नगर होने का गौरव प्राप्त हो गया था और यह तीर्थयात्राओं का केन्द्र था। 'केदारखण्ड पुराण' के अनुसार इस नगर की स्थापना देवशर्मा नामक ब्राह्मण ने की थी[2]। उसको साक्षात् नारायण ने दर्शन दिये थे। अपने राज्यकाल की समाप्ति पर भगवान् राम ने देवप्रयाग आकर देवशर्मा को दर्शन दिये[3]।

पलेठी के राजाओं में पहला शासक आदित्यवर्मन् (आदिवर्मन्) था। उसके उत्तराधिकारी कल्याणवर्मा के विरुद हैं- नरपति, परम भट्टारक महाराजाधिराज और परमेश्वर। इससे विदित होता है कि वह परम प्रतापी था। उसने स्वतन्त्र राज्य की घोषणा की होगी। उसके उत्तराधिकारी (पुत्र) का नाम जयमनः था। वह भी प्रतापी राजा शत्रुओं को जीतने वाला हुआ। उसका पुत्र आदित्यवर्द्धन हुआ। तदनन्तर आदित्यवर्धन का नाती कक्र्कवर्धन राजा हुआ। वह प्रजा का पालक था और परम प्रतापी था। कक्र्कवर्धन का पुत्र कल्याणवर्मा हुआ। इसकी अध्यात्म की ओर अधिक रुचि थी। इसके विशेषण हैं--कृतात्मा, संन्यासीव, यमनियमपरायण, मुक्तसङ्गाभिराम, विदितात्मा, तीर्थसेवापर। उसी ने इस स्थान पर सूर्य मन्दिर का निर्माण कराया।

विज्जिका (चतुर्थ शताब्दी ई०) द्वारा लिखित 'कौमुदीमहोत्सव' नाटक में

१. उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग ३, पृ० ४०७
२. केदारखण्ड पुराण १५०. १८–१९
३. केदारखण्डपुराण १५०. ८२

कुसुमपुर के एक कल्याणवर्मा नामक राजा का उल्लेख है। अनेक राजकीय षड्यन्त्रों और कष्टों को भोग कर उसको अपना वंश-परम्परागत सिंहासन प्राप्त हुआ था। कैप्टन पंवार शूरवीरसिंह का मत है कि पलेठी के सूर्य मन्दिर का निर्माण इसी कल्याणवर्मा ने कराया होगा। नाटक की रचना से प्रतीत होता है कि बिज्जिका और कल्याणवर्मा समकालीन रहे होंगे। वह चतुर्थ शताब्दी ई० में गुप्त काल में हुआ था। समुद्रगुप्त से सत्ता के युद्ध में असफल होकर उसने यहाँ गढ़वाल में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की होगी। यह भी हो सकता है कि कल्याणवर्मा तीर्थयात्रा के लिये यहाँ आया हो। इस स्थान को समुचित जान कर उसने यह सूर्य का मन्दिर बनवाया हो। कल्याणवर्मा सूर्य का उपासक रहा होगा तथा उसने सूर्य मन्दिर बनवाया।

कल्याणवर्मा के साथ अनेक सेवक, कवि, कारीगर आदि आये होंगे। इनमें चन्द्रदत्त नाम का भी कारीगर है। अभिलेख के अनुसार यह चन्द्रदत्त कुसुमनगर का ही निवासी था। इससे भी अनुमान किया सकता है कि कल्याणवर्मा कुसुमपुर से यहाँ आया होगा।

डा० यशवन्तसिंह कठोच का मत है कि पलेठी के सूर्य मन्दिर का निर्माणकर्ता कल्याणवर्मा, उस कल्याणवर्मा से भिन्न था, जो 'कौमुदीमहोत्सव' का नायक है। नाटक के नायक कल्याणवर्मा को मौखरि वंश का माना गया है तथा वह गुप्त राजाओं के अभ्युदय से पहले हो गया था। 'कौमुदीमहोत्सव'' नाटक का रचना–काल ही समुद्रगुप्त से पहले का है। परन्तु पुरालिपिशास्त्र के आधार पर पलेठी का अभिलेख सातवीं—आठवीं शताब्दी ई० का है। ''कौमुदीमहोत्सव' के अनुसार कल्याणवर्मा के पिता का नाम सुन्दरवर्मा था। परन्तु पलेठी के अभिलेख में सुन्दरवर्मा का उल्लेख नहीं है[1]।

इन सब कथनों के बावजूद पलेठी के अभिलेखों के लिखाने वाले कल्याण-वर्मा के व्यक्तित्व को उस समय तक पूर्ण रूप से प्रमाणित करना कठिन है, जब तक कि ये दोनों अभिलेख पूरे तौर से पढ़ न लिये जावें।

---

१. मध्य हिमालय का पुरातत्त्व पृ० १४८

मोरध्वज का मृण्मुद्रा अभिलेख

लिपि	—	ब्राह्मी
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	आठवीं शताब्दी ई०
प्राप्तिस्थान	—	मोरध्वज

मूल अभिलेख—

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतोऽवदत् ।

अवदच्च यो निरोधो एवं वादी महाश्रमण: ॥

हिन्दी अनुवाद—

जो जो धर्म (वाद--विवाद में निर्णय करने वाले प्रमाण) से निर्णीत किये जाते हैं, उनके हेतुओं को तथागत (बुद्ध) ने कहा था । उनमें जो निरोध है, उसको भी कहा था । इस प्रकार का उपदेश महाश्रमण ने दिया था ।

टिप्पणी—

मोरध्वज की स्थिति नजीबाबाद—कोटद्वार मार्ग पर कोटद्वार के समीप है। यहाँ एक पुराने गढ़ के अवशेष मिले हैं। इसका घेरा लगभग ८०० फीट है। इसमें ४३ फीट के घेरे में शिगरी का भीटा है। यहाँ एक पुराना बौद्ध स्तूप भी है। किसी समय यह एक समृद्ध नगर रहा होगा और यह बौद्ध धर्म के प्रचार का महान् केन्द्र था। ह्वेन्त्सांग ने अपने यात्रा—विवरणों में मोरध्वज का उल्लेख किया है और इसको मो--यू--लो लिखा है[1]। यह अभिलेख यहाँ के खण्डहरों की ईंटों के मध्य प्राप्त हुआ है। इससे विदित होता है कि यह स्थान निश्चय ही बौद्ध धर्म के प्रचार का केन्द्र रहा था।

डा० शिवप्रसाद डबराल ने मोरध्वज का विस्तृत वर्णन किया है। यह स्रुघ्न से गोविषाण को जाने वाले राजमार्ग पर अवस्थित था। इस नगर का

१. वाटर्स: आन ह्वेन्त्सांग ट्रेवल्स इन इण्डिया, पृ० ३२८

व्यापारिक और राजनीतिक सभी दृष्टियों से महत्त्व था। पर्वतीय भूमि की तलहटी में स्थित होने के कारण यहाँ से पर्वतों पर मार्ग जाते थे और यहाँ से वहाँ के राजनीति के संचालन को नियन्त्रित किया जा सकता था। किसी राजा ने यहाँ सुदृढ दुर्ग का भी निर्माण कराया था[१]।

ऊपर लिखा गया है कि प्रस्तुत अभिलेख में हेतुवाद का वर्णन है। बौद्ध धर्म और दर्शन में हेतुवाद का बहुत महत्त्व है। इसको काष्ठ, मृत्तिका, ईंट, धातु, दीवारों आदि पर लिखा जाता था। डा० डबराल ने लिखा है—

इस श्लोक के सैंकड़ों-हजारों बार लिखने में ही लोग सारे धर्म-कर्मों की इतिश्री समझने लगे थे। इस हेतुवाद से विमोहित लोग वेद-ब्राह्मणों की निन्दा करने लगे। उन्होंने व्रतों आदि का पालन करना और यज्ञ आदि का सम्पन्न करना छोड़ दिया। इस हेतुवाद से अन्धे बने लोग निःशङ्क होकर नीच कार्य करने लगे[२]।

—:०:—

१. उत्तराखण्ड का इतिहास भाग ३, पृ० ४२१—४२४

२. उत्तराखण्ड का इतिहास भाग ३ पृ० १४६

ललितशूर का ताम्र अभिलेख [१]

लिपि	—	उत्तरी ब्राह्मी (कुटिला)
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	६१० विक्रमी सम्वत्
प्राप्तिस्थान	—	पाण्डुकेश्वर

मूल अभिलेख—

स्वस्ति।

(१) श्रीमत्कार्तिकेयपुरात् सकलामरदितितनुजमनुज–विभुभक्तिभाव–भरभारा–नमितोत्तमाङ्ग–सङ्गि–विकट–मुकुट–किरीट–विटङ्क–कोटिकोटि–शोऽनेक ना–

(२) ना–नायक–प्रदीप–द्वीप दीधितिपान–मद–रक्तचरणकमलामल–विपुल–बहल–किरण–केशरासारसारिताशेष–विशेषमोषि–घंनतमस्तेज–स्स्वर्धुनी–धौतजटाजू–

(३) टस्य भगवतो धूर्जटेः प्रसादान् निजभुजोपार्ज्जितौर्ज्जित्यनिर्ज्जित–रिपु–तिमिर–लब्धो–दयप्रकाश–दया–दाक्षिण्य–सत्य–सत्त्व–शील–शौच–शौर्यौदार्य-गाम्भीर्य-मर्यादार्य–वृत्ताश्चर्य– .

(४) कार्यवर्यादि–गुण–गणालंकृतशरीरः महासुकृतिसन्तानबीजावतारः कृत-युगागम–भूपाल–ललितकीर्तिः नन्दाभगवतीचरण–कमलकमला–सनाथमूर्तिः श्रीनिम्बरस् तस्य तनय–

(५) स् तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्री नाशूदेवी तस्याम् उत्पन्नः परम-माहेश्वरः परमब्रह्मण्यः शितकृपाणधारोत्कृत्तमत्तेभकुम्भा–कृष्टोत्कृष्टमुक्ता–वलीयशः पताका–

(६) च्छायचन्द्रिकापहसिततारागणः परमभट्टारक–महाराजाधिराज–परमेश्वर–श्रीमद्–इष्टगणदेवस् तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्री वेगदेवी तस्याम् उत्पन्नः परममा–

(७) हेश्वरः परमब्रह्मण्यः कलिकलङ्क–पङ्कातङ्क–मग्नधरण्युद्धार–धारित–धौरेय–वरवराहचरितः सहजमतिविभवविभूति–स्थगितारातिचक्रप्रतापदहनः अतिवैभव-संभारारम्भ–स–

(८) मरभीमभृकुटि–कुटिलकेसरिसटाभीतारातीभ-कलभरः अरुणारुण–कृपाण–बाण–गुण–प्राणगण–हठाकृष्टसलील–जयलक्ष्मी–प्रथमसमालिङ्गनावली

(९) कनकवलक्ष्य–सखेदसुरसुन्दरी–विधुतकर-स्खलद्वलय-कुसुम-प्रकर-प्रकीर्णा-वतंस–सम्वर्द्धितकीर्तिबीजः पृथुरिव दोर्दण्डसाधित–धनुर्मण्डल–बलावष्टम्भवश

(१०) वशीकृतगोपालनानिश्चलीकृतधराधरेन्द्रः: परमभट्टारक-महाराजाधिराज–परमेश्वर–श्रीमल–ललितशूरदेव (:) कुशली...... (।) ......अस्मिन्नेव श्रीमत्कार्ति-केयपुर–विषये समु

(११) पागतान् सर्व्वानिव नियोगस्थान् राज–राजानक–राजपुत्रा–सृष्ट (राजा) मात्य–सामन्त–महासामन्त–ठक्कुर–महामनुष्य–महाकर्तृ-कृतिक-महाप्रतीहार–महादण्ड-नायक–महाराज–प्रमातार–श

(१२) रभङ्ग–कुमारामात्य–ेपरिक–दुस्साध्यसाधनिक--दशापराधिक--चौरो--द्धरणिक--शौल्किक--गौल्मिक--तदायुक्तक--विनियुक्तक--पट्टकोपचारिका--शेधभङ्गाधिकृत-हस्त्य--श्वो--ष्ट्र

(१३) बल व्यापृतक--दूतप्रेषणिक--दाण्डिक--दण्डपाशिक--गमागमिक--शार्ङ्गि--काभित्वरमाणक--राजस्थानीय--विषयपति--भोगपति--नरपत्य--श्वपति--खण्डरक्ष्य--प्रति-शूरि

(१४) क--स्थानाधिकृत--वर्त्मपाल--कोट्टपाल--घट्टपाल--क्षेत्रपाल--प्रान्तपाल-किशोर--वडवा--गो--महिष्यधिकृत--भट्ट--महत्तम-- ाभीर---वणिक्—श्रेष्ठि—पुरोगान् अष्टादशप्रकृ

(१५) त्यधिष्ठा--नीयान् खश--किरात--द्रविड--कलिंग--गौड--हूणौ–ड्रामेदान्ध्र--चाण्डालपर्यन्तान् सर्वसम्वासान् समस्तजनपदान् भट-चट--सेवकादीन् अन्यांश्च कीर्तितान् अकीर्तितान् अस्म

(१६) त्पादपद्मोपजीविनः प्रतिवासिनश्च ब्राह्मणोत्तरान् यथार्हं मानयति बोधयति समाज्ञापयति--अस्तु वस् सम्विदितम् उपरिनिर्दिष्टविषये गोरुन्नासायां प्रतिबद्ध-खषियाक--परिभुज्यमानपल्लिका

(१७) तथा पणिभूतिकायां प्रतिबद्ध गुग्गुलपरिभुज्यमान–पल्लिकाद्वयं एते मया मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये पवन--विघट्टिता

(१८) श्वत्थपत्रवच्चलत्तरङ्ग--जीवलोकमवलोक्य जलबुद्बुदाकारमसारं वायुर् दृष्ट्वा गजकलभकर्णाग्रचपलताञ्चालक्षयित्वा परलोकनिःश्रेयसार्थं संसारार्ण--वोत्तर-णार्थं च

(१९) पुण्येऽह्नि उत्तरायणसङ्क्रान्तौ गन्धपुष्पदीपोपलेपननैवेद्यबलि--चरु--नृत्य-गेय-वाद्य--सत्रादि--प्रवर्तनाय खण्डस्फुटित--संस्करणाय अभिनव-कर्म्मकरणा

(२०) य च भृत्यपदमूलभरणाय च गोरुन्नासायां महादेवी श्री सामदेव्या स्वयं कारापितभगवते श्रीनारायणभट्टारकाय शासनदानेन प्रतिपादितः प्रकृतिपरिहारयुक्ताः

(२१) प्रचारभटाप्रवेशाः अकिञ्चित्प्रग्राह्याः अनाच्छेद्या आचन्द्रावर्कक्षिति-स्थितिसमकालिकः विषयाद् उद्धृपिण्डास्थसीमागोचर--पर्यन्तस् सवृक्षारामो ह्रद--प्रस्रवनोपे--

(२२) तः देवब्राह्मणभुक्तभुज्यमानवर्जितः यतस् सुखं पारंपर्येण परिभुञ्जतश् चास्योपरिनिर्दिष्टैर् अन्यतरैर् व्वा धरण--विधारण--परिपन्थनादि--कोष-द्रवो-मना-गपि न कर्त

(२३) व्यो नान्यथा द्रुहतो महान् द्रोहस् स्याद् (।) इति प्रवर्द्धमान--विजय-राज्य--सम्वत्सर एकविंशतितमे २१ माघवदि (।) दूतकोत्र महादानाक्षपटलाधिकृत श्रीपीजकः । लि

(२४) खितमिदं महासन्धिविग्रहाक्षपटलाधिकृत श्रीमद् आर्यवतुना (।) टंकोत्कीर्णा श्रीगंगभद्रेण ।

बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमिस् त
(२५) स्य तस्य तदा फलं ॥
सर्वान् एतान् भाविनः पार्थिवेन्द्रान् भूयो भूयो याचते रामभद्रः ।
सामान्योयं धर्म्मसेतुर् नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भिः ।
स्वदत्ताम् परदत्ताम् वा यो ह
(२६) रेत वसुन्धरां ।
षष्ठिम्वर्षसहस्राणि श्वविष्ट्या जायते कृमिः ॥
भूमेर् दाता याति लोके सुराणां
हंसैर् युक्तं यानम् आरुह्य दिव्यं ।
लौहे कुम्भे तैलपूर्णे सुतप्ते भूमेर्
(२७) हर्ता पच्यते कालदूतैः ॥
षष्टिम्वर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः ।
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत ॥
गाम् एकाञ्च सुवर्णञ्च भूमेर् अप्येकमङ्गुलम् ।
हृत्वा नर
(२८) कम् आयाति यावद् आहूतिसंप्लवं ॥
यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रैर् दानानि धर्म्मार्थ--यशस्कराणि ।
निर्माल्यवान्तप्रतिमानि तानि को नाम साधुः पुनराददीत ॥
अस्मत्कुल
(२९) क्रममिदं समुदाहरद्भिर् अन्यैश्च दानम् इदम् अभ्यनुमोदनीयम् ।
लक्ष्म्यास्तडित्-सलिलबुद्बुदचञ्चलाया दानं फलं परयशः परिपालनञ्च ।
इति कमल-दलोद्
(३०) बिन्दुलोल-मिदम् अनुचिन्त्य मनुष्यजीवितञ्च ।
सकलम् इदम् उदाहृतञ्च बुद्ध्वा न हि पुरुषैः परकीर्तयो विलोप्याः ।

(राजमुद्रा में नन्दी के साथ लेख है—)

श्रीनिम्बरस् तत्पादानुध्यातः
श्रीमद् इष्टगणदेवः तत्पादानुध्या (तः)
श्रीमल्ललितशूरदेवः क्षितीशः ।

हिन्दी अनुवाद—

(१) श्रीमत् कार्तिकेयपुर से सभी देवताओं, दैत्यों और मनुष्यों के विशद भक्ति-भाव के भरपूर भार से बहुत अधिक झुके हुये, सिरों पर रखे हुये विशाल मुकुटों के किरीटों के विटंकों के करोड़ों किनारों वाले, अनेक विधि

(२) नायक रूपी दीपकों के द्वीपों की पंक्तियों की किरणों के पान करने के मद से लाल चरण-कमलों की निर्मल विपुल तथा प्रभूत किरणों के समूह से विशेष रूप से सम्पूर्ण अज्ञान रूप अन्धकार को धो देने वाली तेजस्विनी स्वर्गगंगा के द्वारा जिनके जटाजूट धो दिये गये थे।

(३) ऐसे भगवान् शिव की कृपा से, अपनी भुजाओं द्वारा उपार्जित बल से शत्रु रूप प्रगाढ़ अन्धकार को जीत कर उन्नति, प्रकाश, दया, दाक्षिण्य, सत्य, बल, शील, शौच, शौर्य, औदार्य, गाम्भीर्य, मर्यादा, आर्य सदाचार, आश्चर्यजनक

(४) अच्छे कार्य करना आदि गुणों के समूह से अलंकृत शरीर वाले. महान् पुण्यशीलों के सन्तानरूपी बीज से अवतरित, सत्ययुग के आरम्भ के राजाओं के समान ललित यश वाले, भगवती नन्दा देवी के चरण-कमलों तथा लक्ष्मी से युक्त स्वरूप वाले श्री निम्बर नाम के राजा **थे**। उसके पुत्र

(५) जो कि उनके चरणों का ध्यान करते थे, निम्बर की रानी महादेवी श्री नाशूदेवी में उत्पन्न, परम माहेश्वर, ब्राह्मणों के परम भक्त, तेज कृपाण की धारा से काटे गये मदमत्त हाथियों के गण्डस्थल से खींच कर निकाले गये मोतियों की पंक्तियों के समान शुभ्र, यश रूपी पताका की

(६) कान्ति से चाँदनी और तारों की कान्ति का उपहास करने वाले, परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् इष्टगणदेव थे। उन इष्टगणदेव के पुत्र उनके चरणों का ध्यान रखने वाले और उनकी रानी महादेवी श्री वेगदेवी से उत्पन्न परम

(७) माहेश्वर, ब्राह्मणों के परम भक्त, कलियुग के कलंक रूपी पंक के आतंक में डूबी हुई पृथिवी का उद्धार करने के लिये आदि वराह के श्रेष्ठ चरित को धारण करने वाले, स्वाभाविक बुद्धि के सामर्थ्य के ऐश्वर्य से शत्रुओं की प्रताप रूपी अग्नि को स्थगित करने याले, प्रभूत सामग्री के साथ आरम्भ किये गये

(८) युद्ध में भयानक भृकुटि रूपी सिंह की कुटिल सटाओं से शत्रुओं की समस्त हस्ति रूपी सेना को भयभीत करने वाले, अत्यधिक लाल वर्ण के खड्ग और बाणों के सामर्थ्य से शत्रुओं के प्राणों को बलपूर्वक खींच कर विजयलक्ष्मी का विलास के साथ आलिंगन करने वाले

(९) दृष्टि में लक्षित होने से दुःखी देवांगनाओं के द्वारा झटके गये हाथों से

खिसके कंगन रूपी पुष्पों से विभूषित, जिसका यशरूपी बीज बढ़ रहा था, पृथु के समान जिन्होंने ने भुज-दण्डों से साक्षित धनुष को वलपूर्वक गोलाकार करके

(१०) पृथिवी का पालन करने के लिये हिमालय को निश्चल कर दिया था। ऐसे परम भट्टारक महाराजाधिराज श्रीमान् ललितशूरदेव कुशल से हैं। वे इसी श्रीमत् कार्तिकेयपुर देश में

(११) आये हुये अपनी आज्ञा में रहने वाले सभी राजाओं, राजानकों (राजाओं के वंशजों), राजपुत्रों, राजकर्मचारियों, अमात्यों, सामन्तों, महासामन्तों, ठाकुरों, महामनुष्यों, बड़े कर्मचारियों, कृतिकों, महाप्रतीहार, महादण्डनायक, महाराजप्रमातार,

(१२) शरभङ्ग, कुमारामात्य, उपरिक, दुःसाध्यसाधनिक, दशापराधिक, चौरोद्धरणिक, गौल्मिक, शौल्किक, तदायुक्तक, विनियुक्तक, पट्टकोपचारिक, आसेधभंगाधिकृत, हस्तिसेनाध्यक्ष, अश्वसेनाध्यक्ष, उष्ट्रसेनाध्यक्ष

(१३) दूतप्रेषणिक, दाण्डिक, दण्डपाशिक, गमागमिक, शार्ङ्गिक, अभित्वरमाणक, राजस्थानीय, विषयपति, भोगपति, नरपति, अश्वपति, वनरक्षक, प्रतिशूरिक,

(१४) स्थानाधिकृत, वर्त्मपाल, कोट्टपाल, घट्टपाल, क्षेत्रपाल, प्रान्तपाल, किशोरवडवाध्यक्ष, गोध्यक्ष, महिष्यध्यक्ष, भट्ट, महत्तम, आभीर, वणिक् और श्रेष्ठी को, अठारह वर्ग के

(१५) प्रजा- अधिकारियों को, खस, किरात, द्रविड़, कलिंग, गौड, हूण और औड्र, अमेद, आन्ध्र तथा चाण्डाल, पर्यन्त सभी निम्न जातियों को, सभी जनपदवासियों को, भट, चेट, सेवक, आदि और अन्यों को, जो कहे गये हैं या नहीं कहे गये हैं

(१६) अपने चरण-कमलों के आश्रय में रहने वाले पड़ौसियों को और श्रेष्ठ ब्राह्मणों को यथा योग्य सम्मान के साथ सम्बोधित करते हैं और आदेश देते हैं कि आप सबको विदित ही है कि ऊपर कहे गये कार्तिकेयपुर जनपद में गोरुन्नासा क्षेत्र में खसिया जाति द्वारा उपभुक्त ग्राम

(१७) पणिभूतिका में सम्बन्धित गुग्गुलों द्वारा भोग किये दो ग्राम, उनका मैंने माता-पिता और अपने पुण्य और यश की वृद्धि के लिये तथा वायु के वेग से हिलते हुये

(१८) अश्वत्थ के पत्ते के समान चंचल, तरंगित जीवलोक को देख कर, आयु को जल के बुद्बुदों के आकार के समान असार देख कर और हाथी के शिशु के कानों के अग्रभाग के समान चंचल जान कर परलोक के कल्याण के लिये तथा संसार रूपी समुद्र से पार उतरने के लिये

(१९) उत्तरायण की संक्रान्ति के पुण्य दिन में गोरुन्नासा में महादेवी श्री सामदेवी के द्वारा स्वयं बनवाये गये श्री नारायण भगवान् के लिये इस शासनादेश

द्वारा दान किया। जिससे कि यहाँ गन्ध, पुष्प, धूप. दीप, उपलेपन, नैवेद्य, बलि, चरु, नृत्य, गीत, वाद्य, सत्र आदि को संचालित किया जा सके, टूट-फूट की मरम्मत कराई जा सके, नये भवनों का निर्माण कराया जा सके

(२०) और सेवकों तथा आश्रितों का भरण-पोषण हो सके। इस सम्पत्ति पर प्रजा का अधिकार नहीं हो सकता।

(२१) सिपाही और सैनिक वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते। जब तक चन्द्र, सूर्य और पृथिवी की स्थिति है, उस समय तक इसको कोई ले नहीं सकता। तथा छीन नहीं सकता। यह दान का खेत यहाँ से लेकर उद्धृतपिण्डास्थ की सीमा तक है। यह वृक्षों और वाटिकाओं से युक्त है। जलाशयों और झरनों से युक्त है।

(२२) देवता और ब्राह्मण के अतिरिक्त इसका भोग अन्य के द्वारा वर्जित है, क्योंकि वे परम्परा से ही सुख पूर्वक इसका भोग कर सकते हैं। ऊपर कहे गये अधिकारियों तथा प्रजा द्वारा अन्य किसी को इस सम्पत्ति के कोष को रखना, धारण करना या नष्ट करना आदि कभी नहीं करना चाहिये।

(२३) अन्यथा द्रोह करने वाले के लिये यह महान् द्रोह होगा।

इस शासनादेश का विवरण निम्न है—

लेख का समय—माघ वदि २१, प्रवर्द्धमान विजय-राज्य संवत्सर

दूतक—महादानाक्षपटलाधिकृत श्री पीजक

(२४) लेखक—महासन्धिविग्रहाक्षपटलाधिकृत श्रीमान् आर्यवतु

उत्कीर्णक—श्री गंगाभद्र

सगर आदि बहुत से राजाओं ने इस पृथिवी का भोग किया था। जिस समय जिस जिस की यह भूमि रही

(२५) उस उस समय उसको फल प्राप्त हुआ।

भविष्य में होने वाले सभी राजाओं से रामभद्र पुनः पुनः याचना करते हैं कि राजाओं का यह सामान्य धर्मसेतु है कि समय समय पर आपको सबका पालन करना चाहिये।

अपने द्वारा दान की गई अथवा अन्य के द्वारा दान की गई

(२६) भूमि का जो अपहरण करता है, वह साठ हजार वर्ष तक कुत्ते की विष्ठा में कृमि बन कर रहता है।

भूमि का दान करने वाला दानी हंसों से युक्त दिव्य विमान में आरूढ़ होकर देवताओं के लोक में जाता है। भूमि का अपहरण करने वाला खूब तपे हुये तेल से भरे लोहे के घड़े में

(२७) यम के दूतों द्वारा पकाया जाता है।

भूमि का दान करने वाला दानी साठ हजार वर्षों तक स्वर्ग में रहता है।

उसको छीनने वाला अथवा छीनने की अनुमति देने वाला उतने ही समय तक नरक में रहता है। दान की गई एक भी गौ को, एक भी स्वर्ण को और एक भी अंगुल भूमि को छीनने पर मनुष्य

(२८) प्रलय पर्यन्त नरक में रहता है।

पहले राजाओं ने धर्म, अर्थ और यश को देने वाले जो दान किये थे, जो निर्माल्य के समान थे, उनको कौन सज्जन पुरुष पुनः छीन सकता है।

हमारे कुल

(२६) की यह परम्परा है कि दूसरों ने जो दान किया है, उसका अनुमोदन करना चाहिये। लक्ष्मी विद्युत तथा जल की बूँदों के समान चंचल है। दान का फल है- परम यश की प्राप्ति तथा उसकी रक्षा करना। इस प्रकार कमल के पत्ते

(३०) पर पड़े हुये जल के बिन्दु के समान मनुष्य का यह जीवन चंचल है। इस बात को समझ कर सब कहा गया है। मनुष्य को चाहिये कि दूसरों की कीर्ति को विलुप्त न करे।

(ताम्रशासन की गोल तथा नन्दी-अंकित मुद्रा पर तीन पंक्तियों का लेख)

श्रीनिम्बर, उनके चरणों का सेवक

श्रीमान् इष्टगणदेव तथा उनके चरणों का सेवक

श्रीमल्ललितशूरदेव

—:o:—

ललितशूरदेव का ताम्र अभिलेख [२]

लिपि	—	उत्तरी ब्राह्मी (कुटिला)
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	६११ विक्रमी सम्वत्
प्राप्तिस्थान	—	पाण्डुकेश्वर

मूल अभिलेख—

स्वस्ति ।।

श्रीमत्कार्तिकेयपुरात् सकलामर–दिति–तनुज–मनुज–विभु–भक्ति-भाव–भरोन्न-मितोत्तमाङ्गसङ्गिविकटमुकुट–किरीट–विटङ्क– कोटिकोटिशोऽनेक– नानानायक– प्रदीप-द्वीप–दीधिति–पानमदमत्त–चरण– कमलामल–विपुलबहल– किरण– केशरासारसारिता-शेष–विशेष–मोषिघनतमस्तेजस् स्वर्धुनीधौत–जटाजूटस्य भगवतो धूर्ज्जटेः प्रसादान् निज-भुजोपार्जितौर्जित्यनिर्जित–रिपु–तिमिर–लब्धोदय–प्रकाश–दयादाक्षिण्यादि–शील–शौच-शौर्यौं– दार्य– गाम्भीर्य–मर्यादार्यवृत्ताश्चर्य–कार्यवर्यादिगुण– गणालङ्कृत शरीरः महा--सुकृतिसन्तानबीजावतारः कृतयुगागम–भूपालललित–कीर्तिः नन्दा–भगवतीचरण–कम लकमला–सनाथमूर्तिः श्रीनिम्बरस्, तस्य तनयस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी श्री महादेवी श्रीनाशूदेवी तस्याम् उत्पन्नः परममाहेश्वरः परम–ब्रह्मण्यः शितकृपाणधारोत्कृत्तोत्खात–मत्तेभ–कुम्भाकृष्टोत्कृष्ट–मुक्तावली–यशःपताकाच्छाय–चन्द्रिका–पहसित-तारागणः पर-मभट्टारक–महाराजाधिराज–परमेश्वर श्रीमद् इष्टगणदेवस्, तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी श्री महादेवी श्री वेगदेवी तस्याम् उत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यः कलिकलङ्क–पङ्कातङ्क–धरण्युद्धारधारित–धौरेयवर–वराहचरितः सहज–मति–विभवविभुविभूतिस्थ-गितारातिचक्र–प्रताप–दहनः अतिवैभव–सम्भारारम्भ–सम्भृत–भीम–भृकुटि– कुटिल–केसरि–सटाभीत–भीतारातिकलभभरः अरुणारुण–कृपाण–बाणगुण–प्राण–गण–हठाद्–आकृष्टोत्कृष्ट–सलील–जयलक्ष्मी–प्रथमसमालिङ्गनावलोकन–बलक्ष्य–सखेद-सुरसुन्दरी–विधूत–करस्खलद् वलय–कुसुम–प्रकर–प्रकीर्णावतंस–संवर्द्धितकीर्तिबीजः पृथुरिव दोर्दण्ड-साधित--चतुर्मण्डलावष्टम्भवश--वशीकृत--गोपालना--निश्चलीकृतधराधरेन्द्रः परमभट्टा-रक--महाराजाधिराज--परमेश्वर--श्रीमल्ललितशूरदेवः कुशली

श्रीमत्कीर्तिपुरविषये समुपगतान् सर्वानिव नियोगस्थान् राज--राजन्यक--कृतिक--महाप्रतीहार--महादण्डनायक--महाराजप्रमातार--शरभङ्ग--कुमारामात्यो--परिक-- दुःसा-ध्यसाधनिक--दशापराधिक--चौरोद्धरणिक--शौल्किक--गौल्मिक--तदायुक्तक--विनियुक्तक--

षट्टकापचारिक--ासेधभङ्गाधिकृत--हस्त्यश्वो-ष्ट्र--बलाधिकृत--दूतप्रेषणिक--दाण्डिक--दण्डपाशिक--गमागमिक--शार्ङ्गिका–भित्वरमाणक–राजस्थानीय–विषयपति–भोगपति– नरपत्य--श्वपति–खण्डरक्ष्य--प्रतिशूरिक--स्थानाधिकृत--वर्त्मपाल--कोट्टपाल--घट्टपाल--क्षेत्रपाल--प्रान्तपाल--किशोर--बडवा--गो--महिष्यधिकृत-- भट्ट--महत्तम-- (ा) भीर--वणिक्--श्रेष्ठि--पुरोगाम् साष्टादश--प्रकृत्यधिष्ठानीयान् खस--किरात--द्रविड--कलिंगौड्र--गौड--हूणौड्र--द्रमिणा--मेदान्ध्र--चाण्डालपर्यन्तान् सर्वसंवासान् समस्तजनपदान् भट--चाट--सेवकादीन् अन्यांश्च कीर्तितान् अकीर्तितान् अस्मत्पादपद्मोपजीविनः प्रतिवासिनश्च ब्राह्मणोत्तरान् यथार्हं मानयति बोधयति समाज्ञापयति—

अस्तु वः संविदितं उपरि--निर्दिष्ट--विषये पलसारिप्रतिबद्ध देवेन्द्रवाक--परिभुज्यमानक--स्थानं मया मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये पवन--विघट्टिताश्वत्थपत्र--चञ्चलताङ्ग--जीवलोकम् अवलोक्य जलबुद्बुदाकारम् असारं संसारं च दृष्ट्वा गजकलभकर्णाग्रचपलताञ्च लक्ष्म्या ज्ञात्वा परलोकनिःश्रेयसार्थं संसारार्णवतारणार्थं पुण्येऽहनि विषुवत्संक्रान्तौ गन्ध--पुष्प--धूपोपलेपन--बलि--चरु--नृत्य--गीत--गेय--वाद्य--सत्रादि--प्रवर्तनाय खण्डस्फुटित--संस्करणाय च गरुडाश्रमे भट्टश्रीपुरुषेण प्रतिष्ठापितः भगवतः श्रीनारायणभट्टारकस्य शासनदानेन प्रतिपादितं प्रकृतिपरिहारयुक्तं अचाट--भट्ट--प्रवेशम् अकिञ्चित्प्रग्राह्यम् अनाच्छेद्यम् आचन्द्रार्क--क्षिति--स्थितिसमकालिकविषयाद् उद्धृतपिण्डं स्वसीमागोचर--पर्यन्तं सवृक्षारामोद्भेद--प्रस्रवणोपेतं देव--ब्राह्मण--भुक्तभुज्यमान--वर्जितं यतः सुखं पारम्पर्येण परिभुञ्जतश्चास्योपरिनिर्द्दिष्टैर् अन्यतरैर्वा धरण--विधारण--परिपन्थनादिकोपद्रवो मनागपि न कर्तव्योऽन्यथा महान् द्रोहः स्याद इति निवेशः (।) तस्य देवस्य बदरिकाश्रमीय--तपोवनप्रतिबद्ध--ब्रह्मचारिणा यत्किञ्चित् प्रार्थ्यं तत् कर्तव्यं तत्सर्वं ब्रह्मचारिभिः करणीयम् ।

प्रवर्द्धमानविजयराज्य–संवत्सरे द्वाविंशतितमे सम्वत् २२ कार्तिक-सुदी १५ । दूतकोऽत्र महादानाक्षपटलाधिकृतश्रीबीजकः महासन्धिविग्रहाक्षपटलाधिकृत श्रीमदार्यट–वचनात् टङ्कोत्कीर्णा श्रीगङ्गभद्रेण ।

बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ।।
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धराम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि श्वविष्टा जायते कृमिः ।।
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गं तिष्ठति मानवः ।
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तानेव नरकं वसेत् ।।
गामेकां च सुवर्णञ्च भूमेरप्येकमंगुलम् ।
हर्ता नरकमाप्नोति यावदाहूतिसंप्लवम् ।।

इति कमलदलाम्बु–बिन्दुलीलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्यजीवितं च ।
सकलमिदमुदाहृतञ्च बुद्ध्वा न हि पुरुषैः परकीर्तयो विलोप्याः ।।

हिन्दी अनुवाद—

स्वस्ति ।।

श्रीमत् कार्तिकेयपुर से सभी देवताओं, दैत्यों और मनुष्यों के विशद भक्ति-भाव से भरे तथा ऊँचे उठे हुए सिर पर रखे हुए विशाल मुकुट के किरीट के विटंकों के किनारों वाले, करोड़ों अनेक विविध नायकों के दीपक रूपी द्वीपों की किरणों के पान करने के मद से लाल चरण-कमलों से निर्मल विपुल तथा प्रचुर किरणों रूपी श्रेष्ठ केसर-समूह द्वारा विशेष रूप से सम्पूर्ण घने अज्ञान रूपी अन्धकार को हटा देने वाली स्वर्ग-गङ्गा द्वारा जिनके जटाजूट धो दिये गये थे, ऐसे भगवान् शिव की कृपा से अपनी भुजाओं द्वारा उपार्जित बल द्वारा शत्रु रूपी प्रगाढ़ अन्धकार को जीत कर उन्नति, प्रकाश, दया, दाक्षिण्य आदि को प्राप्त करने वाले, शील, शौच, शौर्य, उदारता, गम्भीरता, मर्यादा, आर्य सदाचार, आश्चर्यजनक श्रेष्ठ कार्य आदि गुणों के समूह से अलंकृत शरीर वाले, महान् पुण्यों की परम्पराओं के बीजों के अवतार रूप, सत्ययुग के प्रारम्भ के राजाओं के समान ललित कीर्ति वाले, भगवती नन्दा के चरण-कमलों तथा लक्ष्मी से युक्त स्वरूप वाले श्री निम्बर नाम के राजा थे।

श्री निम्बर के पुत्र, जो कि उनके पिता के चरणों में ध्यान रखने वाले थे और उनकी रानी श्री नाशूदेवी से उत्पन्न हुए थे, परम माहेश्वर, ब्राह्मणों के प्रति परम भक्ति रखने वाले, तीक्ष्ण कृपाण की धारा से काट कर उखाड़े गये मत्त हाथियों के गण्डस्थलों से खींच कर निकाले गये मोतियों की पंक्तियों के समान शुभ्र यश रूपी पताका की कान्ति रूपी चाँदनी से नक्षत्रों की कान्ति का उपहास करने वाले, परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, श्रीमान् इष्टगणदेव थे।

उन इष्टगणदेव के पुत्र, जो कि उनके पिता के चरणों में ध्यान रखने वाले थे, और उनकी रानी श्री महादेवी श्री वेगदेवी से उत्पन्न हुए थे, परम माहेश्वर, ब्राह्मणों के परम भक्त, कलियुग के कलंक रूपी पंक से आतंकित पृथिवी का उद्धार करने के लिये आदिवराह के श्रेष्ठ चरित को धारण करने वाले, स्वाभाविक बुद्धि के सामर्थ्य से और व्यापक ऐश्वर्य से शत्रुओं की प्रताप रूपी अग्नि को बुझा देने वाले, वहुत अधिक वैभव से युक्त सामग्रियों के साथ आरम्भ किये गये युद्ध में भयानक भ्रुकुटि रूपी सिंह की कुटिल सटाओं से शत्रुओं की सम्पूर्ण हस्ति–सेना को भयभीत कर देने वाले, अत्यधिक लाल वर्ण के खड्ग और बाणों के सामर्थ्य से शत्रुओं के प्राणों को खींच कर विलास के साथ विजयलक्ष्मी का आलिंगन करने वाले, उस लक्ष्मी के प्रथम आलिंगन को देख कर लज्जित तथा दुःखी देवांगनाओं द्वारा झटके गये हाथों से गिरे हुए बिखरे कंगनों तथा पुष्पों के समूह से जिसके यश के बीज वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे, महाराज पृथु के समान जिन्होंने भुजदण्डों द्वारा साधित धनुष को गोलाकार करके पृथिवी का पालन करने के लिये हिमालय पर्वत को निश्चल कर दिया

था, ऐसे परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, श्रीमान् ललितशूरदेव कुशल से हैं।

वे इस श्रीमत् कार्तिकेयपुर में आये हुए, आज्ञा का पालन करने वाले सभी राजाओं, क्षत्रियों, राजपुत्रों, राजकर्मचारियों, अमात्यों, सामन्तों, महासामन्तों, ठाकुरों, महामनुष्यों, महाकर्ता, कृतिक, महाप्रतीहार, महादण्डनायक, महाराजप्रमातार, शरभंग, कुमारामात्य, उपरिक, दुःसाध्यसाधनिक, दशापराधिक, चौरोद्धरणिक, शौल्किक, गौल्मिक, तदायुक्तक, विनियुक्तक, पट्टकापचारिक, आसेधभंगाधिकृत, हस्त्यध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, उष्ट्राध्यक्ष, बलाधिकृत, दूतप्रेषणिक, दाण्डिक, दण्डपाशिक, गमागमिक, शार्ङ्गिक, अभित्वरमाणक, राजस्थानीय, विषयपति, भोगपति, नरपति, अश्वपति, वनरक्षक, प्रतिशूरिक, स्थानाधिकृत, वर्तमपाल, घट्टपाल, क्षेत्रपाल, प्रान्तपाल, किशोर, बडवाध्यक्ष, गोऽध्यक्ष, महिषी–अध्यक्ष, भट्ट, महत्तम, आभीर, वणिक् और श्रेष्ठी आदि १८ वर्ग के प्रजा–अधिकारियों को, खश, किरात, द्रविड, कलिंग, औड्र, गौड, हूण, औड्र, द्रमिड, आमेद, आन्ध्र और चाण्डाल पर्यन्त सभी निम्न निवासी जातियों को, समस्त जनपदवासियों को, भट-चाट-सेवक आदियों को और अन्यों को, जो कहे गये हैं, या नहीं कहे गये हैं, अपने चरण-कमलों के आश्रय में जीविका प्राप्त करने वाले पड़ोसियों को और श्रेष्ठ ब्राह्मणों को यथायोग्य सत्कार देते हैं, सम्बोधित करते हैं, और आदेश देते हैं—

आप सबको विदित हो कि ऊपर निर्देश किये गये देश कार्तिकेयपुर जनपद में पलसरि गाँव से सम्बद्ध, देवेन्द्रवाक द्वारा भोगी जाती हुई भूमि को मैंने माता-पिता तथा अपने पुण्यों की अभिवृद्धि के लिये, वायु के वेग से हिलते हुए पीपल के पत्ते के समान चंचल अस्थिर तरंगित जीवलोक को देख कर, जल के बुलबुलों के समान असार संसार को देख कर, यह लक्ष्मी हस्तिशावक के कानों के अग्रभाग के समान चंचल है इस बात को जानकर, परलोक में कल्याण को प्राप्त करने के लिये तथा संसार रूपी सागर को पार करने के लिये, पुण्य दिवस में, विषुवत् संक्रान्ति के समय ताम्र–शासन द्वारा दान कर दिया है। इससे गरुडाश्रम में, भट्टश्रीपुरुष द्वारा प्रतिष्ठित किये गये भगवान् नारायण के मन्दिर में गन्ध, पुष्प, धूप, उपलेपन, बलि, चरु, नृत्य, गीत, गेय, वाद्य, सत्र आदि चालू रहेंगे और टूट-फूट की मरम्मत होती रहेगी।

इस सम्पत्ति पर प्रजा का अधिकार नहीं हो सकेगा, यहाँ सिपाही और सैनिक प्रवेश नहीं कर सकते, इसको ले नहीं सकते, इसको कोई छीन नहीं सकता। जब तक चन्द्रमा, सूर्य और तारों की स्थिति है, तब तक इसका अस्तित्त्व रहेगा।

इस दान के क्षेत्र से सब पिण्ड हटा दिये गये हैं, जहाँ तक सीमायें दिखाई देती हैं, यह वहाँ तक है। इसमें वृक्ष और वाटिकायें सम्मिलित हैं। स्रोत और झरने हैं। देवताओं और ब्राह्मणों के अतिरिक्त इसका कोई भोग नहीं कर सकता। वे ही

परम्परा के अनुसार सुखपूर्वक इसका भोग कर सकते हैं। ऊपर निर्दिष्ट किये गये अधिकारियों और प्रजाजनों को इस सम्पत्ति को अपने पास रखना, धारण करना या नष्ट करना आदि उपद्रव स्वल्प से भी कभी नहीं करने चाहियें। अन्यथा आज्ञा का उल्लंघन करने में महान् राजद्रोह समझा जायेगा। यह आदेश है।

उस देव के बदरिकाश्रम के तपोवन से सम्बद्ध ब्रह्मचारी जो कुछ भी प्रार्थना करें, सब ब्रह्मचारियों को वैसा ही करना चाहिये।

इस शासनादेश का विवरण इस प्रकार है—

लेख का समय—प्रवर्द्धमान विजयराज्य संवत्सर २२, संवत् २२, कार्तिक सुदी १५

दूतक—महादानाक्षपटलाधिकृत श्रीमान् श्री बीजक

लेखक—महासन्धिविग्रहाक्षपटलाधिकृत श्रीमान् आर्यट

उत्कीर्णक—श्री गङ्गभद्र

सगर आदि अनेक राजाओं ने इस भूमि का उपयोग किया था। जिस समय जिस-जिस की यह भूमि रही, उस समय उस उसको उसका फल प्राप्त हुआ॥

अपने द्वारा दान की गई अथवा अन्य के द्वारा दान की गई पृथिवी का जो अपहरण करता है, वह साठ हजार वर्षों की अवधि तक कुत्ते की विष्ठा में कीड़ा होकर रहता है॥

भूमि का दान करने वाला दानी साठ हजार वर्षों तक स्वर्ग में निवास करता है। जो उसको छीन लेता है या छीनने की अनुमति देता है, वह उतने ही समय तक नरक में रहता है॥

दान की गई एक भी गाय को, एक भी स्वर्ण को, एक भी अंगुल भूमि को जो व्यक्ति छीन लेता है, वह प्रलय काल पर्यन्त नरक में रहता है॥

इस लक्ष्मी और मनुष्य का जीवन कमल के पत्ते पर गिरे हुए जलबिन्दु के समान चंचल है। इस बात को समझ कर यह सब कहा गया है। मनुष्य को चाहिये कि वह दूसरों की कीर्ति को विलुप्त न करे॥

—:०:—

भूदेव का शिलालेख

लिपि	—	उत्तरी ब्राह्मी (कुटिला)
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	दसवीं शताब्दी वि०
प्राप्ति स्थान	—	बागेश्वर मन्दिर

मूल अभिलेख—

ललितशूरदेय के पुत्र भूदेव का एक शिला–अभिलेख बागेश्वर मन्दिर में था। अनेक वर्ष पहले वह शिला गुम हो गई तथा वह संस्कृत अभिलेख उपलब्ध नहीं रहा। परन्तु एटकिन्सन ने उस शिलालेख के अंग्रेजी अनुवाद को अपने ग्रन्थ में प्रकाशित किया है[1]। अभिलेख का अंग्रेजी अनुवाद एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल की पत्रिका में भी छपा था[2]। राहुल सांकृत्यायन ने इसका अनुवाद हिन्दी में किया है। इसको नीचे दिया गया है।

हिन्दी अनुवाद—

नमः स्वस्ति ।। इस सुन्दर मन्दिर के दक्षिण भाग में विद्वद् रचित वंशावली उत्कीर्ण है। जन्तुजालध्वंसक रम्य ग्राम में तवुपीडदत्त नामक द्वार पर अवस्थित परदेव को नमस्कार है।

परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर मसन्तन (वसन्तन) देव नाम के राजा हुये थे। उनकी पतिपरायणा पत्नी रानी सज्यनरा नेहा से उत्पन्न परम सम्मानित श्रद्धाभाजन, अतिविभवसम्पन्न परम भट्टारक, महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् हुये। परमेश्वर (शिव) के पूजार्थ अनवरत वृत्तिप्रदाता, जयकूलभुक्ति की ओर जाने वाले कई सार्वजनिक मार्गों के निर्माता, अंबलिपालिका के व्याघ्रेश्वर देव के पूजार्थ गन्ध--पुष्प--धूप--दीप--अनुलेपन द्रव्यों के दाता, और युद्धों में त्राता थे। उन्होंने अपने पिता (वसन्तनदेव) द्वारा वैष्णवों को प्रदत्त शरणेश्वर ग्राम और पुष्पादि द्रव्य इन्हीं देव (व्याघ्रेश्वर) को प्रदान किया तथा सार्वजनिक मार्गों के किनारे गृह (पान्थशालायें) बनवाये। उनकी कीर्ति यावत् चन्द्र--दिवाकर अचल रहेगी।

---

१. एटकिन्सन : हिमालयन गजेटियर वो० II पार्ट I पृ० ४६६

२. ट्रेल : जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल वो० VII पृ० १०५६

उनके पुत्र परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर खर्परदेव हुये। उनके पुत्र उनकी पतिपरायणा पत्नी .... से उत्पन्न वित्त-विद्या--मान समन्वित तत्पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् अधिधज हुये। उनके पुत्र उनकी पतिप्रिया रानी लद्धादेवी से उत्पन्न कर्म--धन-मान-बुद्धि सम्पन्न त्रिभुवनराजदेव हुये। उन्होंने इन देव (व्याघ्रेश्वर) को जयकूलभुक्तिका गांव में दो द्रोण का नय नामक उर्वर खेत प्रदान किया तथा उन्हीं देव (व्याघ्रेश्वर) की पूजा के लिये उसमें गन्धादि द्रव्यों के उत्पादन के लिये अनुमति दी। यह भी विदित हो कि उन (त्रिभुवनराजदेव) के परम मित्र किरातपुत्र ने उक्त देव तथा गंवियपिंड देवता के लिये ढाई द्रोण भूमि दान दी। अधिधज के दूसरे पुत्र ने घरके देवता को एक द्रोण भूमि दी तथा .... (दोण) भूमि के दान का संवत् ११ में शिलालेख करवाया। उसने व्याघ्रेश्वर देव को एक द्रोण और चामुण्डा देवी को १४ .... (खण्ड) भूमि प्रदान की और व्याघ्रेश्वर की पूजा के लिये दान किये गये।

दूसरे भी दाक्षिण्य--सत्य--सत्त्व--शील--शौच--औदार्य--गाम्भीर्य--मर्यादा--आर्यवृत्त आदि गुणगणालंकृत, सुदर्शन--नन्दन--अमरावति--नाथचरणकमल--पूजार्थ--धृतशरीर निंवर्त नाम के राजा हुये, जो अपने अनेक स्वच्छ, सुन्दर बृहद् रत्नों, कृष्णसर्प--क्रीडित--उज्ज्वल--केसरपुष्पों द्वारा अन्य--भास्वर--द्रव्य--निष्प्रभकारक गंगा-परिशुद्ध जल से उज्ज्वल जटायुक्त सिर वाले कोटिवरद धूर्जटि के प्रसाद से स्वकर-धृतधनुष के बल द्वारा सदा (रण) में विजेता गौरांग, सुवर्णवर्ण, सकल--स्वशत्रु--गण--पराजेता, सर्व--सुरासुर--नर--बुधजन--पूजा में सदा बद्धादर और विनम्र थे। यज्ञानुष्ठानों से उद्‌भूत उनका यश सर्वत्र गाया जाता था।

तिन (निंवर्त) के पुत्र उनकी पतिपरायणा अग्रमहिषी नाशूदेवी से उत्पन्न तत्पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीमान् ....
इष्टगणदेव हुये। तिनके पुत्र पतिव्रता स्वपत्नी धरा (वेग) देवी से उत्पन्न तत्पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् ललितशूरदेव हुये। तिनके पुत्र पतिभक्ता स्वपत्नी लयादेवी से उत्पन्न परम-भट्टारक परमेश्वर श्रीमान् भूदेवदेव हैं। वह परम ब्राह्मण भक्त, बुद्ध--श्रवण (श्रमण)--शत्रु, सत्यप्रिय, विद्वान्, सदा धर्मानुष्ठानतत्पर हैं। उनके पास कलि नहीं फटक सकता। वह सुवर्णवर्ण हैं तथा उनके नेत्र नील सरोज सम सुन्दर तथा चपल हैं। उनके सुवर्णवर्ण चरणों में प्रणत राज--समूह के मुकुटों की मणियों के शब्दों से बहुधा श्रवण पीडित रहते हैं। उनके महान् शस्त्र ने अन्धकार को ध्वस्त कर दिया। उन्होंने अपने कृपापात्र अनुचरों को वृत्ति प्रदान की। ....।

—:०:—

पद्मटदेव का ताम्र अभिलेख

लिपि	—	उत्तरी ब्राह्मी (कुटिला)
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	दसवीं शताब्दी वि०
प्राप्तिस्थान	—	पाण्डुकेश्वर

मूल अभिलेख—

स्वस्ति ॥

श्रीमत्कार्तिकेयपुरात् समस्तसुरासुर-मुकुट-कोटि-सन्निविष्ट-विकट-माणिक्य-किरण-विच्छुरित-नखमयूखोत्खाततिमिरपटलप्रभाव-दर्शिताशय-शमशक्ति-महीयसो भगवतश्चन्द्रशेखरस्य चरणकमल-रज:पवित्रीकृत-निजतनु-भुजार्जितोर्जिता-नेकरिपुचक्र-प्रतिष्ठित-प्रताप-भास्कर-भासित-भुवनाभोग- विभव-पावक- शिखावली- विलीन-सकल-कलिकलङ्क-समुद्भूतो-दार-तपोवदातदेहः शक्तित्रय-प्रभाव-संवृं हितहितहेतिर् दान-दम-सत्य-शौर्य-शौटीर्य-धैर्य-क्षमाद्यपरिमित-गुणगणाकलित-सगर-दिलीप-मान्धातृ-धुन्धुमार-भगीरथप्रभृति-कृतयुग-भूपाल-चरितसागरस्-त्रैलोक्यानन्दजननो नन्दादेवी-चरण-कमल-लक्ष्मीतः समधिगताभिमतवरप्रसाद-द्योतित-निखिल-भुवनादित्यः श्रीसलोणादित्यः, तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी सिंहवली (सिंह-र) देवी तस्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यो परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमदिच्छटदेवः तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्रीसिन्धु-देवी तस्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यो दीनानाथ-कृपणातुर-शरणागतवत्सलः प्राच्योदीच्यप्रतीच्यदाक्षिणात्य-द्विजवर-मुख्यानाम् अनवरत-हेमदान-(ामृता)-र्दितकरः समस्तारातिचक्रप्रमर्दनः कलिकलुषमातङ्गसूदनः कुतयुगधर्मावतारः परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमद्देशटदेवः तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्री पद्मल्लदेवी तस्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्राह्मण्यः परमभट्टारकमहाराजाधिराज–परमेश्वर-श्री मत्पद्मटदेवः कुशली ।

टङ्कणपुरविषये समुपागतान् सर्वानेव नियोगस्थान् राज-राज्यक-राजपुत्र-राजामात्य-सामन्त-महासामन्त-महाकर्त्ता-कृतिक- महादण्डनायक–महाप्रतीहार-महासामन्ताधिपति–महाराजप्रमातार–शरभङ्ग-कुमारामात्य-ोपरिक-दुःसाध-यसाधनिक- दोषा–पराधिक-चौरोद्धरणिक-शौल्किक-गौल्मिक-तदायुक्तक-विनियुक्तक-पट्टकोपचारिक–सौध-भङ्गाधिकृत-हस्त्य-श्वो–ष्ट्र-बल-व्यापृतक-दूतप्रेषणिक-दाण्डिक- दण्डपाशिक-विषयव्यावृ-

तक-गमागमिक-खाड्गिक-त्वरमाणक-राजस्थानीय-विषयपति-काण्डपति-नरपत्य-श्वपति-खण्डरक्षास्थानाधिकृत-वर्त्मपाल-कोट्टपाल-घट्टपाल-क्षेत्रपाल-प्रान्तपाल-ठक्कुर-महामनुष्य-किशोर-बडवा--गो--महिष्यधिकृत-भट्ट-महत्तम-ाभीर-वणिक्-श्रेष्ठि-पुरोगान् अष्टादश-प्रकृत्यधिष्ठानीयान् खश-किरात--द्रविड--कलिंग--गौड--हूणान् (हूणान्ध्र) आचाण्डाल-पर्यन्तान् सर्वसमावासान् (सर्वसंवासान्) समस्तजनपदान् भट्टचाटसेवकादीन् अन्यांश्च कीर्तितान् अकीर्तितान् अस्मत्पादोपजीविनः पल्लिवासिनश्च ब्राह्मणोत्तरान् यथार्हम् मानयति बोधयति समाज्ञापयति--

अस्तु वः संविदितम् उपरिसंसूचितविषयप्रतिबद्धद्रुमतीप्रतिबद्धदीर्घादित्य--(तीर्थादित्य-र) बुद्धाचल--यिदादित्य--गुणादित्यानां परिभुज्यमाना पल्लिका च नम्र (१) तथा तस्मिन्नेव द्रुमत्यां पंगरस्य पञ्चदशभागास् तथा योशिप्रतिबद्ध ओगलावृत्तिर् अपरभूमिकर्मान्त--स्थलिकास्मिन्नेव योशिप्रतिबद्धा गङ्गापश्चिमकूलसंक्रमसन्निकृष्टा खणोदुपरिउलिका परिच्छिन्नापरं च तस्मिन्नेव द्रुमत्यां काकस्थलीग्रामे पारेवतवृक्ष-तलिमभागे भूमिः तदीयदेशाचारमानेन द्रोणिकवाधा एकद्द्रोणद्वयवापा भूर्नन्दकेन मूल्येन गृहीत्वा बदरिकाश्रम--भट्टारकाय प्रतिपादिता ।

मया च सर्वा एता पल्लि--पल्लिकावृत्तिक--कर्मान्तादिभूमि--सहिता उत्तरायण-संक्रान्तौ मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये पवनविघटिता--श्वत्थपत्र-चञ्चलतरङ्ग-जीवलोकम् अवलोक्य जलबुद्बुदाकारम् असारं चायुर् दृष्ट्वा गजकलभकर्णाग्रचञ्चल-ताञ्च लक्ष्म्या ज्ञात्वा परलोकनिःश्रेयसार्थ संसारार्णव--तारणार्थं च बलि--सत्र--नैवेद्य-प्रदीप--गन्ध--धूप--पुष्प--गेय--वाद्य--नृत्य--पूजा--प्रवर्तनाय खण्ड--स्फुटितपुनः संस्काराय च भगवते बदरिकाश्रमाय प्रतिपादिता पुष्पपट्टनिवेशं कृत्वा प्रकृतिपरिहारयुक्तं अचाट-भटप्रवेश्यं अकिञ्चित्प्रग्राह्यं अनाच्छेद्यं आचन्द्रार्कक्षितिस्थितिसमकालिका विषयाद् उद्धृतपिण्डांश्च आसीमागोचरपर्यन्तां सवृक्षारामोद्भित्प्रस्रवणोपेतं राजभोग्यसकलप्रत्यय-समेतं देवब्राह्मणभुक्तभुज्यमानवर्जितं (।) यतः सुखं परिभुञ्जतोपरिनिर्दिदष्टैरन्यतरैर् वा स्वल्पमपि धारण--विधारण--परिपन्थनादिकोपद्रवो न कैश्चित् करणीयः अतोन्यथास्य व्यतिक्रमे महान् द्रोहः स्याद् ।

इति प्रवर्द्धमान--विजयराज्य--संवत्सरे पञ्चविंशतितमे संवत् २५ माघ वदि १३ । दूतकोत्र महादानाक्षपटलाधिकृत श्रीभट्ट घणः लिखितमिदं महासन्धिविग्रहाक्ष-पटलाधिकृत श्रीनारायणदत्तेनोत्कीर्ण श्रीनन्दभद्रेण (।)

भो राजानः प्रार्थयत्येष रामो भूयोभूयः प्रार्थनीया नरेन्द्राः (।)
सामान्योयं धर्मसेतुर् नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भिः (।।)

हिन्दी अनुवाद—

कल्याण हो ।

श्रीमान् कार्तिकेयपुर से समस्त देवताओं और दानवों के मुकुटों के किनारों

पर जड़े हुये बड़े आकार की माणिक्य मणियों की किरणों से सुशोभित चरणों के नाखूनों की किरणों से अन्धकार के समूह को नष्ट करने के प्रभाव से अपनी महान् शक्ति को प्रदर्शित करने वाले भगवान् चन्द्रशेखर शिव के चरण-कमलों की धूलि से पवित्र किये गये अपने शरीर और भुजाओं के पराक्रम से अनेक शत्रुओं के समूह के प्रतिष्ठित प्रताप को जीतने वाले प्रताप रूपी सूर्य से प्रकाशित विस्तृत संसार के ऐश्वर्य रूप अग्नि की ज्वालाओं की पंक्ति में सम्पूर्ण कलि के कलंक के विलीन हो जाने से तपस्या से उदार और निर्मल शरीर वाला, तीन शक्तियों (प्रभुशक्ति, मन्त्र-शक्ति और उत्साहशक्ति) के प्रभाव से शस्त्रों द्वारा हितकारी कार्यों को बढ़ाने वाला, दान--दम--सत्य--शौर्य--शौण्डीर्य--धैर्य--क्षमा आदि अपरिमित गुणों के समूह से सगर, दिलीप, मान्धाता, धुन्धुमार, भगीरथ आदि सत्ययुग के राजाओं के चरित्र रूप सागर का आकलन करने वाला, तीनों लोकों में आनन्द को उत्पन्न करने वाला, नन्दा देवी के चरण-कमलों के ऐश्वर्य से प्राप्त किये गये अभीष्ट वर के प्रसाद से सम्पूर्ण भुवनों को प्रकाशित करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी श्री सलोणादित्य नाम का राजा था ।

उस सलोणादित्य राजा के चरणों का ध्यान करने वाले तथा रानी महादेवी सिंघवली देवी में उत्पन्न हुये उनके पुत्र परम माहेश्वर ब्राह्मणों के परम भक्त, परम भट्टारक, महाजाधिराज, परमेश्वर श्रीमान् इच्छटदेव थे ।

उस इच्छटदेव राजा के चरणों का ध्यान करने वाले तथा रानी महादेवी सिन्धुदेवी में उत्पन्न हुये, उनके पुत्र, परम माहेश्वर, ब्राह्मणों के परम भक्त, दीनों-अनाथों-दुःखियों-पीड़ितों-शरणागतों से प्रेम करने वाले, पूर्व-उत्तर-पश्चिम-दक्षिण दिशाओं में रहने वाले श्रेष्ठ मुख्य ब्राह्मणों के लिये निरन्तर स्वयं अपने हाथों से स्वर्ण का दान करने वाले, सभी शत्रुओं का विनाश करने वाले, कलियुग के पाप रूपी हाथी का विनाश करने वाले, सत्ययुग के धर्म का अवतरण कराने वाले, परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर श्रीमान् देशटदेव थे ।

उन देशटदेव राजा के चरणों का ध्यान करने वाले, रानी महादेवी श्री पद्मल्लदेवी में उत्पन्न हुये, उनके पुत्र परम माहेश्वर, ब्राह्मणों के परम भक्त, परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, श्रीमान् पद्मटदेव हैं, जो अति कुशल से हैं ।

वे पद्मटदेव राजा टंकणपुर जनपद में आये हुये सभी आज्ञापालक कर्मचारियों को, राजाओं, राजन्यकों, राजपुत्रों, राजमन्त्रियों, सामन्तों, महासामन्तों, महाकर्त्ताओं, कृतिकों, महादण्डनायक, महाप्रतीहार, महासामन्ताधिपति, महाराज-प्रमातार, शरभङ्ग, कुमारामात्य, उपरिक, दुःसाध्यसाधनिक, दोषापराधिक, चौरोद्ध-रणिक, शौल्किक, गौल्मिक, तदायुक्तक, विनियुक्तक, पट्टकापचारिक, सौधभङ्गाधिकृत, हस्त्यध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, उष्ट्राध्यक्ष, दूतप्रेषणिक, दाण्डिक, दण्डपाशिक, विषयव्यापृतक,

गमागमिक, खाड्गिक, त्वरमाणक, राजस्थानीय, विषयपति, भोगपति, काण्डपति, नरपति, अश्वपति, खण्डरक्षास्थानाधिकारी, वर्त्मपाल, कोट्टपाल, घट्टपाल, क्षेत्रपाल, प्रान्तपाल, ठाकुरों, महामनुष्यों, किशोरों, बडवाध्यक्ष, गो-अध्यक्ष, महिषी-अध्यक्ष, भट्ट, महत्तम, आभीर, वणिक् और श्रेष्ठी आदि अधिकारियों को, अठारह प्रकार के करों को वसूल करने वाले प्रजा-अधिकारियों को, खस-किरात-द्रविड-कलिंग-गौड-हूण तथा अन्य चाण्डाल पर्यन्त निम्न जातियों को, सभी निवासियों को, सभी जनपदों को, भट-चाट-सेवक आदियों को, और अन्यों को, जिनका कथन किया गया है और जिनका कथन नहीं किया गया है, ऐसे हमारे चरणों में आजीविका प्राप्त करने वालों को, ग्राम निवासियों को और श्रेष्ठ ब्राह्मणों को यथायोग्य सम्मानित करते हैं, सम्बोधित करते हैं और आदेश देते हैं—

आप सबको यह विदित ही है कि ऊपर सूचित किये कार्तिकेयपुर जनपद से लगे हुये द्रुमती क्षेत्र के अन्तर्गत दीर्घादित्य, बुद्धाचल, यिदादित्य और गुणादित्य द्वारा भोगी जाती हुई पल्लिका (गाँव) है। इसी द्रुमती क्षेत्र में पंगर खेत के १५ भाग, योशि ग्राम से लगी हुई ओगलाव्रत्ति तथा इसके साथ की दूसरी भूमि एवं कर्मान्ति, इसी योशि ग्राम से लगी हुई गंगा नदी के पश्चिम किनारे से लगी हुई क्रमशः व्यवस्थित खणोदुपरिउलिका खेत और उससे लगे दूसरे खेत, उसी द्रुमती क्षेत्र में काकस्थली ग्राम में पारेवत वृक्ष के नीचे के भाग की भूमि, उसी प्रचलित प्रमाण वाले द्रोण के माप के अनुसार दो द्रोणी नाप वाली भूमि को नन्दक ने मूल्य द्वारा खरीद कर बदरिकाश्रम के लिये दान दिया है।

और मैंने इस सारी छोटे-बड़े ग्रामों की भूमियों को और भूमियों सहित कर्मान्तों को, उत्तरायण की संक्रान्ति के पुण्य दिन में, माता-पिता और अपने यश की अभिवृद्धि के लिये, जीवलोक को, वायु से हिलाये जाते हुये अश्वत्थ के पत्तों की चंचल तरंगों के समान देखकर और लक्ष्मी को, हाथी के शावक के कानों के अग्र भाग के समान चंचल जान कर, परलोक में कल्याण के निमित्त तथा संसार रूपी सागर को पार करने के निमित्त, पत्रपुष्प में निवेशित करके भगवान् बदरिकाश्रम के लिये दान कर दिया है। जिससे कि वहाँ बलि, सत्र, नैवेद्य, दीपक, गन्ध, धूप, पुष्प, गेय, वाद्य और नृत्य द्वारा पूजा को प्रवर्तित रखा जा सके और टूट-फूट की मरम्मत की जा सके।

इस भूमि पर प्रजा का अधिकार नहीं हो सकता, चाट और भट प्रवेश नहीं कर सकते। जिस समय तक चन्द्र, सूर्य और पृथिवी स्थिर हैं, इसको कोई ले नहीं सकता, कोई छीन नहीं सकता। यह दान का क्षेत्र उस सीमा तक विस्तृत है, जहाँ पिण्ड प्रदान किये जाते हैं। तथा इसमें वृक्ष-वाटिकायें, वनस्पतियाँ और झरने सम्मिलित हैं। राजाओं द्वारा रक्षा की जाने के विश्वास से यह युक्त है। तथा देव-

ताओं और ब्राह्मणों के अतिरिक्त इसका कोई भोग नहीं कर सकता। वे सुखपूर्वक इसका उपभोग करें।

ऊपर कहे गये अधिकारियों तथा प्रजा को अथवा अन्य किसी को इस सम्पत्ति के स्वल्प भाग को भी रखना, धारण करना, नष्ट करना अन्य कोई उपद्रव करना निषिद्ध है। इसके विपरीत कार्य करने में महान् द्रोह समझा जायेगा।

इस शासनादेश का विवरण निम्न है—

लेख का समय—माघ वदी १३ वर्ष २५ प्रवर्धमान विजयराज्य संवत्सर।

दूतक—महादानाक्षपटलाधिकृत श्री भट्टघण

लेखक—महासन्धिविग्रहाक्षपटलाधिकृत श्री नारायणदत्त

उत्कीर्णक—श्रीनन्दभद्र

हे राजाओ! यह राम प्रार्थना करता है, राजाओं से पुनः पुनः प्रार्थना करता है कि यह धर्मसेतु राजाओं के लिये सामान्य है। समय-समय पर आपको इसका पालन करना चाहिये।

—०—

सुभिक्षराज का ताम्र अभिलेख

लिपि	—	उत्तरी ब्राह्मी (कुटिला)
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	दसवीं शताब्दी वि०
प्राप्तिस्थान	—	पाण्डुकेश्वर

मूल अभिलेख—

स्वस्ति ।।

श्रीमत्सुभिक्षपुरात् समस्तसुरासुरपति–मुकुट–कोटि-सन्निविष्ट–विकटमाणित्रय–किरण–विच्छुरित--चरण–नख--मयूखोत्खाततिमिरपटलप्रभावातिशय–शम–शक्तिमहीयसो भगवतश्चन्द्रशेखरस्य चरणकमलरजःपवित्रीकृतनिजतनुर्–निजभुजोर्ज्जितानेक-रिपु–चक्रप्रतिष्ठित–प्रताप–भास्कर–भासित–भुवना–भोग–पावक–शिखावलीन–सकल-कलिकलङ्क–समुद्भूतोदारतपोवदातदेहः शक्तिः–त्रयप्रभाव–संवर्द्धित–हित–हेति–दान–दम–सत्य–शौर्य–शौटीर्य–धैर्य–क्षमाद्यपरिमित–गुणगणालंकृत--सगर–दिलीप--मान्धातृ–धुन्धुमार–भरत–भगीरथ–दशरथप्रभृति–कृतयुग–भूपालचरित—सागरस् त्रैलोक्यानन्द-जननो नन्दादेवी–चरण–कमललक्ष्मीतः समधिगताभिमतवरप्रसादो द्योतितनिखिलभुवनादित्यः श्रीसलोणादित्यः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्री सिंघवलीदेवी तस्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यः परमभट्टारक–महाराजाधिराज–परमेश्वर–श्रीमद् इच्छटदेवस् तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातः (.) राज्ञी महादेवी श्री सिन्धुदेवी तस्याम् उत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यो दीनानाथकृपणातुरशरणागतवत्सलः प्राच्योदीच्यप्रतीच्यदाक्षिणात्य-द्विजवरमुख्यानाम् अनवरतहेमदानामृता (द्रित) करः समस्ताराति-चक्र–प्रमर्दनः कलि–कलुष–मातङ्गसूदनः कृतयुगधर्मावतारः परमभट्टारक–महाराजाधिराज–परमेश्वर–श्रीमद् देशटदेवस् तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्री पद्मल्लदेवी तस्याम् उत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यः स्वयमुत्खात–भास्वद्दीप्ति–प्रभा–वितान–सबलीकृत–बाहुबलविवर्ज्जिताशेष-दिग्देशागत--प्रणामोपनीत-करि–तुरङ्ग-विभूषणानवरत–प्रदान–तिरस्कृताशेष–बलि–वैकर्तन–दधीचि–चन्द्रगुप्त–चरितश् चतुरुदधिपरिखा–पर्यन्त–मेखलादाम्नः क्षितेर् भर्त्ता परमभट्टारक–महाराजाधिराज–परमेश्वर श्री पद्मटदेवस् तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्रीमद् विशालदेवी तस्याम् उत्पन्नः परमवैष्णवः परमब्रह्मण्यः संविदितशास्त्र–व्रतपालकः दूरापसरित–कलि–तिमिर–निकर—हेला--कलित--सकल--कलाकलापालंकृतशरीरः, भुवन–विख्यात--दुर्मदाराति--सीमन्तिनी--वैधव्यदीक्षा--दानदक्षैकगुरुः, प्रतिपक्षलक्ष्मी--हठ--हरणागणित--प्रचण्ड--दोर्दण्ड--दर्पप्रसरः परमभट्टारक--महाराजाधिराज–परमेश्वर--श्रीमत् सुभिक्षराज (देवः) कुशली ।

टङ्कणपुरविषये अन्तराङ्गविषये च समुपागतान् सर्वानेव नियोगस्थान् राज--राजन्यक--राजपुत्र-राजामात्य--सामन्त--महासामन्त--महाव र्त्ता--कृतिक--महादण्डनायक-महाप्रतिहार--महासामन्ताधिपति--महाराजप्रमातार--शरभङ्ग---कुमारामात्य—ोपरिक--दुःसध्यसाधनिक--दोषापराधिक--चौरोद्धरणिक--शौल्किक--गौल्मिक--तदायुक्तक—विनियुक्तक--पट्टापचारिक—सौधभङ्गाधिकृत--हस्त्यश्वो-ष्ट्रलव्यापृतक-दूतप्रेषणिक--दाण्डिक-दण्डपाशिक--गमागमिक--खाड्गिका--भित्वरमाणक--राजस्थानीय--विषयपति--भोगपति-काण्डपति-नरपत्यश्वपति-खण्डरक्षास्थानाधिकृत--वर्त्मपाल--कोट्टपाल--घट्टपाल--क्षेत्रपाल-प्रान्तपाल--ठक्कुर--महामनुष्य--किशोर--बडवा--गो--महिष्यधिकृत--भट्ट--महत्तमा--ाभीर-वणिक्--श्रेष्ठिपुरोगान् साष्टादशप्रकृत्यधिष्ठानीयान् खस--किरात--द्रविड--कलिङ्ग--गौड–हूणौ--ड्--द्रमिड–न्ध्रभेदानाचाण्डापर्यन्तान् सर्वसंवासान् समस्त--जनपदान् भट--चाट–सेवकादीन् अन्यांश्च कीर्तितानकीर्तितान् अस्मत्पादपद्मोपजीविनः प्रतिवासिनश्च ब्राह्मणोत्तरान् यथार्हं मानयति बोधयति समाज्ञापयति—

अस्तु वः संविदितम् उपरिसंसूचितविषयिक–नम्बरम (नवरंग-र)–ग्रामप्रतिबद्ध वच्छरकसत्कविडिमलाकनामा भूः षण्णां नालिकानां वापा तथा भेटसार्यां भूखण्डम् अष्टनालिका–वापः तथा वाडियालिके (वाडिवालिके–र) भूखण्डं चतुर्णां द्रोणानां वापः तथा भागरुसत्कवनोलकाभिधाना भूखण्डं त्रयनालिक–वापः तथा सुभट्टकसत्का शरणंखोन (शरण्यंखोतु यक्षद्धया–र) रामद्धितं कण्डियाकापरिच्छिन्नं तथा पस्तराक-भृतिरोडसत्कशठिकनामा भूमि द्वयद्रोणावापं तथा गोवितंकसत्कयच्छसृद्धाभिधानभूमि त्रयद्रोणवापः तथा वेनवाकसत्क क्षीरानावाभिधान–भूखण्ड--त्रयद्रोण–वापं तथा शोषि-जीवाक–सत्क गंगरक–नामा भूमि अष्टद्रोणवापा तथा च जीवाकसीमादित्य–इच्छवलान्ता–सत्कपेट्टकनामा भूमि त्रयद्रोणवापा तथा कठनामा भूमि द्वयद्रोण–वापा नाम्बरंगीय (नायरंगीय–र) समस्तजनपदानां सत्क न्यायपट्टक नामा भूमि दशद्रोणवापा तथा पंकरहस्तमेकं तथा इच्छावल-विहलक-महर्जियाक-प्रथमादित्यानां सत्क वडिबलाभि-धाना भूमि षड्द्रोणवापा शिलादित्यसत्क खोरखोट्टकनामा भूमिः षण्णां वापः तथा श्रीहर्षपुर–कर्मान्तिप्रतिबद्ध पूर्व पवमाणक–(वरभाणक–र) उंगकपरिभुज्यमान पल्लिका (।) एतद् भूमयः पल्लिकाश्च श्रीहर्षपुरीय श्रीदुर्गाभट्टविषया तथा वरोषिका-ग्राम-सम्बन्ध-ना उष्णोदक–विज्जट–दुज्जणातंग–विषयतङ्ग--चाचटक–वराह–सिट्टक–(सिट्टकर) सत्का नपाभिधान (ननापा–र) भूखण्ड नवद्रोणवापं तथा सत्तक–पुत्राणां नपीणाँ सत्का नय भूखण्डचतुष्टयं खारिवापं तथा जातिपाटकनामा (जातिकटक) भूइज्जार समद्धितं तथा समिज्जीयं भूखण्डद्वयं नवद्रोणवापं तथा सत्रकपुत्राणां सत्क पैरीग्राम–प्रतिबद्ध गोदोधकाभिधाना भूमिर् विंशद्रोणवापा तथा यो (?) षिक ग्रामनिवासिनां सत्क द्यस्सेरुकरा नाम भूमि द्वयद्रोणवापा तथा सिहारा नाम भूमि द्रोणवापं तथा वलीवर्द-शिला नाम भू त्रयद्रोणवापं तथा इहंगनामा भू पञ्चद्रोणवापं तथा तिरंगानामा पात्र-कोशिका भूः त्रयद्रोणवापं तथा कट्टशिलल नामा भू त्रयद्रोणवापं तथा गान्दोडारिक

नामा भू त्रयद्रोणवापं तथा युग नामा भूः द्रोणवापं ककठयाला नामा भूः त्रयद्रोणवापं तथा पंकरहस्ते द्वयं तथा धारणाक–सत्क दालीमूलक नामा भूः द्वयद्रोणवापं तथा शिखनसत्क ग्रामिदारके भूखण्डं द्वयद्रोणवापं इच्छवर्दनशिलादित्ययोस् सत्क सृष्टधीमा नाम भू पञ्चद्रोणवापं तथा विषयिणां सत्क कर्कण्ठक भू चतुर्णां द्रोणानां वापं तथा कटुस्थिकानां सत्क विधाभारिका नाम भू त्रयद्रोणवापं तथा रडवक ग्रामिणानां सत्क पन्तकोरापिका नामा भू द्वादशद्रोणवापं तथा तुंगादित्य–सत्क लोहरसमेणा भू षण्णालिकानां वापं तथा योषिककर्मान्तिसम्बद्ध ग्रामपरक नामा भू पंचदशद्रोणवापः मठिकसमन्विता एतद् भूमयो विष्णुगङ्गा–सम्मेलित–भगवते श्रीनारायण–भट्टारकाय तथा सेवायिका प्रतिबद्ध रच्चपहिल्लकाभिधानस्य घाटानि लिख्यन्ते ।

श्रीसङ्कटसीमायां पश्चिमतः अण्डारिनिगनिक पूर्वतः गङ्गायाम् उत्तरतः समेहक–ग्राम दक्षिणतस् तथा सेवायिकायां वच्छक–सत्क–ग्रहण-कयाकी सप्तनालिकावापाः भगवते ब्रह्मेश्वरभट्टारकाय एता भूमय पल्लिके द्वे च मया मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये पवनविघट्टिताश्वत्थपत्र–चञ्चल–जीवलोकम् अवलोक्य जलबुद्–बुदाकारम् असारं चायुर् दृष्ट्वा गजकलभकर्णाग्रचपलतां च लक्ष्म्या ज्ञात्वा परलोकनिःश्रेयसार्थं संसारार्णवतारणार्थं च पुण्येऽहनि भगवद्भ्यः श्री दुर्गादेवी–नारायणभट्टारक–श्रीब्रह्मेश्वरभट्टारकेभ्यः गन्ध–धूप–दीप–पुष्पोपलेपन–संमार्ज्जन–गीत–वाद्य–नृत्य–बलि-चरु--सत्र–प्रवर्तनार्थं खण्डस्फुटित-पुनः संस्करणार्थं च प्रतिपादितः प्रकृति–परिहार–युक्ताचाट–भट्टप्रवेश्याम् अकिञ्चित्प्रग्राह्याम् अनाच्छेद्याम् आचन्द्रार्क–क्षिति–स्थिति–समकालिक–विषया उद्धृतपिण्ड–स्वसीमा–गोचर–पर्यन्तं आवृक्षारामोद्भेद–प्रस्रवणोपेतं देवब्राह्मणभुक्तभुज्यमान–वर्जितं यतः सुखं पारम्पर्येण परिभुज्यमानानां स्वल्पमपि धरण–विधारण–परिपन्थ–नादिकोपद्रवो न कैश्चित् करणीयोऽन्यथा महान् द्रोहः स्याद् (।)

इति प्रवर्द्धमान–विजयराज्यसंवत्सरे चतुर्थ सम्वत् ४ ज्येष्ठ बदी५ (।) दूतकोत्र महादानाक्षपटलाधिकृत श्री. कमला............लिखितमिदम् महासन्धि विग्रहाधिकृत श्री ईश्वरदत्तेन (,) उत्कीर्णमिदञ्च श्रीनन्दभद्रेण (।)

वहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः (।)
यस्य यस्य यदा भूमिस् तस्य तस्य तदा फलम् (।।)
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः (।)
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तानेव नरकं वसेत् ।।
अनूदकेष्वरण्येषु शुष्ककोटरवासिनः ।
कृष्णसर्पा विजायन्ते ब्रह्मदायं हरन्ति ये ।।
भो राजानः प्रार्थयत्येष रामो भूयो भूयो प्रार्थनीया नरेन्द्राः ।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर् नराणां काले काले पालनीयो भवद्भिः ।।
इति कमलदलाम्बु-बिन्दु–लीलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्य–जीवितञ्च ।
सकलमिदमुदाहृतञ्च बुद्ध्वा न हि पुरुषैः परकीर्तयो विलोप्याः ।।

हिन्दी अनुवाद—

कल्याण हो ।।

श्रीमत सुभिक्षपुर से सभी देवताओं और दानवों के राजाओं के मुकुटों के किनारों पर जड़े हुये बड़े आकार के माणिक्य मणियों की किरणों से सुशोभित चरणों के नाखूनों की किरणों से अन्धकार को नष्ट करने के प्रभाव से अपनी महान् शक्ति को प्रदर्शित करने वाले, भगवान् चन्द्रशेखर शिव के चरण-कमलों की धूलि से पवित्र किये गये अपने शरीर और अपनी भुजाओं के पराक्रम से अनेक शत्रुओं के प्रतिष्ठित प्रताप को जीतने वाले, प्रताप रूपी सूर्य से प्रकाशित विस्तृत संसार के ऐश्वर्य रूप अग्नि की ज्वालाओं की पंक्ति में कलि के सम्पूर्ण कलक के विलीन हो जाने के कारण, तपस्या से उदार और निर्मल शरीर वाला, तीन शक्तियों (प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साहशक्ति) के प्रभाव से शस्त्रों के द्वारा हितकारी कार्यों को बढ़ाने वाला, दान–दम –सत्य–शौर्य–शौण्डीर्य–धैर्य–क्षमा आदि अपरिमित गुणों के समूह से सुशोभित, सगर, दिलीप, मान्धाता, धुन्धुमार, भरत, भगीरथ आदि सत्ययुग के राजाओं के चरित्र रूपी गुणों का आकलन करने वाला, तीनों लोको में आनन्द को उत्पन्न करने वाला, नन्दा देवी के चरण-कमलों के ऐश्वर्य से प्राप्त किये गये अभीष्ट वर के प्रसाद से सम्पूर्ण भुवनों को प्रकाशित करने वाला, सूर्य के समान तेजस्वी श्री सलोणादित्य नाम का राजा था ।

उस सलोणादित्य राजा के चरणों का ध्यान करने वाला, तथा रानी महादेवी श्री सिंघवली देवी में उत्पन्न हुआ, परम माहेश्वर, ब्राह्मणों के प्रति परम भक्ति रखने वाला, परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, श्रीमान् इच्छटदेव था ।

उस इच्छटदेव राजा के चरणों का ध्यान करने वाला, रानी, महादेवी श्री सिन्धु देवी में उत्पन्न हुआ उसका पुत्र परम माहेश्वर, ब्राह्मणों का परम भक्त, दीनों–अनाथों–दुःखियों–पीडितों–शरणागतों से प्रेम करने वाला, पूर्व–उत्तर–पश्चिम–दक्षिण चारों दिशाओं में रहने वाले ब्राह्मणों के लिये निरन्तर अपने हाथों से स्वर्ण का दान करने के कारण गीले हाथों वाला, सभी शत्रुओं का विनाश करने वाला, कलियुग के पाप रूपी हाथी का विनाश करने वाला, सत्ययुग के धर्म का अवतरण कराने वाला, परम भट्टारक, महाजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् देशटदेव था ।

उस देशटदेव राजा के चरणों का ध्यान करने वाला, तथा रानी महादेवी श्री पद्मल्लदेवी में उत्पन्न हुआ उसका पुत्र, परम माहेश्वर, ब्राह्मणों का परम भक्त, स्वयं शत्रुओं को पराजित करके सूर्य के समान दीप्तिशाली, कान्ति के विस्तार से सबल किये गये भुजाओं के बल से जीती गई सभी दिशाओं और देशों से आकर प्रणाम करने वाले, शत्रु राजाओं द्वारा भेंट दिये गये हाथियों, घोड़ों और आभूषणों का निरन्तर दान करके बलि, कर्ण, दधीचि और चन्द्रगुप्त सभी के चरित को जीत लेने वाला, चारों समुद्रों की परिखा की सीमा रूप मेखला वाली पृथिवी का पालन करने वाला, परम भट्टारक, महाराजाधिराज परमेश्वर श्री पद्मटदेव है ।

श्री पद्मटदेव राजा के चरणों का ध्यान करने वाला, रानी महादेवी श्रीमती विशालादेवी में उत्पन्न हुआ उनका पुत्र परम वैष्णव, ब्राह्मणों का परम भक्त, शास्त्रों का अध्ययन करके उनकी मर्यादा का पालन करने वाला, कलि रूपी अन्धकार के समूह को अनायास ही दूर भगा कर सभी कलाओं के समूह से सुशोभित शरीर वाला, संसार में प्रसिद्ध घमण्डी शत्रुओं की स्त्रियों को वैधव्य की दीक्षा को प्रदान करने में चतुर तथा एकमात्र गुरु, शत्रुओं की राजलक्ष्मी का बलपूर्वक अपहरण करने से जिसके प्रचण्ड भुजदण्डों के गर्व के प्रसार को आंका नही जा सकता था, ऐसे परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् सुभिक्षराजदेव कुशल से हैं।

वे सुभिक्षराजदेव टंकणपुर जनपद में और उसके अन्तरीय अंचलों में आये हुये सभी आज्ञापालक कर्मचारियों को, राजाओं, राजन्यकों, राजपुत्रों, राजमन्त्रियों, सामन्तों, महासामन्तों, महाकर्ताओं, कृतिकों, महादण्डनायक, महाप्रतिहार, महासामन्ताधिपति, महाराजप्रमातार, शरभंग, कुमारामात्य, उपरिक, दुःसाध्यसाधनिक, दोषापराधिक, चौरोद्धरणिक, शौल्किक, गौल्मिक, तदायुक्तक, विनियुक्तक, पट्टकापचारिक, सौधभंगाधिकृत, हस्ति-अव्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, उष्ट्राध्यक्ष, दूतप्रेषणिक, दाण्डिक, दण्डपाशिक, गमागमिक, खाड्गिक, अभित्वरमाणक, राजस्थानीय, बिषयपति, भोगपति, काण्डपति, नरपति, अश्वपति, खण्डरक्षास्थानाधिकृत, वर्त्मपाल, कोट्टपाल, घट्टपाल, क्षेत्रपाल, प्रान्तपाल, ठाकुर, महामनुष्य, किशोर, बड़वाध्यक्ष, गो-अध्यक्ष, महिषी–अध्यक्ष, भट्ट, महत्तम, आभीर वणिक् और श्रेष्ठी आदि अधिकारियों को, खस-किरात-द्रविड–कलिंग–गौड–हूण–औड्र–द्रमिड–आन्ध्र तथा अन्य चाण्डाल पर्यन्त निम्न जातियों को, सभी निवासियों को, सभी जनपदों को, भट–चाट–सेवक आदियों को, और अन्य लोगों को, जिनका कि कथन किया गया है और कथन नहीं किया गया है, हमारे चरण-कमलों में जीविका प्राप्त करने वालों को और श्रेष्ठ ब्राह्मणों को यथायोग्य सम्मानित करते हैं, सम्बोधित करते हैं और आदेश देते हैं—

आप सबको यह विदित हो कि ऊपर सूचित किये गये जनपद में नम्बरम ग्राम से लगे हुये वच्छरक के समीप बिडिमलाक नाम की भूमि छः नाली है। भेटसारी ग्राम में आठ नाली भूमि है। वाडियालिक ग्राम में चार द्रोण नाप का भूखण्ड है। भागरु के समीप वनोलक नाम का तीन नाली भूखण्ड है। सुभट्टक के समीप शरणं खोन नाम का एक कण्डिया खेत है। पस्तराकभृतिरोड के समीप शठिक नाम की दो द्रोण माप की भूमि है। गोवितंक के समीप यच्छसृद्धा नाम की नीन द्रोण भूमि है। वेनवाक के समीप क्षीरानावा नाम की तीन द्रोण भूमि है। शोषिजीवाक के समीप आठ द्रोण नाप की गंगरक भूमि है। जीवाकसीमादित्य और इच्छवलान्ता के समीप तीन द्रोण नाप की पेट्टक नाम की भूमि है और कट नाम की दो द्रोण भूमि है। नाम्त्ररंगीय नाम के समस्त जनपदों के समीप १० द्रोण नाप की न्यायपट्टक नाम की भूमि है और पंकरहस्त नाम की एक द्रोण भूमि है। इच्छावल, विहलक, महाजियाक, और प्रथमादित्य ग्रामों के समीप छः द्रोण नाप की बडिवल नाम

की भूमि है। शिलादित्य के समीप खोरखोट्टक नाम की छः द्रोण भूमि है और श्री हर्षपुर के कर्मान्तों से लगी हुई भूमि है। पूर्व में पबमाणकों और उंगकों द्वारा भोगा जाने वाला छोटा गाँव है।

ये सारी भूमियाँ और गाँव, श्री हर्षपुर के ,श्री दुर्गाभट्ट के प्रदेश और वरोषिका ग्राम से सम्बद्ध, उष्णोदक, विज्जट, दुज्जणातंग, विषयतंग, चाचटक, बराह और सिट्ठक के समीप नप नाम का नौ द्रोण माप का भूमि खण्ड है। सत्तक के पुत्र नपियों के समीप चार खारी माप का नय नाम का भूखण्ड है। जातिपाटक नामक भूइज्जार के समीप समिज्जीय नौ द्रोण माप के दो भूखण्ड हैं। सत्रकपुत्रों के समीप पैरी ग्राम से लगी हुई बीस द्रोण नाप की गोदोधक नाम की भूमि है। योषिक ग्राम के निवासियों के समीप घस्सेरुक नाम की दो द्रोण भूमि और सिहारा नाम को एक द्रोण भूमि है। बलीवर्दशिला नाम की तीन द्रोण भूमि है। इहंग नाम की पाँच द्रोण भूमि है। तिरंगा नाम की पात्रकोशिका तीन द्रोण भूमि है। कट्टशिल्ल नाम की तीन द्रोण भूमि है। गान्दोडारिक नाम की तीन द्रोण भूमि है। युग नाम की एक द्रोण भूमि है। ककठयाला नाम की तीन द्रोण भूमि है। पंकरहस्त नाम के दो और धारणाक के समीप दालीमूलक नाम की दो द्रोण भूमि है। इच्छवर्दन और शिलादित्य के समीप सृष्टधीमा नाम की पाँच द्रोण भूमि है। विषयियों के समीप कर्कण्ठ नाम की चार द्रोण भूमि है। कटुस्थिकों के समीप चिदाभारिका नाम की तीन द्रोण भूमि है। रडवक ग्रामीणों के समीप पन्त-कोरापिका नाम की १२ द्रोण भूमि है। तुंगादित्य के समीप लोहरसमेणा नाम की छः नाली भूमि है। योषिक कर्मान्त से सम्बद्ध ग्रामपरक नाम की १५ द्रोण भूमि मठिका सहित है। ये सभी भूमियाँ और सेवायिका ग्राम से सम्बद्ध रच्चपहल्लिका नाम की भूमि और विष्णुगंगा के तट पर अवस्थित घाट नारायण स्वामी के नाम में लिखे जाते हैं।

श्री संकटसीमा में पश्चिम की ओर अण्डारिनिगनिक, पूर्व की ओर गंगा, उत्तर की ओर समेहक ग्राम और दक्षिण की ओर सेवायिका, इस प्रकार की सीमाओं में वच्छक के समीप सात नाली नाप की समयकटायी नाम की भूमि, ये सभी भूमियाँ ब्रह्मेश्वर भगवान् के लिये दान कर दी गई हैं। और दो पल्लिकायें (छोटे गाँव) मैंने माता-पिता के और अपने पुण्य और यश की अभिवृद्धि के लिये, जीवलोक को वायु से हिलाये जाते हुये अश्वत्थ के पत्तों की चंचल तरंगों के समान देखकर तथा आयु को जल के बुलबुलों के समान असार देखकर तथा लक्ष्मी को हाथी के शिशु के कान के अग्र भाग के समान चंचल जानकर, परलोक में कल्याण के निमित्त, तथा संसार रूपी सागर को पार करने के निमित्त इस पुण्य दिन में दान कर दिया। जिससे कि श्री भगवान् श्री दुर्गादेवी, श्री नारायण भट्टारक और श्री ब्रह्मेश्वर भट्टारक के गन्ध-धूप-दीप-पुष्प-उपलेपन-सम्मार्जन-गीत-वाद्य-नृत्य-बलि-चरु-सत्र को चालू रखा जा सके और टूट-फूट की मरम्मत कराई जा सके।

इस भूमि पर प्रजा का अधिकार नहीं हो सकता। चाट और भट प्रवेश नहीं कर सकते। जिस समय तक चन्द्र-सूर्य-पृथिवी स्थिर हैं, इनको कोई ले नहीं सकता, कोई छीन नहीं सकता। यह दान का क्षेत्र वहाँ तक विस्तृत है, जहाँ पिण्ड प्रदान किये जाते हैं। तथा इसमें वृक्ष, वाटिकायें, वनस्पतियाँ और झरने सम्मिलित हैं। देवताओं और ब्राह्मणों के अतिरिक्त इसका कोई भोग नहीं कर सकता। जबकि वे सुखपूर्वक इसका उपभोग कर रहे हैं, तो किसी को भी इस सम्पत्ति के स्वल्प भाग को भी रखना, धारण करना, नष्ट करना अथवा अन्य कोई उपद्रव करना उचित नहीं है। इसके विपरीत कार्य करने से महान् द्रोह समझा जायेगा।

इस शासनादेश का विवरण निम्न है—

लेख का समय—ज्येष्ठ वदी ५ वर्ष ४ प्रवर्धमान विजयराज्य संवत्सर

दूतक—महादानाक्षपटलाधिकृत श्री कमला............

लेखक—महासन्धिविग्रहाधिकृत श्री ईश्वरीदत्त

उत्कीर्णक—श्री नन्दभद्र

सगर आदि बहुत से राजाओं ने इस पृथिवी का भोग किया था। जिस समय जिस जिस की भूमि रही, उस समय उस उस को उसका फल प्राप्त हुआ।

भूमि का दान करने वाला दानी साठ हजार वर्ष तक स्वर्ग में रहता है। उसको छीनने वाला और छीनने की अनुमति देने वाला भी उतने ही समय तक नरक में रहता है।

जो व्यक्ति ब्राह्मण के धन का हरण करते हैं, वे जल से रहित जंगलों में सूखे कोटरों में रहने वाले सर्पों के रूप में जन्म लेते हैं।

हे राजाओ! यह राम प्रार्थना करता है, राजाओं से पुनः पुनः प्रार्थना करता है कि यह धर्मसेतु राजाओं के लिए सामान्य है। समय-समय पर आपको इसका पालन करना चाहिये।

कमल के पत्ते पर पड़े जल के बिन्दु के समान यह मनुष्य-जीवन चंचल है। इस बात का विचार करके और इस बात को समझकर यह सब कहा गया है। मनुष्य को चाहिये कि दूसरों की कीर्ति को विलुप्त न करे।

—:०:—

कत्यूरी ताम्रपत्र अभिलेखों और शिलालेखों पर टिप्पणी

ऊपर प्रस्तुत संग्रह में कत्यूरी वंश के राजाओं के पाँच अभिलेख दिये गये हैं। इनमें से चार ताम्र अभिलेख हैं, जो पाण्डुकेश्वर से प्राप्त हुए थे। इनमें भी दो ललितशूरदेव (६४५–६० ई०) के हैं। एक अभिलेख पद्मटदेव का है (१०३०–४५ ई०)। एक अभिलेख सुभिक्षराज (१०४५–६० ई०) का है। शिला अभिलेख ललितशूरदेव के पुत्र भूदेव (६६०–६८० ई०) का है और यह बागेश्वर से प्राप्त हुआ था। मूल अभिलेख इस समय उपलब्ध नहीं है। इसके अनुवाद प्राप्त होते हैं। इस शिला के एक पार्श्व पर एक राजवंशावली भी उत्कीर्ण थी। वह भी अब अप्राप्य है। बालेश्वर नामक स्थान से देशटदेव का एक ताम्र अभिलेख मिला है। परन्तु इसका सम्बन्ध गढ़वाल से विशेष न होने के कारण इसको संग्रह में नहीं लिया गया। कत्यूरी वंश के इन अभिलेखों को कुछ विद्वानों ने मूल, अनुवाद और टिप्पणियों सहित अपने ग्रन्थों और पत्रिकाओं में प्रकाशित किया है[1]।

ललितशूरदेव के एक अन्य ताम्र अभिलेख का उल्लेख डा० यशवन्तसिंह कठोच ने अपने ग्रन्थ 'मध्य हिमालय का पुरातत्व' में किया है[2]। उनके अनुसार उनको यह ताम्र अभिलेख मन्दाकिनी की घाटी में स्थित कण्डारा के सैलदाणा तोक से प्राप्त हुआ था। उनके अनुसार यह अभिलेख ताम्रपत्र के एक ही ओर स्वच्छता से उत्कीर्ण है और ३० पंक्तियों में है। ललितशूरदेव के राज्यकाल के २१ वें वर्ष के ताम्र शासन के समान ही यह भी दान–अभिलेख है। यह ओं स्वस्ति से प्रारम्भ होता है तथा इसकी प्रारम्भिक पंक्तियों में वंशावली का वर्णन है। २३ पंक्तियों तक गद्य में दान का वर्णन है और अन्त में २४–३० पंक्तियों में धर्मानुशासन के श्लोक अंकित हैं। दायीं ओर के संक्षिप्त भाग पर चौकोर छिद्र है। इसमें नन्दी की चिह्नयुक्त राजकीय मुद्रा नहीं है। डा० कठोच के अनुसार यह अभिलेख उत्तराखण्ड भारती के खण्ड २, १६७७ ई० में प्रकाशित हुआ था।

---

१. एटकिन्सन का हिमालयन गजेटियर
गढ़वाल परिचय (१)
मजूमदार और पुसलकर : एज आफ इम्पीरियल कन्नौज
इण्डियन एन्टीक्वेरी वो० २५
उत्तराखण्ड का इतिहास भाग एक

२. मध्य हिमालय का पुरातत्त्व पृ० ६६

ललितशूरदेव के इस तीसरे ताम्र अभिलेख के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का कथन है कि यह अभिलेख अलग से नहीं है। पाण्डुकेश्वर से प्राप्त चार अभिलेखों में एक मिल नहीं रहा था। कठोच द्वारा वर्णित अभिलेख वही है, जो कि पाण्डुकेश्वर से प्राप्त चार अभिलेखों में से एक खो गया था[1]। राहुल सांकृत्यायन ने कत्यूरी राजाओं के छः अभिलेखों का वर्णन किया है[2]।

डा० शिवप्रसाद डबराल ने सूचित किया है कि कार्तिकेयपुर के कत्यूरी राजाओं के अब तक आठ अभिलेख प्राप्त हो चुके हैं। कालीमठ का भवशर्मन् का अभिलेख भी उन्हीं के राज्यकाल का है। इन १० अभिलेखों का विवरण निम्न है[3]—

संख्या	प्राप्तिस्थान	अभिलेख	नरेश	राजधानी	राज्य संवत्सर
१	जोशीमठ	शिलालेख	वासुदेव	जोशीमठ	१
२	बागेश्वर	शिलालेख	त्रिभुवनराजदेव	?	११
३	पाण्डुकेश्वर	ताम्रलेख	ललितशूर	कार्तिकेयपुर	२१
४	पाण्डुकेश्वर	ताम्रलेख	ललितशूर	कार्तिकेयपुर	२२
५	बागेश्वर	शिलालेख	भूदेव	?	४
६	बालेश्वर	ताम्रलेख	देशटदेव	कार्तिकेयपुर	५
७	पाण्डुकेश्वर	ताम्रलेख	पद्मटदेव	कार्तिकेयपुर	२५
८	पाण्डुकेश्वर	ताम्रलेख	सुभिक्षराज	सुभिक्षपुर	४
९	कालीमठ	शिलालेख	?	?	?
१०	बड़ापुर	मूर्ति की पीठ का लेख	?	?	१०६० वि०

भूदेव के बागेश्वर अभिलेख से उसके समय तक राजवंशावली निम्न विदित होती है—

१. बसन्तनदेव
२. खर्परदेव
३. कल्याणराजदेव
४. त्रिभुवनराजदेव
५. निम्बर्तदेव
६. इष्टगणदेव
७. ललितशूरदेव
८. भूदेवदेव

इन कत्यूरी अभिलेखों से विदित होता है यह एक ही कत्यूरी राजवंश था। परन्तु विभिन्न समयों में इसके तीन राजपरिवारों ने शासन किया था। सामान्य रूप से इनकी राजधानी कार्तिकेयपुर रही। परन्तु कुछ राजाओं ने समीपस्थ अन्य स्थानों

---

१. कैप्टन शूरवीरसिंह और शिवप्रसाद नैथानी का मत। डा० नैथानी से प्राप्त मौखिक जानकारी के आधार पर
२. हिमालय परिचय (१) पृ० ७२
३. उत्तराखण्ड का इतिहास भाग ३, पृ० ४४४

पर भी राजधानी बना ली थी। तीन राजपरिवारों के संस्थापक क्रमशः थे—वसन्तन, निम्बरदेव और सलोणादित्य। ये राजवंश क्रमशः हुए थे[1] और पीढ़ियों तक राज्य करते रहे। भूदेव ने बागेश्वर शिलालेख में कत्यूरी वंशावली को उत्कीर्ण कराया था, परन्तु दुर्भाग्य से यह अब उपलब्ध नहीं है। डा० डबराल ने इस वंशावली को इस प्रकार दिया है—

परिवार वंश	नरेश	रानी	परवर्ती नरेश से सम्बन्ध	विरुद
प्रथम परिवार	वसन्तन	सज्यनरा	—	परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर
	?	?	तत्पुत्र	वही
	खर्परदेव	?	तत्पुत्र	वही
	अधिधजदेव	लद्धादेवी	तत्पुत्र	वही
	त्रिभुवनराजदेव	?	तत्पुत्र	वही
द्वितीय परिवार	निम्बरदेवी	नाशूदेवी	?	वही
	इष्टगणदेव	वेगदेवी	तत्पुत्र	वही
	ललितशूरदेव	लयादेवी	तत्पुत्र	वही
	भूदेव	?	तत्पुत्र	वही
तृतीय परिवार	सलोणादित्य	सिंघवलीदेवी	?	वही
	इच्छटदेव	सिन्धुदेवी	तत्पुत्र	वही
	देशटदेव	पद्मल्लदेवी	तत्पुत्र	वही
	पद्मटदेव	विशालदेवी	तत्पुत्र	वही
	सुभिक्षराजदेव	?	तत्पुत्र	वही

—:o:—

१. एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द १३, भाग ६, पृ० २७८, २८५

रुद्रसूनु का कालीमठ अभिलेख

लिपि	—	उत्तरी ब्राह्मी
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	दसवीं शताब्दी ई०
प्राप्तिस्थान	—	गुप्तकाशी के समीप कालीमठ

मूल अभिलेख—

(१) ॐ ॥ सन्ध्या-समाधि–घटितांजलित: स्वपाणौ
कृष्णौ सके पि सुम ऽ॥ऽ क्षिणांस:
शर्व्वस्य ऽ स्वकर–संस्थित–तोयराशे:
संधित्र ....

(२) .... दयितयेव गृहीतकेश: ॥
दक्षोद्भवां तनुमपास्य शिरे प्रस्तुत
शर्व्व ....पतिमवाप्य

(४) गिरिपति गृहगोप्ता महारुद्राभिधार

(११) ....बाल एवाभवत् स्वामी सर्व्वसंग्रामकृद्यत:
रुद्रसूनु .... कालिकाता शैल.........

(१४) .... संग्रामकीर्ति: प्राकृतकवयो

(१५) .... कर्तु: शिला–कुट्टकै:

(१७) कै:...............

हिन्दी अनुवाद

(१) ॐ ॥ सन्ध्या करने के लिये लगाई गई समाधि में जोड़ी गई अंजलि में आधी रात में अपने हाथों में रखे गये पुष्प बिखर रहे थे। अपने हाथ में रखी गई जल की राशि से जुड़े हुये .... शिव के

(२) .... प्रियतमा द्वारा मानों केशों से पकड़ा गया। दक्ष से उत्पन्न शरीर को छोड़ कर .... प्रस्तुत शिव को पति के रूप में प्राप्त करके ....

(४) गिरिपति शिव के मन्दिर की रक्षा करने वाला महारुद्र नाम का ....

(११) .... बचपन में ही सबका स्वामी होगया, क्योंकि सब संग्रामों में भाग लेने वाला था। रुद्र का पुत्र .... कालिकाता पर्वत काली मठ ....

(१४) संग्राम में यश प्राप्त करने वाला ………………… प्राकृत भाषा का कवि ।

(१५) ………………… शिलाओं द्वारा रचना करने वाले का

(१६) किन्हीं ने …………………

टिप्पणी—

कालीमठ का यह शिला-अभिलेख २०"×१०" आकार की शिला परलिखा गया था । लेख पद्यबद्ध संस्कृत श्लोकों में है । मूल लेख २० पंक्तियों में है । इसके अनेक अंश अपाठ्य हो गये हैं । जो अंश पढ़े जा सकते हैं, वे उद्धृत किये गये हैं इसको सर्वप्रथम राहुल सांकृत्यायन ने पढ़ा था । उन्होंने अपनी कृति हिमालय परिचय (१) में इसे उद्धृत किया है[1] । डा० डबराल भी इसको उद्धृत करते हैं[2] ।

इस अभिलेख की लिपि से प्रतीत होता है कि इसको कत्यूरी शासन के समय लिखा गया था और यह १० वीं शताब्दी ई० का लेख है । मन्दिर को शिलाखण्डों से बनाया गया था । इसको बनवाने वाले गिरि प्रदेश के शासक थे तथा उनको इस मन्दिर की रक्षा के लिये नियुक्त किया गया था । शिव की पत्नी तथा दक्ष की पुत्री के प्रति शिरोवन्दना करने के लिये इस अभिलेख की रचना की गई थी । इसके रक्षकया रचयिता महारुद्र थे, जो रुद्र नामक किसी सामन्त के पुत्र थे । उनकी युद्ध करने की कुशलता सब स्थानों पर विख्यात थी ।

कालीमठ के इस अभिलेख से प्रतीत होता है कि यह मन्दिर बहुत प्राचीन है । यह एक हजार बर्ष से कम पुराना नहीं है । उस युग में भी यहां काली- देवी की पूजा बड़े समारोह के साथ होती होगी ।

कालीमठ के लिये मार्ग काफी लम्बा है । ऋषिकेश से गंगा के तट के साथ-साथ देवप्रयाग तक जाते हैं । देवप्रयाग से अलकनन्दा के तट के साथ रुद्रप्रयाग तक यात्रा होती है । यहां से मन्दाकिनी की घाटी में आ जाते है । मन्दाकिनी की धारा के साथ गुप्तकाशी पहुँचते है । तदनन्तर नालाचट्टी से मार्ग नीचे उतर जाता है । वहां से १० किमी० दूर सरस्वती के किनारे कालीमठ है । चमोली होकर भी कालीमठ जाया जा सकता है । चमोली से गोपेश्वर और तुंगनाथ होकर तथा ऊखीमठ होकर कालीमठ जाया जा सकता है । परन्तु पहला मार्ग ही अधिक सरल है ।

—:०:—

१. हिमालय परिचय भाग १ पृ० ४४१

२. उत्तराखण्ड का इतिहास थाग १. पृ० ४०६–४०७

अशोकचल्ल का गोपेश्वर का का त्रिशूल अभिलेख

लिपि	—	ब्राह्मी
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	१२ वीं शताब्दी ई०
प्राप्तिस्थान	—	गोपेश्वर का पशुपतिनाथ मन्दिर

मूल अभिलेख—

ॐ स्वस्ति ।। कृत्वा दिग्विजयं महालयमहादेवास्त्रसंस्थामिमां,
राज्यं श्री–मदशोकचल्लनृपतेः स्तम्भच्छलान्नीतवान् ।
पश्चाच्च प्रतिरोप्य तत्र विजयस्तम्भं प्रतिष्ठामगा–
दुत्खातप्रतिरोपणं हि महतां युक्तं नतानां पुनः ।।

हिन्दी अनुवाद—

ओ३म् कल्याण हो ।। श्रीमान् अशोकचल्ल राजा ने विविध दिशाओं को जीत कर, एक महान् स्तम्भ के समान ही महादेव की इस भुजा को इस महान् मन्दिर में प्रतिष्ठित किया । इसके बाद उसने विजयस्तम्भ को प्रतिष्ठित करके प्रतिष्ठा को प्राप्त किया । महान् पुरुषों के लिये यह उचित ही है कि वे उद्धत शत्रुओं को उखाड़ फेंकें । पुनः विनम्र होने पर उनको पुनः प्रतिष्ठित करदें[1] ।

टिप्पणी—

ऋषिकेश–बदरीनाथ मार्ग पर ऋषिकेश से २१० किमी दूरी पर चमोली है । १९६३ ई० में चमोली को जिला बनाया गया था और गोपेश्वर उसका सदर मुकाम हुआ । पैदल मार्ग से चमोली से गोपेश्वर की दूरी ४ किमी और मोटर मार्ग से १० किमी है । समुद्रतल से गोपेश्वर की ऊँचाई ५००० फीट है ।

गोपेश्वर का पशुपतिनाथ मन्दिर (शिवमन्दिर) अति भव्य और विशाल है । यह अति प्राचीन मन्दिर गढ़वाल के शिवमन्दिरों में दूसरे नम्बर पर गिना जाता है । इस मन्दिर के प्रांगण में एक विशाल त्रिशूल है । इस त्रिशूल पर कुछ अभिलेख हैं ।

---

१. इण्डियन एन्टीक्वेरी, १०, पृ० ३४५–३४६
उत्तराखण्ड का इतिहास भाग ३. पृ० ५१५
हिमालय परिचय (१) पृ० ११२

इतिहास और पुरातत्त्व की दृष्टि से ये बहुत महत्वपूर्ण हैं। एक अभिलेख में नागवंशी राजाओं स्कन्दनाग विभुनाग, अंशुनाग और पशुपतिनाग का उल्लेख है। दूसरे अभिलेख में अशो–कचल्ल का वर्णन आता है। कुछ विद्वानों ने उसको अनेकमल्ल या अनीकमल्ल पढ़ा है[१]। अशोकचल्ल नागवंशी राजा था और वह सपादलक्ष (शिवालक पर्वत से लेकर हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियों तक) का अधिपति था। बोधगया के एक अभिलेख से अशोकचल्ल के सपादलक्ष का राजा होने का प्रमाण मिला है[२]। इस अभिलेख से यह भी विदितहोता है कि अशोकचल्ल का छोटा भाई दशरथ था।

गोपेश्वर के अभिलेख से प्रमाणित है कि इस नेपाली राजा ने सम्पूर्ण गढ़वाल को जीत लिया था। गोपेश्वर में उसने शिव का विशाल मन्दिर बनवाया था। अशोकचल्ल का एक अभिलेख उत्तरकाशी के विश्वनाथ मन्दिर के सामने शक्तिमन्दिर के त्रिशूल पर भी है अंकित।

—:०:—

१. जे . ए. एस. बी.वो० ५, प्लेट २९, पृ० ४८५

२. निजनिश्चितप्रशस्तिसमलङ्कृतसपादलक्षशिखरिखसदेशराजाधिराजश्रीमदशोकचल्ल-देवकणिष्ठभ्रातृश्रीदशरथनामधेयकुमारपादपद्मोपजीवि ।
बोध गया के एक अभिलेख का अंश इण्डियन एन्टीक्वेरी जि० १० पृ० ३४६

अशोकचल्ल का गोपेश्वर का शिलालेख

लिपि	—	उत्तरी ब्राह्मी (कुटिला)
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	बारहवीं शताब्दी ई०
प्राप्तिस्थान	—	गोपेश्वर का पशुपतिनाथ मन्दिर

मूल अभिलेख—

अशोकचल्ल का यह मूल संस्कृत अभिलेख अब उपलब्ध नहीं है। इस अभिलेख के मूल के विवरण तथा हिन्दी और अंग्रेजी अनुवाद तो कई विद्वानों ने दिये हैं, परन्तु मूल अभिलेख वाली शिला इस समय मिल नहीं रही है। डा० यशवन्तसिंह कठोच का कहना है कि फुरर आदि के आधार पर सी० मेबल, डफ आदि कुछ लेखकों ने इसे राजा अशोकचल्ल का त्रिशूल अभिलेख बता कर भूल की है[1]। मूल संस्कृत अभिलेख का हिन्दी अनुवाद ही यहां दिया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद—

कल्याण हो ।। जिसकी प्रतापरूपी अग्नि ने शत्रुओं की तलवारों को भस्म कर दिया था, जिसके बाणों की नखरूपी मणियां शत्रु राजाओं की वधुओं के ललाटों के सिन्दूर से लाल रंजित हैं, जिसने सागर के समान गम्भीर और विस्तृत कीर्ति का प्रचार किया है, जिसके सिंहासन के चरणपीठों की कान्ति शत्रु–मित्र राजाओं के शिरोमणियों के भास्वर किरण-समूहों से चारों ओर उद्भासित होती हैं, जो राजारूप हाथियों के लिये सिंह है, जो वेताल के स्वामी विक्रमादित्य के समान दानव और भूतल का राजा है, जो नारायण के समान सर्पराज गरुडवाहन के समान है तथा शवनि (गति) से सम्पन्न है। गौड कुल में उत्पन्न हुये, वैराध कुल के तिलक, अभिनव बोधिसत्व के अवतार, अवनिपति तिलक, परम भट्टारक, उस महाराजाधिराज अशोकचल्ल ने अपनी सर्वगामिनी सेना द्वारा केदार-भूमि को जीता। जीते हुये भूभाग को अपना प्रदेश बना कर, सभी भोग्य वस्तुओं से अलंकृत करके दान कर दिया और भोज किये।

---

१. मध्य हिमालय का पुरातत्व पृ० १०३

समय—शक संवत् १११३ (११९१ ई०)
सौरमान के अनुसार ००० गत दिनांक गणपति १२
शुक्रवार नवमी चन्द्र ०००
लिखित—मल्ल श्री राजमल्ल, श्री ईश्वरीदेव
पण्डित श्री रंजनदेव

साथ में श्री चन्द्रोदयदेव तथा सेनापति–सेनानायक

इस अभिलेख के विवरण हिमालयन गजेटियर वो० २ भाग २ पृ० ५११–५१२ में प्रकाशित हुये थे। इसको राहुल सांकृत्यायन के हिमालय परिचय (१) में पृ० १११–११२ पर, एशियाटिक रिसर्चेज खण्ड ११ पृ० ४७७ पर और जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आप बंगाल खण्ड ५, पृ० ३४७–३८५ पर भी प्रकाशित किया गया है।

अशोकचल्ल के व्यक्तित्व, दिग्विजय आदि के विवरण 'गढ़वाल का संक्षिप्त इतिहास' के अशोकचल्ल के प्रकरण में दिये जा चुके हैं। उसने बारहवीं शताब्दी ई० के अन्तिम भाग में सम्पूर्ण केदार भूमि को जीत कर अपने अधिकार में करके सारी भूमि ब्राह्मणों को दान कर दी थी। उसका अधिकार वर्तमान सम्पूर्ण टिहरी, उत्तरकाशी चमोली और पौड़ी गढ़वाल रहा था।

—:०:—

मणदेव का नाला [गुप्तकाशी] अभिलेख

लिपि	---	उत्तरी ब्राह्मी (कुटिला)
भाषा	---	संस्कृत
समय	---	१२ वीं शताब्दी शकसंवत्
प्राप्तिस्थान	---	नालाचट्टी (गुप्तकाशी)

मूल अभिलेख–

(१) स्वस्ति ।। श्रीदेवि .... नुमः । तत............
.... भद्रस्य

(२) मनसा कर्मणा वाचा अंगुष्ठाण .... धि–यत ।
देवपितृप्रसादेन मणदेवस्य........................

(३) पुण्यकर्मभरादेव करिष्यन्ति सुरालयं ।
भुक्तिमुक्तिफले तस्य ....

(४) सरस्वतीप्रसादेन घटिता प्रतिमा सुभा ।
सुक्र धरम । ....साके ११३८

हिन्दी अनुवाद–

(१) स्वस्ति ।। श्री देवि .... तुमको नमस्कार करते है। इस विषय में .... भद्र का

(२) मणदेव के मन से, कर्म से, वचन से और इन्द्रियों से देव–सेवा करते हुये देवताओं और पितरों की कृपा से

(३) पुण्य कर्म करने के लिये ही देवालय की रचना करेंगे । उससे भोग और मुक्ति रूप फल प्राप्त होंगे ।

(४) सरस्वती देवी की कृपा से इस शुभ प्रतिमा की रचना कराई। शुक्र (तेज) को धारण करने वाले ....
शक संवत् ११६८ में यह लिखा गया

टिप्पणी–

मन्दाकिनी की घाटी में केदारनाथ मार्ग पर गुप्तकाशी से १.५ किमी आगे नाला नामक चट्टी है। यहां ललिता देवी का मन्दिर है। इस मन्दिर के समीप ही अन्य अनेक छोटे–छोटे मन्दिर हैं। बाईं ओर एक बौद्ध स्तूप भी है। एक छोटे मन्दिर के द्वार पर यह शिलालेख एक शिला पर उत्कीर्ण है। इस अभिलेख पर शक

संवत् ११६८ उत्कीर्ण है। अतः यह लेख निश्चित रूप से ११६८+७८=१२४६ ई० का है।

इस अभिलेख को राहुल सांकृत्यायन ने पढा था और अपनी पुस्तक में उद्धृत किया[1]। डा० डबराल ने भी इसको उद्धृत किया है[2]। इस अभिलेख के विषय में एक लेख 'जर्नल आफ इण्डियन हिस्ट्री' में भी प्रकाशित हुआ[3]।

इस शिलालेख से स्पष्ट है कि इस मन्दिर को मणदेव ने बनवाया था। कत्यूरी शासन के समय का अभिलेख होने से अनुमान किया जा सकता है कि मणदेव कोई उच्च पदाधिकारी रहा होगा। हो सकता है कि वह उस समय इस क्षेत्र का सामन्त हो।

—:०:—

१. हिमालय परिचय (१) पृ० ४४५
२. उत्तराखण्ड का इतिहास भाग १ पृ० ४०७ –४०८
३. जर्नल आफ इण्डियन हिस्ट्री जि० २६ (अप्रैल १६४१)

चांदपुरगढी का कनकपाल का अभिलेख

लिपि	—	ब्राह्मी
भाषा	—	संस्कृत
समय	—	१० वीं शता० ई०
प्राप्तिस्थान	—	चांदपुरगढी

मूल अभिलेख–

शायकाब्धि–नव–सम्मितवर्षे विक्रमस्य विधुवंशज–पूज्यः ।
श्रीनृपः कनकपाल इहाप्तः शौनकर्षिकुलजः प्रमरोऽयम् ॥

हिन्दी अनुवाद—

चन्द्रवंशियों में आदरणीय, शौनक ऋषि के कुल में उत्पन्न श्री राजा कनकपाल प्रमर (पंवारवंशी) ९४५ विक्रमी संवत् में यहां आये थे ।

टिप्पणी—

हरिकृष्ण रतूड़ी ने अपने 'गढ़वाल का इतिहास' पुस्तक में लिखा है कि चांदपुर गढी से यह शिलालेख प्राप्त हुआ है । इसके अनुसार यह सिद्ध हो जाता है कि गढ़वाल में पंवार वंश के प्रवर्तक कनकपाल धारा नगरी से यहां चाँदपुरगढी में ९४५ वि० सम्वत् में आये थे[१] । इससे गढ़वाल में पंवार वंश के राज्य का आरम्भ ईसा की ११ वीं शताब्दी (९४५ + ५७ = १००२) प्रतिपादित है ।

इस समय यह शिलालेख उपलब्ध नहीं है, जिससे कि इसके यथार्थ होने को प्रमाणित किया जा सके । राहुल सांकृत्यायन ने इस अभिलेख के ऐतिहासिक प्रमाण होने को स्वीकार नहीं किया । यदि इस समय को स्वीकार कर लिया जावे तो कनकपाल कत्यूरी राजा ललितशूर से भी पहले का प्रतिपादित हो जायगा । एक तो यह शिलालेख प्राप्त भी नहीं है । होता भी तो यह जाली है तथा बाद के पण्डितों ने पंवार वंश की प्राचीनता का गौरव प्रदर्शित करने के लिये जाली शिलालेख लिखवाया होगा । अतः यह शिलालेख जाली ही है । अन्य भी किसी इतिहासविद् ने इस शिलालेख को प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं किया है ।

---

१. हरिकृष्ण रतूड़ी : गढ़वाल का इतिहास पृ० ३५४
२. हिमालय परिचय (।) पृ० १२४

परिशिष्ट–१

अभिलेखों से सम्बन्धित व्यक्तिवाचक नाम

अंशुनाग
अग्निवर्मन्
अचल
अचलवर्मन्
अधिधजदेव
अधिष्ठाण
अनन्त
अनिरुद्ध
अनीकमल्ल
अनेकमल्ल
अन्तिओक
अवन्तिवर्मन्
अशोक
अशोकचल्ल
अश्वघोष
आदित्य
आदित्यवर्मन्
आदिवर्मन्
आर्यवतु
आर्यवर्मन्
इच्छटदेव
इष्टगणदेव
ईशानवर्मन्
ईश्वरनाग
ईश्वरवर्मन्
ईश्वरा
ईश्वरीदत्त
ईश्वरीदेव
कर्कवर्धन
कटुकत्तम्भ

कनकपाल
कपिलवर्धन
कमला.........
कल्याणवर्मा (१)
कल्याणवर्मा (२)
कीर्तिमती
खर्परदेव
गंगभद्र
गणपतिनाग
गणेश्वर
गुणवती
गुणा
गुह
गुहवर्मा
गुहीश्वरदत्त
गुहेश
गुहेश्वरदत्त
गेल्लण अण्णक
चतुर्व्यूह
चन्द्रगुप्त
चन्द्रदत्त
चन्द्रोदय
छत्रेश्वर
छागलकेतु
छागलेशदास
जलवर्मन्
जयदास
जयन्त
जयमन
जयावती

त्रिभुवननारायण
दशरथ
दामोदरदास
दिवाकरवर्मन्
दुर्गाभट्ट
दुष्यन्त
देवशर्मा
देववर्मन्
देशटदेव
द्युतिवर्मन्
द्विजवर्मन्
धनदत्त
नन्दक
नन्दभद्र
नरबर्मन्
नागदत्त
नारतन
नारायणदत्त
नाशूदेवी
निंवर्त
निम्बरदेब
पट्टवायक
पद्मटदेव
पद्मल्लदेवी
पशुपतिनाथ
पीजक
पुरूरवा
पोण
प्रदीप्तवर्मन्
प्रद्युम्नवर्मन्
भट्टघण
भट्टवासुदेव
भट्टश्रीपुरुष
भट्टस्कन्द
भद्रबल
भद्रमित्र
भानु
भास्करबर्मा
भूदेव
मणदेब
मल्लश्रीराजमल्ल
मसन्तन
मातृचेट
मातृदत्त
मानपर्वत
मारिशर्मा
यज्ञ
यज्ञवर्मन्
यदु
ययाति
राम
रामभद्र
रावण
रुद्रवृद्धि
रुद्रसूनु
रुद्रेशदास
लद्धादेवी
लयादेवी
ललितशूरदेब
लवचन्द्र
वराहदत्त
वसन्तन
वसुदेव
बसुबन्धु
वासुदेव
विक्रमादित्य
विभुनाग
विष्णु

विष्णुदास
विष्णुभद्र
विष्णुवर्मन् (१)
विष्णुवर्मन् (२)
वृद्धिवर्मन्
वृषवर्मन्
वेगदेवी
शङ्कराचार्य
शर्मिष्ठा
शिव
शिवभवानी
शीलवर्मन्
श्रीरुद्रवर्मन्
सङ्कर्षण
सज्यनरा
समुद्रगुप्त
सर्ववर्मन्
सलोणादित्य
साधुक
सामदेवी
सावित्री
सिंघवलीदेवी
सिंहवर्मन्
सिन्धुदेवी
सुभिक्षराजदेव
सूर्यदत्त
सेनवर्मन्
स्कन्ददत्त
स्कन्दनाग
हर्ष
हिरण्य
हिरण्यनाग
ह्वेन्त्सांग

परिशिष्ट—२

अभिलेख से सम्बन्धित स्थान-नाम

अंतकिन
अकर्णिकाक्षेत्र
अण्डागारिनिक
अतिबलाकपल्लिका
अनसूया
अन्धुलकर्ण
अपरान्त
अम्बलिपालिका
अम्बाला
अयोध्या
अरिष्टाश्रम
अलमोड़ा
अलिक्यसुदल
अवलीनक
इच्छवलान्ता
इच्छवर्द
इच्छावलक
इहंग
उत्तरकाशी
उत्तरगङ्गा
उत्तरपथ
उत्तराखण्ड
उदुम्बरवास
उद्धृतपिण्डास्थ
उपहुग्राम
उष्णोदक
ऋषिकेश
ओगलावृत्ति
ककठयाला
कटुस्थिक

कट्टणशिल्न
कण्ठारपार्श्वं
कण्डारा
कपिलगर्ता
कपिलेश्वर क्षेत्र
करकोटा
करवीर
करवीरक्रोष्टाकक्षीकरणग्राम
करवीरगर्ता
करवीरपुर
करवीरवीटिका
कराभशालिका
कर्कटकस्थूणा
कर्कोणक
कर्कोटा
कर्तृपुर
कर्वटक
कलिंग
कांगड़ा
काकस्थली
काम्बोज
कार्तिकेयपुर
कालसी
कालीमठ
कुमायूं
कुल्य
कुल्यवाप
कुसुमनगर भुक्ति
केदार क्षेत्र
केदारखण्ड
केदारनाथ
केरल
कोटद्वार
कोटखेत
कोणकलिका
कोल्लपुरी
क्रोडशूर्पी
क्रोष्ट्रामल्लक
क्षीरानावा
खट्टलिका क्षेत्र
खडोदुपरि उलिका
खट्टाकपल्ली
खानक
खोरखोटक
खोल्लावनक
गंगाग्राम
गंगोत्तरवास
गढ़वाल
गम्भीरपल्लिका
गरुडाश्रम
गलपलेठी
गान्दोडारिक
गान्धार
गुणादित्य
गुप्तकाशी
गोग्गलपल्लिका
गोधोधक
गोपेश्वर
गोमतिसारी
गोरुन्नासा
गोलथालक
गोविषाण
गोहट्टुवास
ग्रामपरक
ग्रामिद्दारक
चकरौता
चन्द्रपल्लिका
चन्द्रलाकपल्लिका

चमोली
चम्पकताली
चम्बा
चाँदपुरगढ़ी
चाचटक
चोल
छिद्रगर्ता
जंगलखोल्लिका
जगतग्राम
जन्तुजालध्वंसक
जयकूलभुक्ति
जयभट्टपल्लिका
जरोलक
जालन्धर
जीवाकसीमादित्य
जोशीमठ
ज्योराणा
टंकणपुर
टिहरी
तुलमय
तालेश्वर
तिरंगा
तुङ्गादित्य
तुङ्गल
त्र्यम्बकपुर
दण्डवासिवत्
दालीमूलक
दीपपुरी
दीर्घादित्य
दुज्जणातंग
दुणवृद्धपल्लिका
देवकी
देवकुलमाला
देववयक्षेत्र

देववयतोली
देववयनूप
देवदासतोली
देवप्रयाग
देवसल
देहरादून
द्रुमती
धारणक
नंगाल
नजीबाबाद
नन्दिकेश्वरक्षेत्र
नम्बरम
नरकक्षेत्र
नागिलक्षेत्र
नातिपाटक
नामक
नामपंति
नाम्बरंगीय
नारायणस्वामी
नालाचट्टी
निम्बसारी
नृमुण्ड
नेपाल
नोलक
न्यायपट्टक
पंकरहस्त
पंगर
पंतकोशयिका
पट्टीखास
पणिभूतिका
पर्वताकर
पर्वतारक्षेत्र
पलेठी
पल्लिवाटक

पल्लिहट्टि	भेल्लमस्तक
पविपडिदल	भोज
पश्चिम द्रोणी	मका (मग)
पस्तराकभृतिरोड़	मण्डल चट्टी
पस्सेरुक	मधुफलमूलकक्षेत्र
पाटलिकारामक	मध्यमपुर
पाण्डुकेश्वर	मध्यमारक
पाण्ड्य	मम्मदत्त
पितिनक	मल्लवस्तुक
पुटवनक	मल्लिका
पुलिन्द	महर्जियाक
पुष्पदन्तिका	महासू
पेट्टक	मालवकक्षेत्र
प्रथमादित्य	मृष्टिकाक्षेत्र
प्रमीलापल्लिका	मोरध्वज
बढापुर	यवन
बदरिकाश्रम	यिदादित्य
बदरीनाथ	युग
बलीवर्दशिला	युगशैल
बशेशर	योशि
बाँसखेड़ा	योशिका
बागेश्वर	रंजनदेव
बाड़ावाला	रञ्चपह्लिका
बाड़ाहाट	रजकस्थल
बाहिरण्यपल्लिका	राजपुत्रकोछाल
बिल्वक	राज्यकंकोली
बीजकरणीक्षेत्र	रोहतक
बैजनाथ	रौदीतक
ब्रह्मपुर	रौलदाण
भग्नानूपमोढ्ढमा	रौहीतक
भट्टिपल्लिका	लखनपुर
भरमौर	लवणसारी
भागरु	लवणोदक
भूतपल्लिका	लाखामण्डल

लोहरसमेणा
वंजालि
वचाकरण
वच्छक
वच्छरक
वज्रस्थलक्षेत्र
वडिवल
वड्क्षेत्र
वनक
वनगढ़
वराह
वराहक्षेत्र
वरोषिका
वाडियालिक
वारुणाश्रम
वर्द्धकिपल्लिका
वासोदक जंगल
व्यासोष्ठिनी जंगल
विज्जट
विडियामलक
विशाखिलपल्लिका
विषयतंग
विहलक
वृद्धतरीपल्लिका
वेनवाक
शङ्कराचार्य गुहा
शठिक
शरथा
शरणखोनरोड
शरणेश्वरग्राम
शिखल
शिमला
शिलादित्य
शिवक
शिवमुचीच्यापुरी
शीर्षारण्य
शुण्ठीवानूपग्राम
शृगालखोल्लिका
शोरा
शोषिजीवा
श्रीभाचर्प्पट
श्रीहर्षपुर
संकटसीमा
संवायिका
सकिन्नरा
समज्जाव्यस्ता
समयकटायी
समेहक
सवायिका
सहारनपुर
साधुतुंगग्राम
सिट्टक
सिरोही
सिहारा
सिंहपुर
सुघगाँव
सुभट्टक
सुभिक्षपुर
सुवर्णकारपल्लिका
सृष्टधीमा
सेम्मकक्षेत्र
सेम्महिका
सैंहपुर
सौम्यकाशी
स्तम्भसङ्कटिका
स्रुघ्नदेश
स्रुघ्ननगर
हिंडोलाखाल
हुडुक्कसूनाक्षेत्र

परिशिष्ट–३

अभिलेखों से सम्बन्धित शासनाधिकारी

अग्निस्वामी
अभित्वरमाणक
अमात्य
अश्वपति
अश्वबलव्यापृतक
आभीर
आसेधभङ्गाधिकृत
उपरिक
उष्ट्रबलव्यापृतक
कटुक
करिक
काण्डपति
कारङ्गिक
किशोर-अधिकृत
कुमारामात्य
कुलचारिक
कृतिक
कोटाधिकरणिक
कोट्टपाल
क्षेत्रपाल
खण्डारक्ष्य
खाड्गिक
गजपति
गमागमिक
गो–अध्यक्ष
गोप्ता
गौल्मिक
घट्टपाल
चौरोद्धरणिक
जयनपति
ठक्कर
ठक्कुर
तदायुक्तक
त्वरमाणक
दण्डपाशिक
दण्डवासिक
दण्डोपरिक
दशापराधिक
दाण्डिक
दिविरपति
दु:साध्यसाधनिक
दूतक
दूतप्रेषणिक
दोषापराधिक
धर्ममहामात्र
नगरपति
नरपति
पट्टकोपचारिक
पारिषद्
पीलुपति
प्रतिशूरिक
प्रतिहार
प्रधान
प्रमाता
प्रमातार
प्रान्तपाल
बडवाधिकृत
बलाध्यक्ष
भट्ट
भागिक
भाण्डागाराधिकृत
भृत्य
भोगपति
भोगिक
महत्तम

महाकर्तृक
महादण्डनायक
महादानाक्षपटलाधिकृत
महादानाक्षपटलिक
महाप्रतीहार
महामनुष्य
महाराजप्रमातार
महासत्रपति
महासन्धिविग्रहाक्षपटलाधिकृत
महासामन्त
महासामन्ताधिपति
महिष्यधिकृत
राजदौवारिक
राजपुत्र
राजस्थानीय
राजानक
राजामात्य
राजुक
राज्यक
लेखक
वणिक्
वर्त्मपाल
विनियुक्तक
विषयपति
विषयप्रधान
विषयव्यापृतक
शरभङ्ग
शाङ्गिक
शौल्किक
श्रेष्ठी
सन्धिविग्रहिक
सन्धिकरण
सामन्त
सूपकारपति
सेनानायक
सेनापति
सौधभङ्गाधिकृत
सौवर्णिक
स्थानाधिकृत
हस्तिबलव्यापृतक

परिशिष्ट—४

अभिलेखों से सम्बन्धित मन्दिर

अनसूया देवी
कालभैरव
गोपेश्वर
चंडामुंडा
जड भरत
दत्तात्रेय
दुर्गा
निश्चितादेवी
परशुराम
पशुपतिनाथ
बदरीनाथ
ब्रह्मेश्वर
भवमन्दिर
यज्ञमन्दिर
रघुनाथमन्दिर
लक्षेश्वर
ललितादेवी
लाखामन्दिर
विश्वनाथ मन्दिर
वीरणेश्वर
वीरभद्रेश्वर
वृद्धकेदार
वृद्धजागेश्वर
वृद्धबदरी
वृद्धेश्वर
व्याघ्रेश्वर
शक्तिमन्दिर
सूर्यमन्दिर
स्कम्भारतोली मन्दिर

परिशिष्ट—५

अभिलेखों से सम्बन्धित पर्वत

कलिकाता
डुडुवक
तुङ्गपर्वत
मन्दर पर्वत
मानपर्वत
वारणावत
शिवालक
सुमेरु
हिमालय

परिशिष्ट—६

अभिलेखों से सम्बन्धित नदियाँ

अलकनन्दा
असी
कालीगङ्गा
गङ्गा
गिरिनदी
टौंस (तसमा)
ताम्रपर्णी
पितृगङ्गा
भागीरथी
मन्दाकिनी
मोरद गाड
वरुणा
सतलज (शतद्रु)
सरस्वती

परिशिष्ट—७

अभिलेखों से सम्बन्धित जातियाँ

अमेद
आन्ध्र
ओड्र
कलिंग
किरात
खश (खस)
गौड
चाण्डाल
द्रविड
पुलिन्द
भोज
यवन
हूण

—:०:—

परिशिष्ट—८

सन्दर्भ-साहित्य

अग्रवाल, वासुदेवशरण: इण्डिया एज नोन टु पाणिनि,
पाणिनिकालीन भारतवर्ष

अथर्ववेद

अलबरूनी: इण्डिया

इण्डियन एण्टीक्वेरी (भागों में)

उत्तराखण्ड भारती १७७८

उपाध्याय, वासुदेव: प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन (१९६१)
गुप्त साम्राज्य का इतिहास

ऋग्वेद

ए० रि० इ० एपि० १९६८-६९

एज आफ इम्पीरियल कन्नौज

एटकिन्सन, इडविन टी०: हिमालयन गजेटियर (६ जिल्दों में)

एन्शिएन्ट इण्डिया जि० ९

एन्शिऐन्ट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड बाई मेगास्थनीज एण्ड एरियन

एपिग्राफिका इन्डिका (भागों में)

एस० ए० एस० बी० वो० ५, ११

ओकले: होली हिमालय

कठोच, यशवन्तसिंह: मध्य हिमालय का पुरातत्त्व

कनिंघम, अलैग्जैन्डर: दी एन्शिएन्ट ज्योग्राफी आफ इण्डिया

ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द: प्राचीन लिपिमाला (१९५४)

कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम (भागों में)

कालिदास: अभिज्ञानशाकुन्तलम्

कालिदास: मेघदूतम्

कालिदास : कुमारसम्भवम्

कृष्णकुमार : गढ़वाल के संस्कृत अभिलेख

केदारखण्ड पुराण

कौटिल्य : अर्थशास्त्र

गंगानाथ झा: इन्स्क्रिप्शन्स आफ दी अर्ली गुप्त किंग्स एण्ड देयर सक्सेसर्स
(१९१४)

चटर्जी, गौरीशंकर: हर्षवर्धन

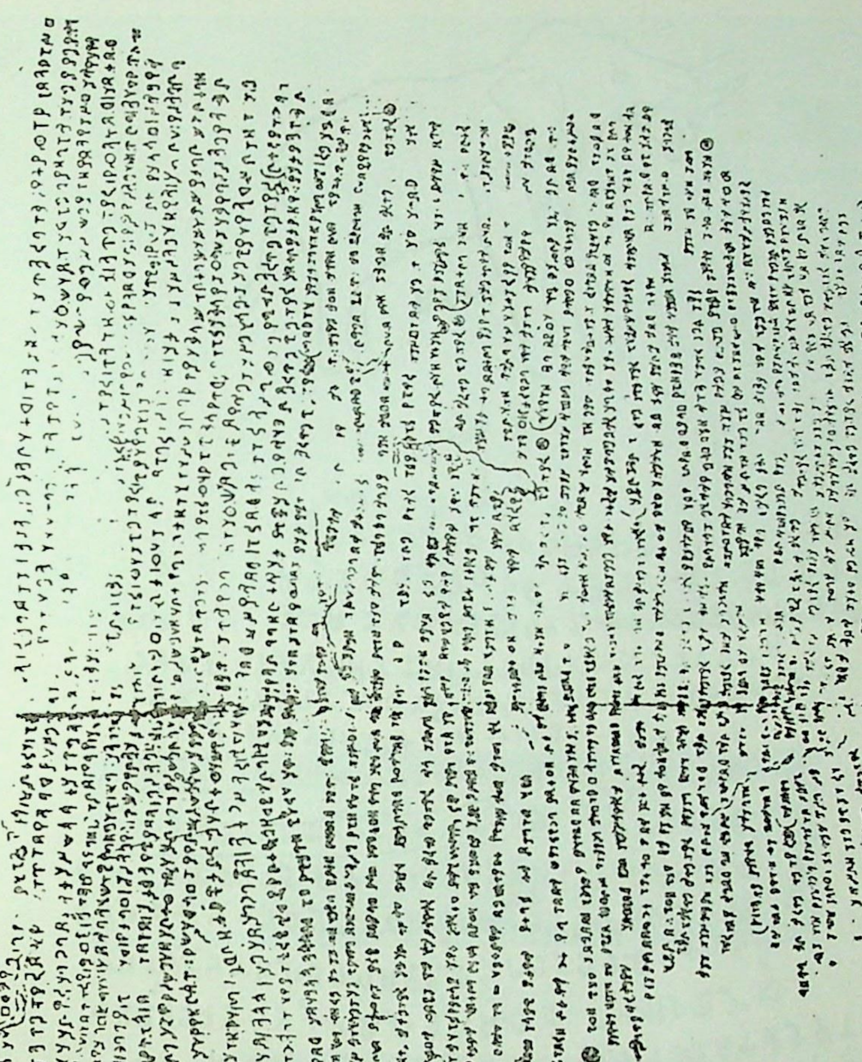
जनरल आफ इण्डियन हिस्ट्री अप्रैल १९४१

जनरल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल वो० V, VII

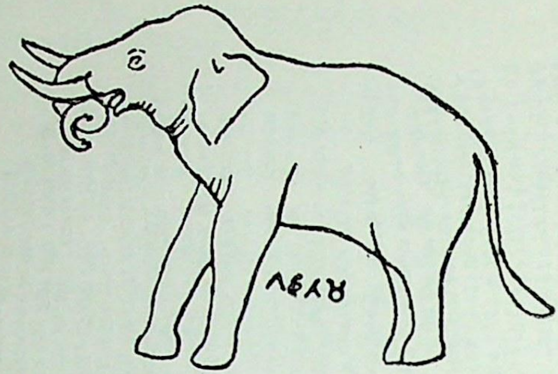
जनरल आफ यू० पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी १९४४, १९५३

जनरल आफ रायल सोसाइटी वो. XXI, XXII

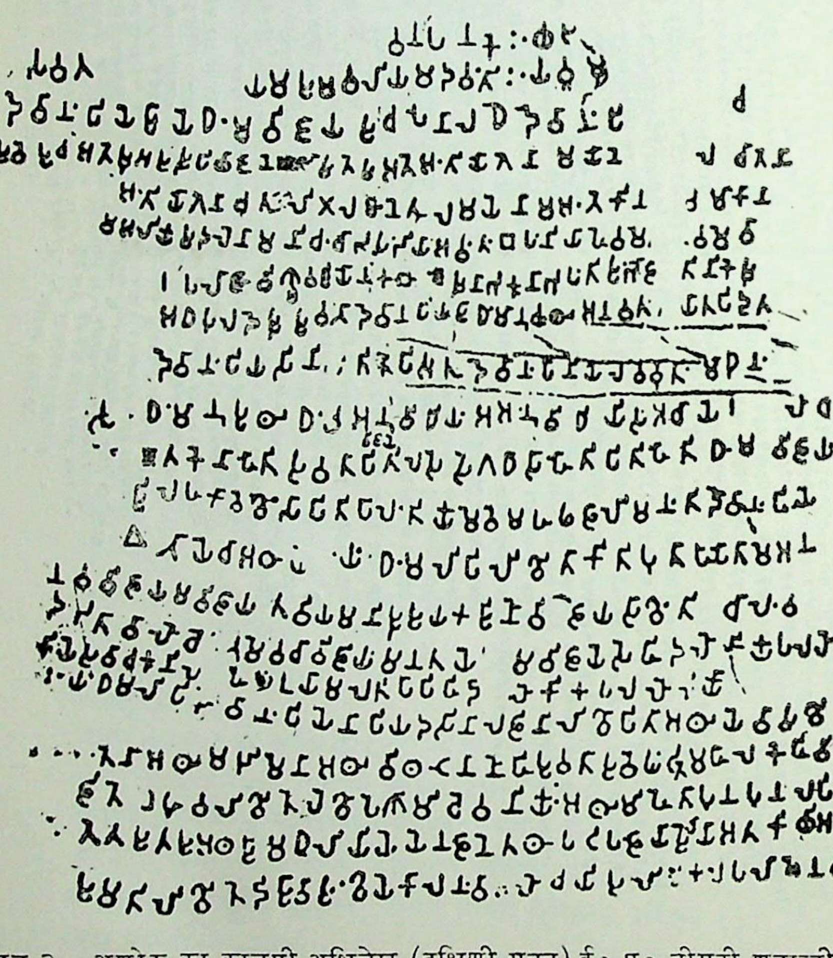
जायसवाल, के० पी०: अन्धकार युगीन भारत
टिहरी गढ़वाल गजेटियर
डबराल शिवप्रसाद: उत्तराखण्ड का इतिहास (१-७ भाग)
नन्दलाल:, दी ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ एंशिएन्ट एण्ड मिडीवल इण्डिया
नैथानी, शिवप्रसाद: गढ़वाल संभाग का इतिहास और सांस्कृतिक भूगोल तथा नृवंशीय अध्ययन
नौटियाल, के० पी०: आर्कओलॉजी आफ कुमायूँ
नौटियाल:, शिवानन्द: गढ़वाली जनमानस
पंवार, शूरवीरसिंह कैप्टन: गढ़वाल के प्रमुख अभिलेख और दस्तावेज
पाणिनि: अष्टाध्यायी
पाण्डेय, राजबली:, हिस्टोरिकल एण्ड लिटरेरी इन्स्क्रिप्शन्स (१९६२)
पाण्डेय, राजबली: अशोक के शिलालेख
प्राचीन लेखमाला (काव्यमाला सीरीज) निर्णय सागर प्रेस
फुरर: मानुमेन्टल एन्टिकिटीज आफ नार्थवेस्टर्न इण्डिया
बाण: कादम्बरी
भरत ज्योतिराय: मानोदय महाकाव्य
भारद्वाज, सुरेन्द्रमोहन : हिन्दू प्लेसेज आफ पिलग्रिमेज इन इण्डिया
भारवि: किरातार्जुनीयम्
मजूमदार, डी० सी:० क्लासिकल एज
मजूमदार एण्ड पुसलकर: दी एज आफ इम्पीरियल यूनिटी
मनुस्मृति
महाभारत
मुकर्जी: चन्द्रगुप्त एण्ड हिज टाइम्स
मोतीचन्द: ज्योग्राफिकल एण्ड इकोनोमिकल स्टडीज इन दी महाभारत
यमस्मृति
रतूडी, हरिकृष्ण: गढ़वाल का इतिहास
रामायण
वाटर्स, थोमास: ऑन ह्वेन्त्सांग ट्रेवल्स इन इण्डिया
वामन एवं जयादित्य: काशिका
विशाखदत्त: मुद्राराक्षस
विष्णुस्मृति
शमन हुइली तथा एस० नील: दी लाइफ आफ ह्वेन्त्सांग
शर्मा, जगदीश एस०: नेशनल ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ इण्डिया
शास्त्री, नीलकण्ठ: काम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री आफ इण्डिया
सरकार, डी०: सी० सलेक्ट इण्डियन इन्स्क्रिप्शन्स जि-१
सांकृत्यायन, राहुल: गढ़वाल, जीवन यात्रा, हिमालय परिचय (१)
सिद्ध भारती-—१९५०



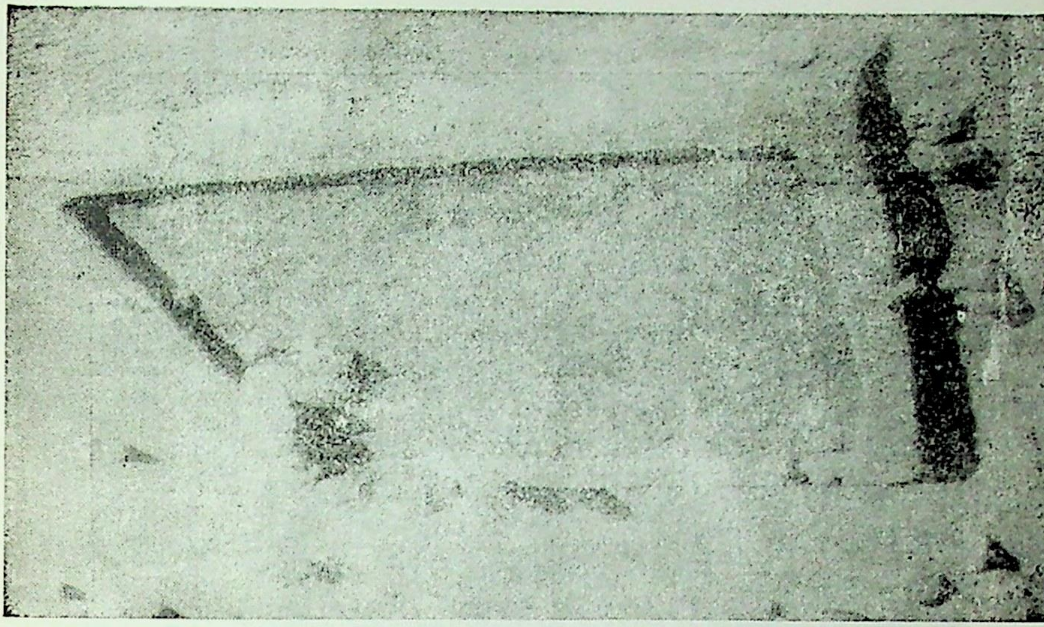
चित्र १—अशोक का कालसी अभिलेख (पूर्वी सतह) ई० पू० तीसरी शताब्दी ।



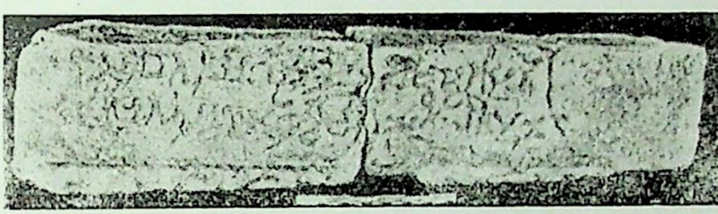
8. Page



चित्र २—अशोक का कालसी अभिलेख (दक्षिणी सतह) ई० पू० तीसरी शताब्दी ।



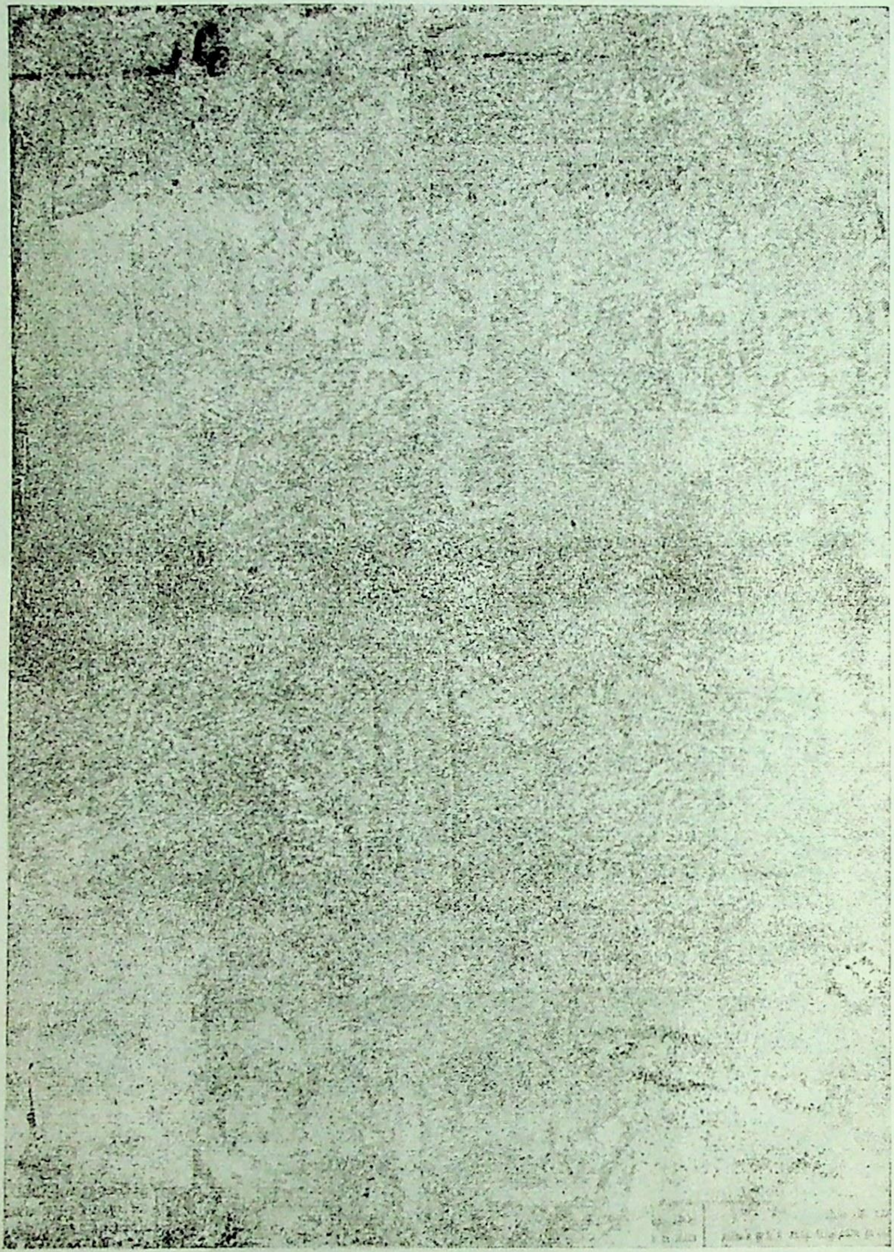
शीलवर्मन् का अश्वमेध यज्ञ यज्ञकुण्ड जगत् ग्राम (तीसरी शतब्दी ई०)



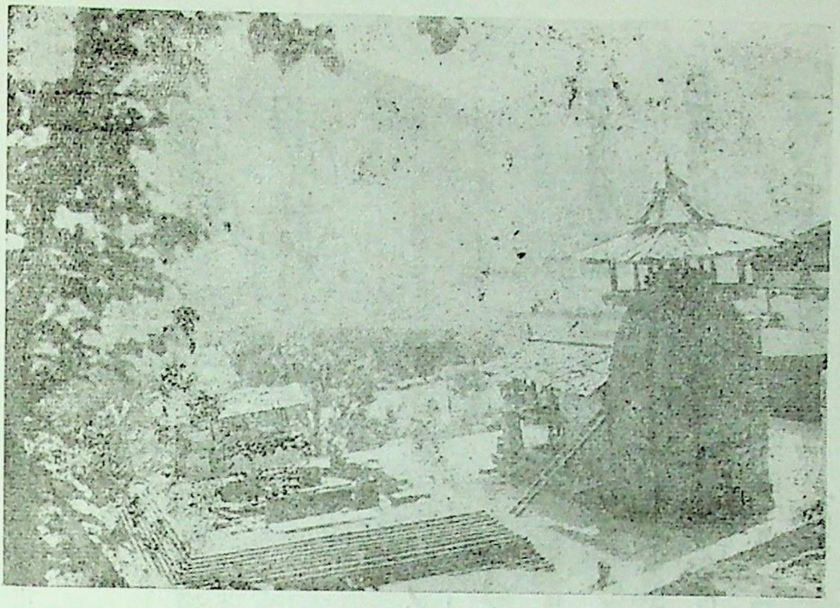
जगत्ग्राम इष्टिकालेख



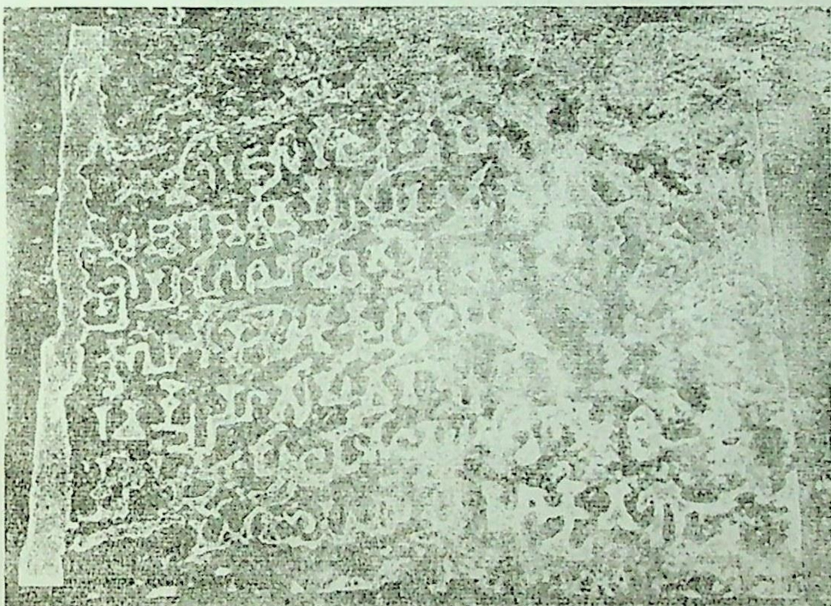
जगत्ग्राम इष्टिकालेख



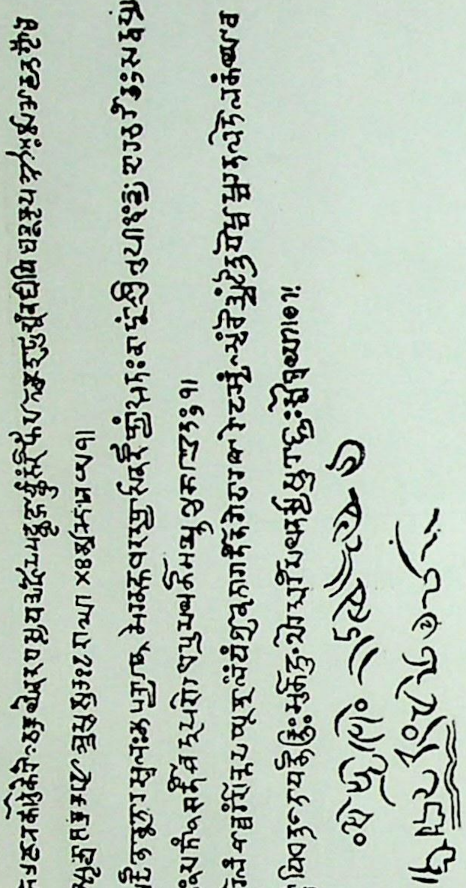
देवप्रयाग—ब्राह्मी नाम अभिलेख (दूसरी से पांचवीं शताब्दी ई०)



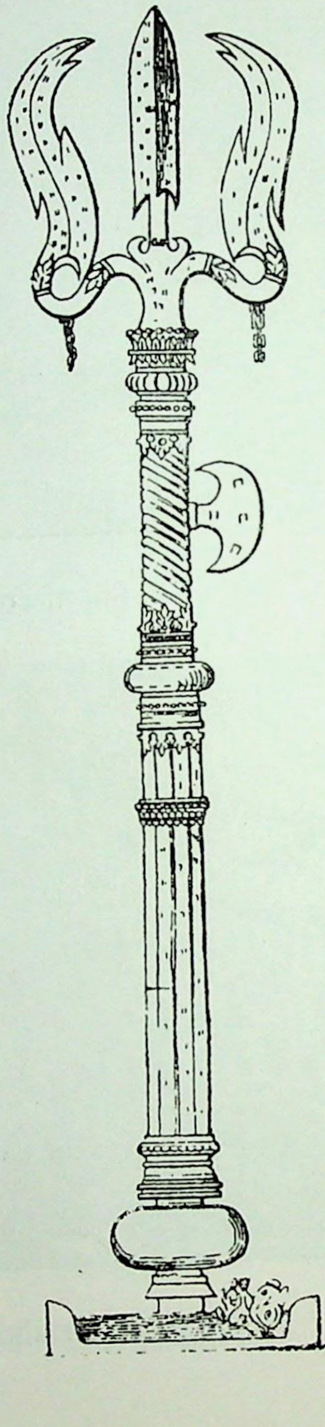
लाखा मंडल शिव मन्दिर (छठी शताब्दी ई०)



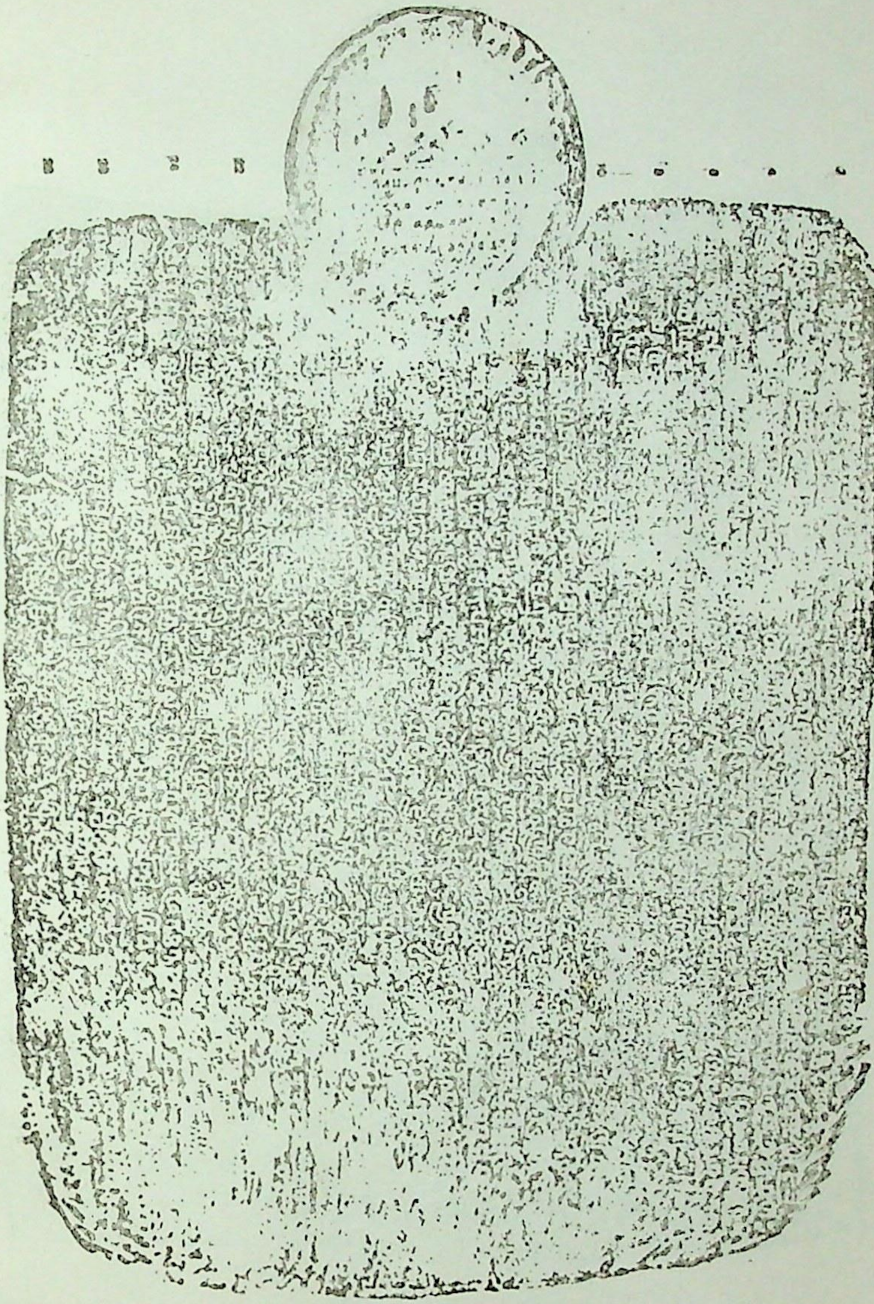
सर्ववर्मन् का सिरोजी अभिलेख (छठी शताब्दी ई०)



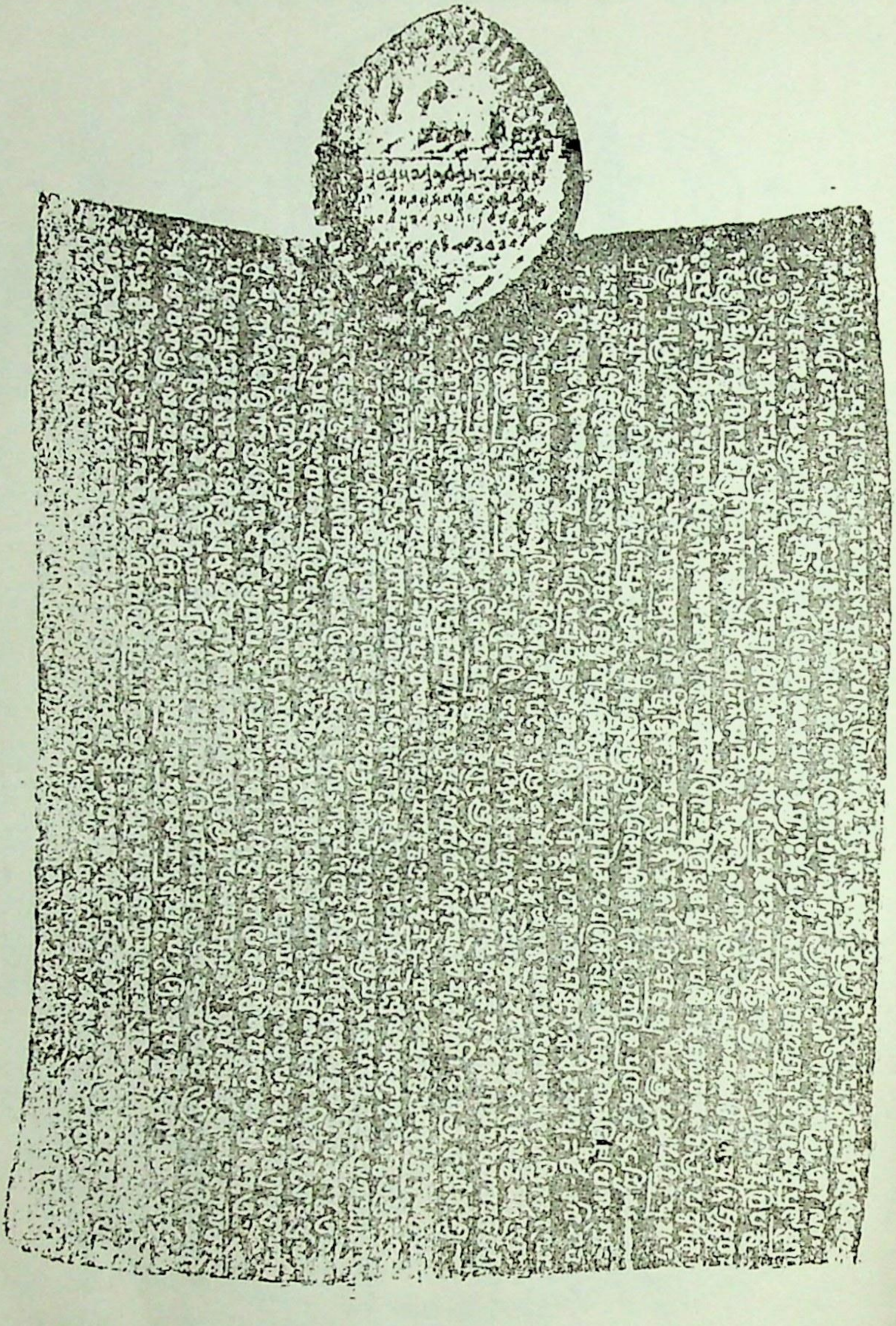
उत्तरकाशी (बाड़ाहाट) का त्रिशूल
अभिलेख (छठी शताब्दी ई०)



उत्तरकाशी (बाड़ाहाट) के शक्तिमन्दिर का त्रिशूल
(छठी शताब्दी ई०) २१ फीट ऊँचा

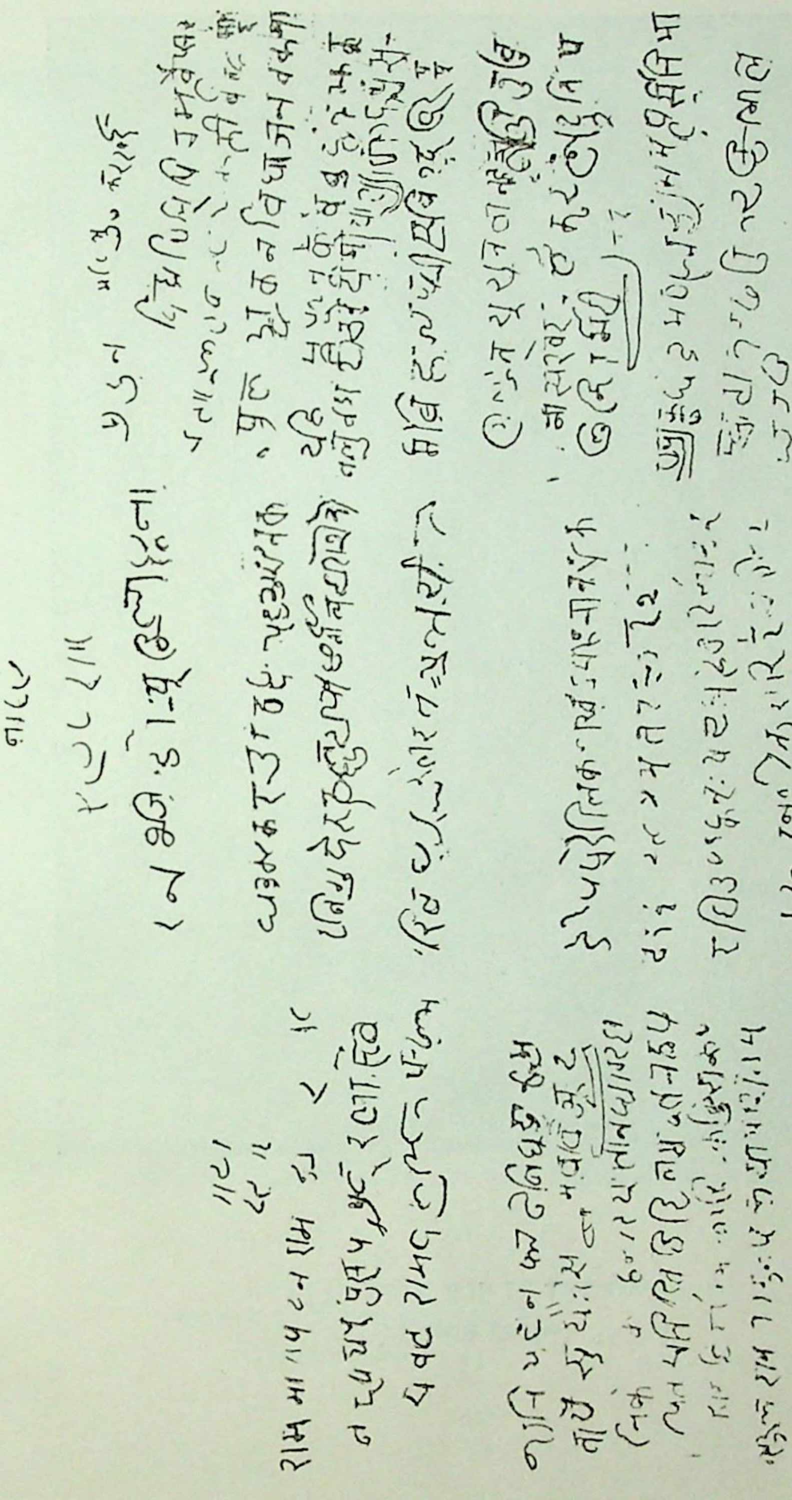


द्विजवर्मन् (द्युतिवर्मन्) का तालेश्वर ताम्र अभिलेख
(छठी शताब्दी विक्रमी संवत् का प्रारम्भिक वर्ष)

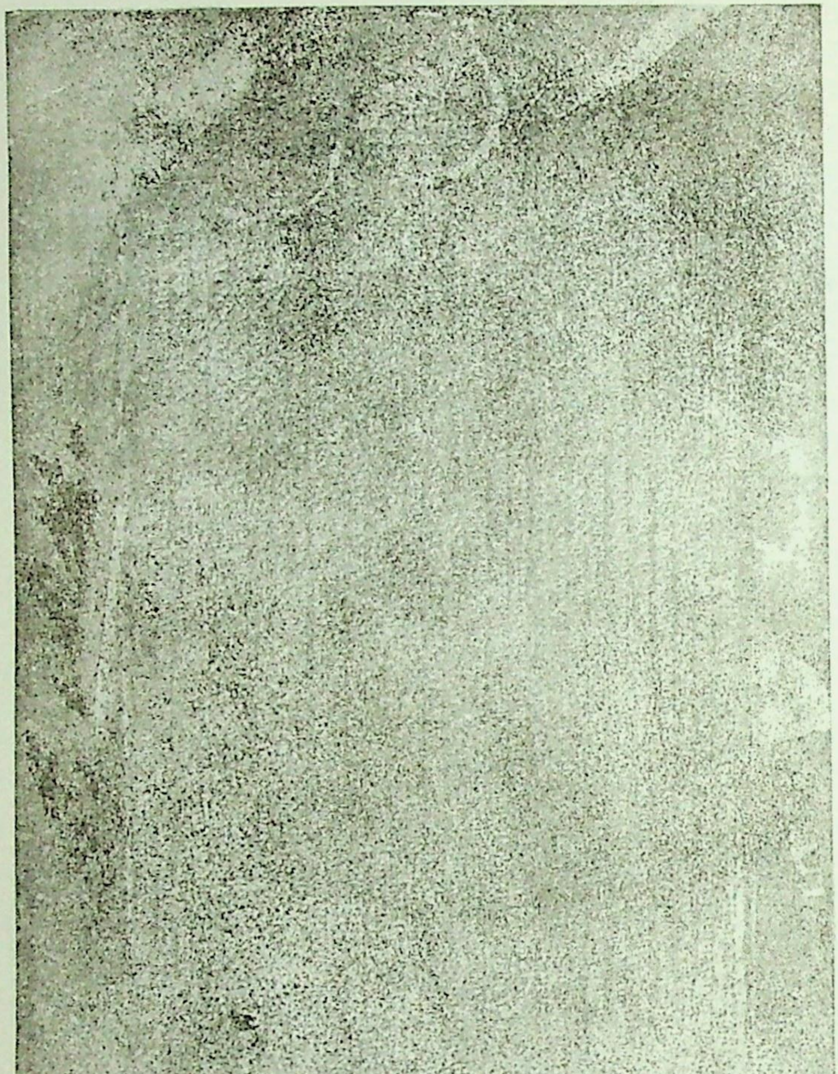


विष्णुवर्मन् का तालेश्वर का ताम्र अभिलेख

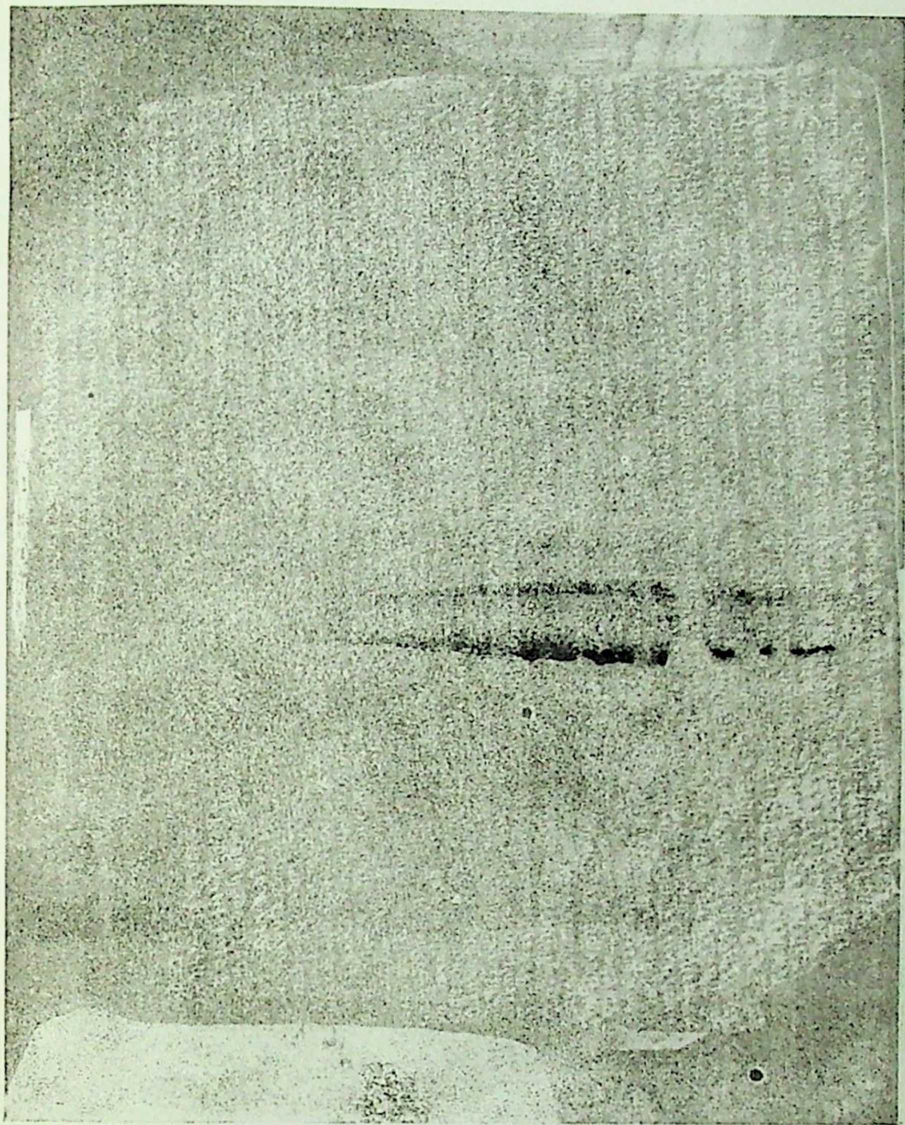
(छठी शताब्दी विक्रमी संवत् के अंतिम वर्ष)



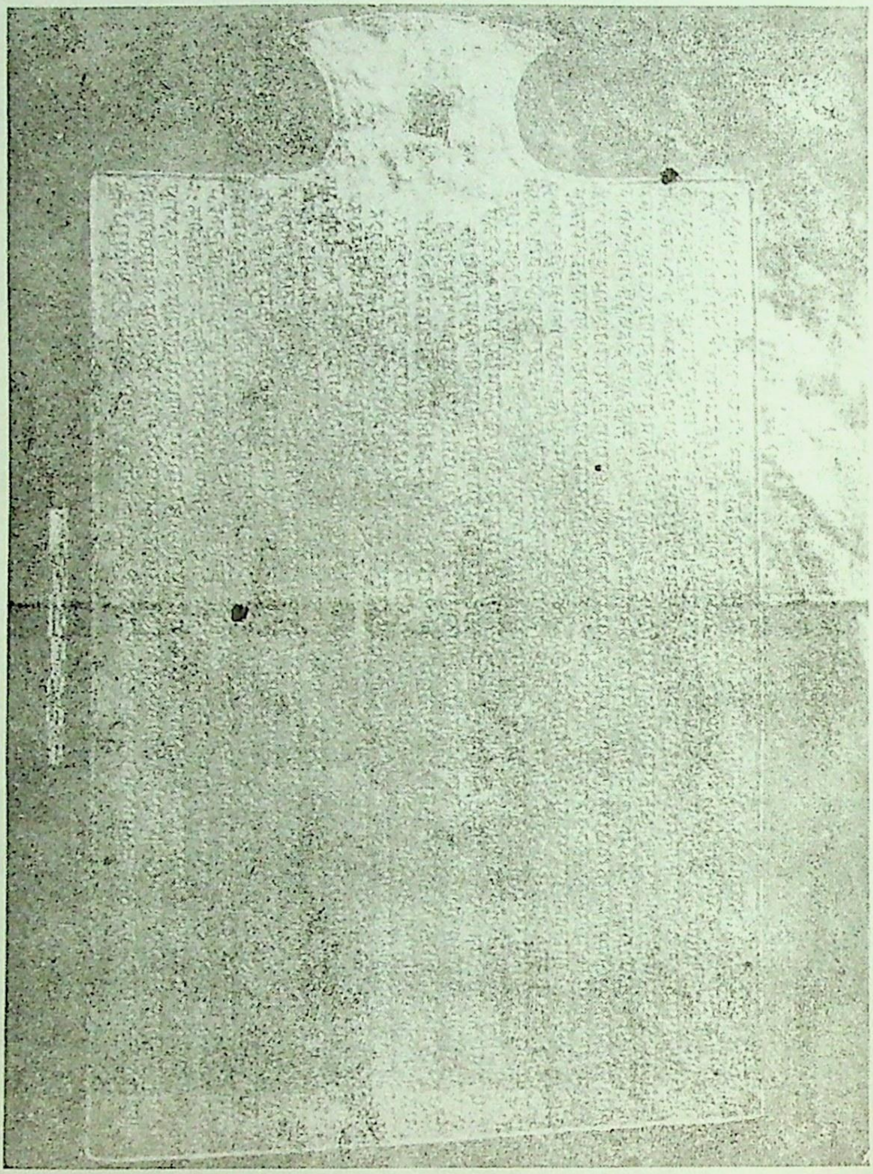
कल्याणवर्मा के पलेठी शिलालेखों के कुछ अंश (सातवीं-आठवीं शताब्दी ई०)



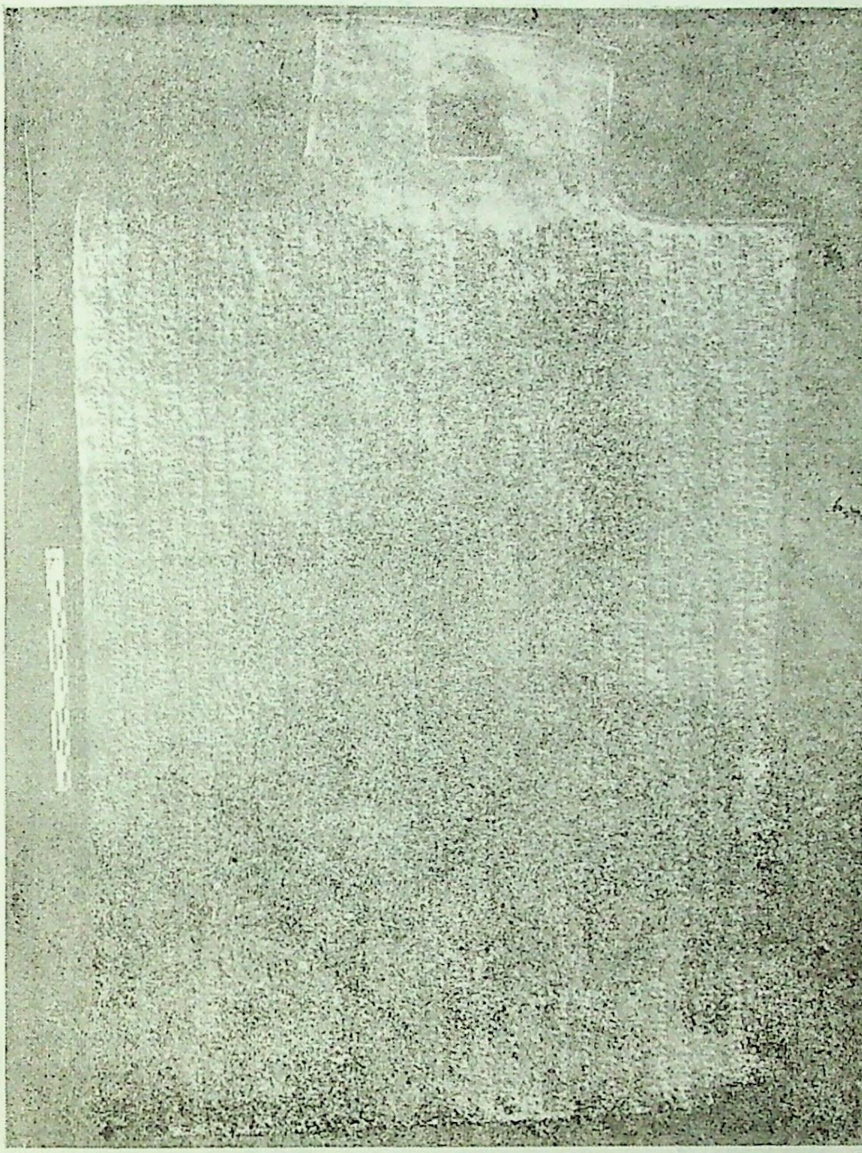
ललितशूर का ताम्र अभिलेख (१)
(विक्रमी संवत् ९१०)



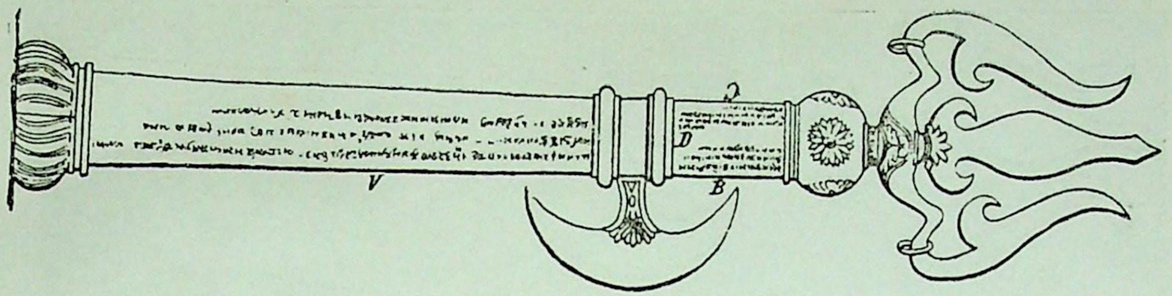
ललितशूर का ताम्र अभिलेख (२)
(विक्रमी संवत् ६११)



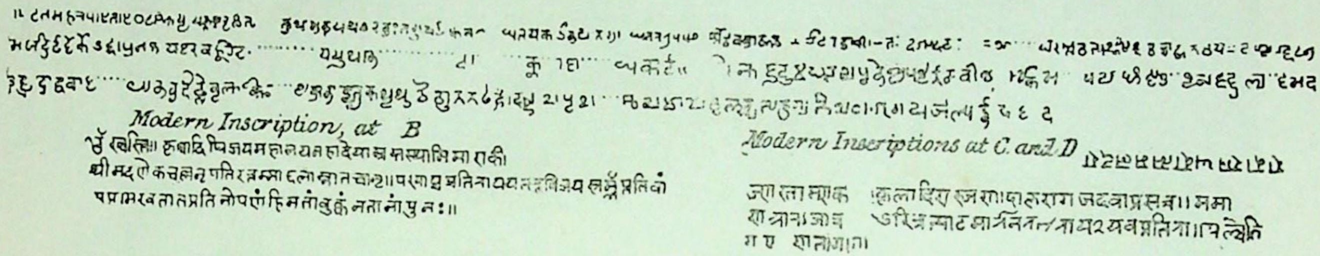
पद्मटदेव का ताम्र अभिलेख
(आठवीं शताब्दी विक्रमी)



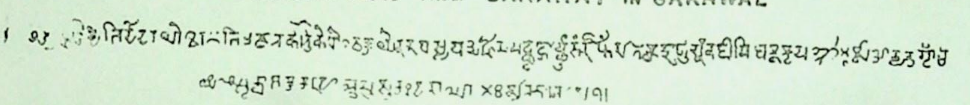
सुभिक्षराज का ताम्र अभिलेख
(दसवीं शताब्दी विक्रमी)



गोपेश्वर के पशुपतिनाथ मन्दिर का त्रिशूल (१६ फीट ऊँचा) (बारहवीं शताब्दी ई०)



INSCRIPTION FROM BARAHAT IN GARHWAL



अशोकचल्ल का त्रिशूल अभिलेख (बारहवीं शताब्दी ई०)



मणदेव का नाला (गुप्तकाशी) अभिलेख
(12 वीं शताब्दी शक संवत्)

लेखक का संक्षिप्त परिचय



जन्म तिथि—१० फरवरी १९२५

जन्म स्थान—मुरादाबाद

पारिवारिक पृष्ठभूमि—पिता श्री भूषणशरण मुरादाबाद नगर के समृद्ध व्यापारी थे। स्वतन्त्रता आन्दोलन में आपने सक्रिय भाग लिया और अंग्रेजी शासन द्वारा कारा-गृह में बन्द किये गये थे। माता श्रीमती राम-प्यारी धार्मिक वृत्ति की महिला थीं। पिता का स्वर्गवास १९४८ ई० में हुआ। अपने जीवन काल में ही उनको स्वतन्त्र भारत में श्वास लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

१९४६ ई० में डा० कृष्णकुमार का विवाह श्रीमती दमयन्ती देवी से हुआ। उनके तीन पुत्र प्रदीपकुमार, आलोककुमार और मयङ्ककुमार हैं तथा एक पुत्री मंजुला कुमारी है। सभी सन्तानें योग्य हैं तथा जीवन में सफल हैं।

शिक्षा—राष्ट्रीय विचारधारा से प्रेरित पिता ने पुत्र को ७ वर्ष की छोटी आयु में ही अंग्रेजी स्कूल से उठाकर गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार में अध्ययन के लिए भेज दिया। १४ वर्ष तक अध्ययन कर आप यहाँ से स्नातक हुए और आयु-र्वेदालंकार उपाधि प्राप्त की। तदनन्तर आपने आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण कर पी-एच. डी. उपाधि प्राप्त की। संस्कृत विश्व-विद्यालय वाराणसी से साहित्य विषय में आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की और गढ़वाल विश्वविश्रालय श्रीनगर से डी० लिट्० उपाधि प्राप्त की।

अध्यापन—गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार तथा सनातन धर्म कालेज मुजफ्फर-नगर में प्रवक्ता पद पर कार्य करने के अनन्तर उत्तरप्रदेश के विभिन्न स्नातकोत्तर राजकीय महाविद्यालयों में 'संस्कृत विभागाध्यक्ष पद पर कार्य किया। अन्त में गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल में संस्कृत विभागाध्यक्ष पद पर कार्य करते हुए १९८५ ई० में सेवानिवृत्त हुए।

शोध कार्य—विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा अन्य संस्थाओं के सहयोग से अनेक शोध योजनायें पूरी कीं। इनमें कुछ निम्न हैं—

१. केदारखण्ड पुराण और उसका विवेचनात्मक अध्ययन
२. संस्कृत नाटकों में जन्तु और वनस्पतियाँ
६. संस्कृत शास्त्रों की प्रशासनिक संस्थाये

४. प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास

५. गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख

आपके निर्देशन में ५० से अधिक छात्र डाक्टरेट डिग्री प्राप्त कर चुके है।

लेखक—डा० कृष्णकुमार की ४० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं । विषयानुसार कुछ ग्रन्थ निम्न हैं—

(१) प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा इतिहास—भारतीय तंस्कृति के आधार तत्त्व,, वैदिक साहित्य का इतिहास, गढ़वाल के प्रमुख तीर्थ, संस्कृत साहित्य का इतिहास गढ़वाल के संस्कृत अभिलेख, प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख और उनका ऐतिहासिक महत्त्व ।

(२) समालोचना—पं० अम्बिकादत्त व्यास—एक अध्ययन, संस्कृत–नाटक–सूक्ति–तरङ्गिणी, संस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश, संस्कृत नाटकों का वानस्पतिक पर्यावरण, संस्कृत नाटकों का जीव-जगत् ।

(३) काव्यशास्त्र—अलङ्कार शास्त्र का इतिहास, ध्वन्यालोक व्याख्या, छन्दोऽलङ्कार-प्रकाश ।

(४) वैदिक साहित्य—वैदिक साहित्य का इतिहास, ऋक्सूक्त संग्रह, वैदिक–सूक्त–संग्रह, ऋक्सूक्त–सुधाकर, चतुर्वेदसूक्त सुधाकर ।

५) मौलिक संस्कृत लेखन–उदयनचरितम् (उपन्यास), अस्ति–कश्चिद्–वागर्थीयम् (नाटक), तपोवनवासिनी (उपन्यास) ।

(६) व्याख्यायें—अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रियदर्शिका, प्रतिमा नाटक, रघुवंश, किराता-र्जुनीयम्, शिवराजविजय, कुसुमलक्ष्मी ।

(७) काव्यानुवाद—मेघदूतानुशीलनम्, चौरपञ्चाशिका ।

(८) ग्रन्थ दिवरणी—Descriptve Catalogue of Sanskrit Manuscripts तीन भागों में ।

(९) चिकित्सा—विषविज्ञान, पोषण के लिए विटामिन और खनिज, अन्तःस्रावी ग्रंथिया । प्रकाशन के लिए निम्न ग्रन्थ तैयार हैं—

वाल्मीकि रामायण का अनुवाद, केदारखण्ड पुराण का अनुवाद, केदारखण्ड के तीर्थ स्थल, संस्कृत शास्त्रों की प्रशासनिक संस्थायें, तपोवनवासिनी (संस्कृत उपन्यास), विधिपौरुषम् (संस्कृत उपन्यास) :

इनके अतिरिक्त डा० कृष्णकुमार के अनेक शोध लेख विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं । सेवा निवृत्त होने के अनन्तर भी वे सरस्वती देवी की उपासना में निरन्तर समय व्यतीत करते हैं ।



Modern Inscription at B

Modern Inscriptions at C and D

INSCRIPTION FROM BARAHAT IN GARHWAL

